जनवरी-जून २०१६
वर्ष-४ अंक-१
ISSN 2347-8373

सार्क
अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

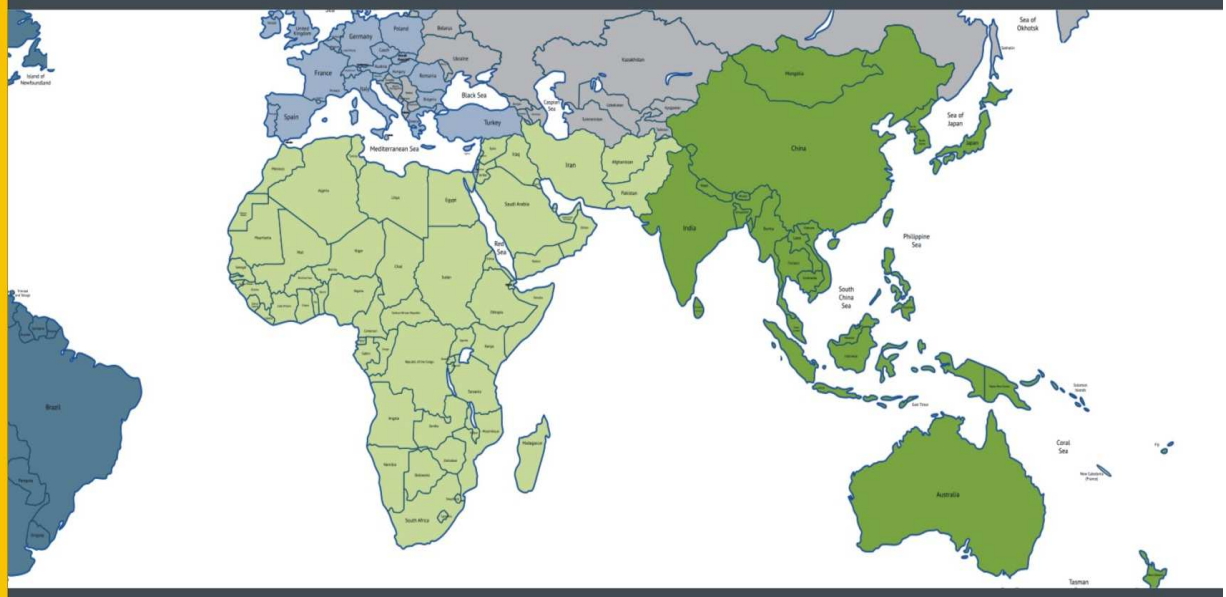

एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा सार्क
सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित

SAARC

जनवरी-जून २०१६
वर्ष-४
अंक-१

सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

अर्द्ध-वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सपना भारती, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सुषमा पराशर, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला, ब्रजेश कुमार, डॉ. इन्दुमती सिंह, रमेश चन्द

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

सार्क,अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका प्रत्येक छः माह (जनवरी-जून एवं जुलाई-दिसम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में सार्क, अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका 2 भाग हिन्दी एवं 2 भाग अंग्रेजी में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 4800+500/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क,
वैदेशिक : 6000+2000/- डाक शुल्क, एक प्रति 1200+1000/- डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। सार्क एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है, अतः किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com
मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 31 जनवरी 2016

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

सार्क

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका
वर्ष-4 अंक-1 जनवरी-जून 2016

शोध प्रपत्र

वाल्मीकि रामायण में भ्रातृप्रेम -डॉ. स्मिता द्विवेदी 1-4
शाब्दिकदिशाकर्मस्वरुपविमर्श: -नीरज शर्मा 5-7

व्याप्तिसामान्यविचार: -श्रीकान्त मिश्र 8-11
कालिदास की कृतियों में पात्रों के सामाजिक जीवन का पर्यालोचन -श्वेता द्विवेदी 12-14

उपनिषदों में अष्टाङ्गयोग -उपमा राय 15-20
डॉ. हरि नारायण दीक्षित विरचित भारत माता ब्रूते महाकाव्यम् : एक अनुशीलन -संगीता प्रजापति 21-23

अथर्ववेद में वर्णित विविध रोगों की चिकित्सा -प्रियंका पाठक 24-26
पुरुषार्थों में धर्म का महत्व -हेमलता त्रिपाठी 27-29

वैदिक संस्कृति की निरन्तरता : एक अध्ययन -डॉ. शारदा कुमारी 30-34
कालिदास के ग्रंथों में वर्णित सांगीतिक तत्व -राधा 35-38

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वनस्पतियों की प्रासंगिकता -ज्याति शुक्ला एवं डॉ. भुवाल राम 39-40
आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये उपन्यासस्य स्वरुपम् : एक समीक्षणम् -डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी 41-42

मानव जीवन में आयुर्वेद का महत्व -श्याम सुन्दर 43-45
वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा -डॉ. मंजु वर्मा 46-53

संस्कृति एवं सभ्यता शब्द के प्रयोग में अन्तर और विकास का विश्लेषण -डॉ. हेमराज 54-57
प्रेमचन्द की साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि -डॉ. सुजीत कुमार सिंह 58-60

मोहन राकेश की कहानियों में हाशिए पर स्त्री -हरिश्चन्द्र यादव 61-64
शास्त्रों में किञ्चत् शब्दों के विभिन्नार्थ : एक संक्षिप्त अनुशीलन -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 65-66

औरत "चुप" है, तभी "महान" है : सुजाता[1] -आशुतोष वर्मा 67-72
जीवन के लिये आहार एवं पोषण आवश्यक- प्रो. अनिता कुमारी 73-76

शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन : चुनौतियाँ एवं समस्याएँ -ज्योति गुप्ता 77-82
भारत में उच्चशिक्षा की दशा एवं दिशा का विश्लेषणात्मक अध्ययन -प्रदीप कुमार भिमटे 83-90

णमोकार मंत्र और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया -डॉ. संगीत जैन 91-94
तीर्थराज प्रयाग स्थित समुद्रकूप का धार्मिक महत्व -डॉ. जेबा इस्लाम 95-97

प्राचीन भारत में नगरीय प्रणाली : एक अनुशीलन -डॉ. जमील अहमद 98-102
मानवमात्र के कल्याण में गीतोक्त भक्ति की उपयोगिता -मधुकर मिश्र 103-105

अकबरकालीन काबुल सूबा -अर्चना सिंह 106-110

प्रिंट ISSN 2347-8373, वेबसाइट ISSN 2347-8373

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,1-4
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 अक्टूबर 2014

वाल्मीकि रामायण में भ्रातृप्रेम

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वाल्मीकि रामायण में भ्रातृप्रेम* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

रामायण केवल इतिहास ही नहीं है, अपितु काव्य भी है, आदि काव्य होने का गौरव इसी ग्रन्थ को प्राप्त है।

यह आदिकाव्य इसलिए है कि इसके पूर्व वेद को छोड़कर संस्कृत की व्यवहारिक भाषा में छन्दोबद्ध कोई ग्रन्थ ही नहीं था।

रामायण में अपने श्रोताओं के प्रति अत्यधिक प्रेम-भावना देखने को मिलती है। ''राम'' भरत से इतना प्रेम करते है कि माता के कहने पर वन चले जाते हैं। 'लक्ष्मण' जो अपने भ्राता को वन अकेले नहीं जाने देना चाहते। अतः उनके रक्षण हेतु उनके साथ जाते हैं। भरत अपने भ्राता के वन-गमन के पश्चात् उनकी चरणपादुका को राजसिंहासन पर आसीन करते हैं और स्वयं उनका सेवक बनकर राजकार्य सम्भालते हैं।

रामायण में हमें जिस भ्रातृप्रेम की शिक्षा मिलती है, भ्रातृप्रेम का जैसा उच्चति उच्च आदर्श प्राप्त होता है वैसा जगत् के इतिहास में कहीं नहीं है।

श्री राम का भ्रातृप्रेम

बाल्यकाल से ही श्रीराम को अपने तीनों भ्राता प्रिय थे। उनका रक्षण व उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते थे। खेल-कूद में भी उन्हें दुःखी नहीं होने देते थे।

श्रीराम तीनों भाइयों को साथ लेकर भोजन करते थे, साथ ही खेलते और सोते थे।

राज्याभिषेक के समय राम को अकेले राज्य स्वीकार करने में बड़ा अनौचित्य प्रतीत हुआ। मन की प्रसन्नता से नहीं परन्तु पिता की आज्ञा से उन्हें राज्याभिषेक का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। परन्तु उनके मन में यही था कि मैं सिर्फ यह प्रथा भर पूरी कर रहा हूँ। वास्तव में राज्य तो भाइयों का ही है। भरत, शत्रुघ्न तो उस समय मौजूद नहीं थे। अतः श्रीराम जी ने लक्ष्मण

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से कहा, ''सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान्राज्य फलानि च/ जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये।।'' (बाल्मीकि रामायण-2/4/44)[1]

''भाई लक्ष्मण! तुम लोग वाञ्छित भोग और राज्य फल का भोग करो। मेरा यह जीवन और राज्य तुम्हारे ही लिए है।''

इसके पश्चात् माता कैकेयी की कामना के अनुसार राज्याभिषेक वनागमन के रूप में परिणत हो गया। प्रातःकाल के समय जब श्री राम पिता दशरथ की सम्मति से सुमन्त के द्वारा कैकेयी के वरदान की बात मालूम हुई तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। वे कहने लगे कि माता! मुझे केवल इसी बात का दुःख है कि महाराज ने भरत के अभिषेक के लिए मुझसे ही क्यों नहीं कहा, ''गच्छन्तु चैवानयितुं इताः शीघ्रजवैर्हयैः। भरतं मातुलकुलादद्यैव नृपशासनात्। दण्डकारण्यमेषोऽहं गच्छाम्येव हि सत्वरः। अविचार्य पितुर्वाक्यं समा वस्तुं चतुर्दश।।'' (बाल्मीकि रामायण-2/18/10-11)[2]

महाराज की आज्ञा से दूतगण अभी तेज घोड़ों पर सवार होकर मामाजी के यहाँ भाई भरत को लाने के लिए जाएँ मैं पिता जी के वचन सत्य करने के लिए दण्डकारण्य जाता हूँ। प्राणप्रिय भाई भरत का राज्याभिषेक हो इससे अधिक प्रसन्नता मेरे लिए और क्या होगी। विधाता आज सब तरह से मेरे अनुकूल है।

इस प्रसंग में हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि छोटे भाइयों को छोड़कर राज्य धन या सुख का अकेले कभी ग्रहण नहीं करना चाहिए। योग्यतावश कहीं ग्रहण करना ही पड़ें तो उसमें भाइयों का अपने से अधिक अधिकार समझना चाहिए। बल्कि यह मानना चाहिए कि उन्हीं लोगों के लिए मैं इसे ग्रहण करता हूँ और यदि ऐसा मौका आ जाए कि जब भाइयों को राज्य, धन, सुख-मिलता हो और इसलिए अपने को त्याग करना पड़े तो अत्यधिक प्रसन्न होना चाहिए।

इसके पश्चात् श्रीराम माता कौशल्या और पत्नी सीता से विदा माँगने गए। श्रीराम ने भरत या कैकेयी के प्रति कोई भी अपशब्द या विद्वेषमूलक शब्द नहीं कहा बल्कि सीता से कहा, ''वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषाः मम मातरः। स्नेहप्रणयसंभोगैः समा हि मम मातरः। भ्रातृ पुत्र समौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः। त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम।।'' (बाल्मीकि रामायण - 2/26/32-33)[3]; अर्थात् मेरे वनागमन के पश्चात् मेरी माताओं को नित्य प्रणाम करना मुझपर स्नेह करने में और मेरा पालन-पोषण करने में मेरी माताएँ समान है। साथ ही तुम भरत, शत्रुघ्न को भी अपने भाई और बेटे के समान समझना क्योंकि वे दोनों मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।

श्री लक्ष्मण का भ्रातृ प्रेम

रामपदारविन्द में अनुराग रखने वाले लक्ष्मण की महिमा अपार है। लक्ष्मण जी का अवतार श्री राम के चरणों में रहकर उनकी सेवा करने के लिए ही हुआ था। इसी कारण राम की श्याम मूर्ति के साथ लक्ष्मण की गौर मूर्ति भी स्थापित होती है और राम के साथ लक्ष्मण का नाम लिया जाता है।

राम-भरत या राम-शत्रुघ्न कोई नहीं कहता परन्तु राम-लक्ष्मण सभी कहते हैं। लक्ष्मण का सबसे प्रमुख धर्म श्रीराम के चरणों में रहकर उनका अनुसरण करना था।

बाल्यकाल में साथ खेलने-खाने के उपरान्त पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही लक्ष्मण जी अपने बड़े भाई श्रीराम जी के साथ यज्ञ-रक्षार्थ चले जाते हैं। वहाँ सब प्रकार से भाई सेवा में नियुक्त रहते हैं। अपने विवाह के पश्चात् भरत-शत्रुघ्न ननिहाल चले गए परन्तु लक्ष्मण नहीं गए उन्हें ननिहाल-ससुराल की, नगर-अरण्य की कोई परवाह नहीं थी। राम की सेवा में तत्पर रहना ही उन्हें अपना परम धर्म लगता था।

दशरथ जी और कैकेयी के इस आचरण से दुःखी हुई माता कौशल्या को विलाप करते देख भ्रातृप्रेमी लक्ष्मण जी माता से कहने लगे, ''अनुरक्तोऽस्मि भावेन भ्रातरं देवि तत्वतः। सत्येन धनुषा चैव दत्तेनेष्टेन ते शपे।।'' ''दीप्तमग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति। प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय।।'' ''हरामि वीर्चादुदुःखं ते तमः सूर्य इवोरितः। देवि पश्यतु में वीर्यं राघवश्चैव पश्यतु।।'' (बाल्मीकि रामायण - 2/21/16-18)[4]

हे देवि! मैं सत्य, धनुष, दानपुण्य और इष्ट की शपथ करके कहता हूँ कि मैं यथार्थ ही अपने बड़े भाई राम का अनुयायी हूँ। यदि श्रीराम जलती हुई अग्नि में या घोर वन में प्रवेश करें तो मुझे पहले ही उनमें प्रवेश हुआ समझो। हे माता! जैसे सूर्य

उदय होकर सब प्रकार के अन्धकार को हर लेता है उसी प्रकार मैं अपने पराक्रम से आपके दुःख को दूर करूँगा। आप और श्रीरामचन्द्र मेरा पराक्रम देखें। इन वचनों में भ्रातृप्रेम की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। जो लक्ष्मण के चरित्र को और भी उच्च बना देती है।

श्रीराम वन जाने को तैयार हो गए, सीता जी भी साथ जाती हैं तब लक्ष्मण जी का क्रोध तो शान्त था परन्तु वे श्रीराम के साथ जाने के लिए व्याकुल हो, दौड़कर राम के चरणों में लौट जाते हैं और रोते हुए कहते हैं- हे रघुनन्दन! आपने मुझसे कहा था कि तूं मेरे विचार का अनुसरण कर फिर आज आप मुझे छोड़कर क्यों जा रहे हैं। ''न देवलोकाक्रमण नामरत्व-महं वृणे। ऐश्वर्यं चापि लोकानां कामये न त्वया विना।।'' (बाल्मीकि रामायण 2/21/5)[5]

हे भाई! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, मोक्ष या संसार का कोई भी ऐश्वर्य नहीं चाहता। कहाँ तो लक्ष्मण जी की तेजोमयी विकराल मूर्ति और कहाँ यह माता के सामने बालक के समान रूदन। यही तो लक्ष्मण जी के भ्रातृ प्रेम की विशेषता है। श्रीराम जी अपने भाई के इस व्यवहार से मुग्ध हो गए और उन्हें साथ वन ले जाने हेतु तैयार हो गए।

श्री भरत का भ्रातृ प्रेम

रामायण में भरत जी का ही एक ऐसा उज्जवल चरित्र है जिसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दिख पड़ता। भरत जी के राम प्रेम में नीति भूलकर शत्रुघ्न से यहाँ तक कह डाला कि, ''हन्यामहमियां पापां कैकेयी दुष्टचारिणीम्। यदि मां धर्मिको रामो नासू-येन्मातृघातकम्।।'' (बाल्मीकी रामायण-2/78/22)[6]

हे भाई! इस दुष्ट आचरण वाली कैकेयी को मैं मार डालता यदि धर्मात्मा श्रीराम मातृ हत्यारा समझकर मुझसे घृणा न करते।

पंचवटी में भरत ने राम से राज्याभिषेक के लिए प्रार्थना की और कहा, ''राज्यंपालय पित्र्यं ते ज्येष्ठस्वं में पिता तथा। क्षत्रियाणामयं धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैः पुत्रानुत्पाद्यतन्तवे। राज्ये पुत्रं समारोप्य गमिष्यसि ततोवनम्। इदानीं वनवासस्य कालो नैव प्रसीद में। मातुर्मे दृष्कृतं किञ्चित् स्मर्तुं नार्हसि पाहि नः।।'' (बाल्मीकी रामायण-2/9/23-25)[7]

आप सबमें बड़े हैं मेरे पिता के समान हैं अतः आप राज्य का पालन कीजिए। प्रजापालन ही क्षत्रियों का धर्म है। अनेक प्रकार यज्ञ करके एवं कुलवृद्धि के लिए पुत्र उत्पन्न करके पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठाने के बाद आप वन में पधारिएगा। यह वनवास का समय नहीं है। मुझ पर कृपा कीजिए मेरी माता से जो कुकर्म बन गया है उसे भूल कर मेरी रक्षा कीजिए।

इतना कहकर भरत जी दण्डकी तरह श्रीराम के चरणों में गिर पड़े।

इस प्रकार भरत का भातृप्रेम स्वतः ही परिलक्षित हो जाता है।

शत्रुघ्न का भातृ प्रेम

जिस प्रकार लक्ष्मण जी श्री राम जी के चिरसंगी थे। उसी प्रकार शत्रुघ्न जी श्री भरत की सेवा में नियुक्त रहते थे।

शत्रुघ्न जी भरत जी के साथ श्री राम को लौटाने वन में जाते हैं वहाँ भरत जी की आज्ञा से राम की कृटिया ढूँढते हैं जब भरत जी द्वार से श्री राम को देखकर दौड़ते हैं। तब श्री राम दर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी पीछे-2 दौड़ जाते हैं, ''शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रूदन्। तावुभौ च समालिंग्य रामोप्यश्रूण्यवर्तयत्।।'' (बाल्मीकि रामायण-2/99/40)[8]

वे भी रोते हुए श्रीराम के चरणों में प्रणाम करते हैं। श्रीराम आसन से उठ अपने हाथों से उन्हें उठाते है। फिर दोनों छाती से चिपट जाते हैं। इसी प्रकार शत्रुघ्न अपने बड़े भाई लक्ष्मण जी से भी मिलते हैं।

यह रामायण के चारों पूज्य पुरूषों के आदर्श भ्रातृ प्रेम का किञ्चित् दिग्दर्शन मात्र है। वास्तव में श्रीराम और उनके बन्धुओं के अगाध चरित की थाह कौन पा सकता है। साक्षात् ईश्वर होने पर भी उन्होंने जीवन में मनुष्यों की भाँति लीलाएँ की है ताकि उनका अनुसरण कर सामान्य जन भी अच्छे आचरण को अपनाकर अपना जीवन उच्च बना सकें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1] *बाल्मीकि रामायण*-2/4/44
[2] *बाल्मीकि रामायण*-2/18/10-11
[3] *बाल्मीकि रामायण* - 2/26/32-33
[4] *बाल्मीकि रामायण* - 2/21/16-18
[5] *बाल्मीकि रामायण* 2/21/5
[6] बाल्मीकी रामायण-2/78/22
[7] बाल्मीकी रामायण-2/9/23-25
[8] *बाल्मीकि रामायण*-2/99/40

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,5-7
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

शाब्दिकदिशाकर्मस्वरुपविमर्शः

नीरज शर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शाब्दिकदिशाकर्मस्वरुपविमर्शः* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *नीरज शर्मा* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

पुण्यापुण्यप्रयोजकशब्दापशब्दज्ञानाय व्याकरणशास्त्रमतीवोपयुज्यते। तस्मिन् व्याकरणशास्त्रे अष्टौ स्फोटाः वर्तन्ते। वर्णस्फोटः, पदस्फोटः, वाक्यस्फोटः, अखण्डपदवाक्यस्फोटौ, वर्णपदवाक्यभेदेन त्रयो जातिस्फोटा इत्यष्टौ स्फोटाः। तत्र वाक्यस्फोटो मुख्यः लोके तस्यैवार्थ-जनकत्वात्। तच्च वाक्यं सामान्यतः क्रियाकारकघटितं भवति। क्रिया च कारकैः जन्यते। कारकं च क्रिया निष्पादकं तच्च षड्विधम्। तद्यथा- 'कर्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्।।'

तेषु षट्कारकेषु मध्ये कर्मकारकविषये श्रीनागेशभट्टकृतमञ्जूषाग्रन्थदिशा विचार्यते। मञ्जूषाकारमते कर्मलक्षणस्वरूपं विद्यते तद्यथा- कर्मत्वं च प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्यप्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वम्। व्याकरणशास्त्रबोधितकर्मसंज्ञकत्वमेव कर्मत्वम्। एतच्चानेकसूत्रबोधितत्वादनेकविधम्। तत्र व्यापकं कर्मत्वं ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म''[1] इति सूत्रबोधितम्। अत्र प्रकृतधात्वर्थ-प्रधानीभूतो यो व्यापारः तत्प्रयोज्यं यत्प्रकृतधात्वर्थफलं तत्फलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वमित्यर्थः। यथा ''चैत्र हरिं भजति'' इत्यत्र प्रकृत धातुः भज्धातुः, तदर्थप्रधानीभूतोव्यापारः भजनानुकूलोव्यापारस्तत्प्रयोज्यं प्रकृतधात्वर्थफलं प्रीतिरूपं फलं, तदाश्रयत्वेनोद्देश्यो हरिः तस्य कर्मसंज्ञा। अत्रेदं बोध्यम्- ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' इति सूत्रे ईप्सितशब्दः क्रियापरो नाभिप्रेतपरो रूढः। कर्तुरिति ''क्तस्य च वर्तमाने''[2] इति कर्तरि षष्ठी। ईप्सितशब्दस्तु सन्नतात् आप् धातोः ''मतिबुद्धिपूजार्थेभ्यश्च''[3] इति वर्तमाने कर्मणि क्तप्रत्ययः। सूत्रेऽस्मिन् मतिरिच्छा बुद्धेः पृथग्ग्रहणात्। एवं च कर्त्रा आप्तुमिष्यमाणं कर्म इत्यर्थः। आप्तिश्चात्र सम्बन्धः स च कर्तृपदार्थद्वारक-विशेषणीभूतव्यापारद्वारक एव, यत उपस्थितिं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने प्रमाणाभावात्। एवञ्च कर्त्रा स्वनिष्ठव्यापारप्रयोज्यफलेन सम्बन्धुमिष्यमाणमित्यर्थः। फलस्यापि व्यपदेशिवद्भावेन फलसम्बन्धित्वात् कर्मत्वम्। अत एव तत्समानाधिकरण ''स्तोकं पचति'' इत्यत्र कर्मत्वसिद्धिः। फलव्यापारयोः प्रकृतधात्वर्थत्वन्तु प्रत्यासत्तिलभ्यम्। तेन यदा पुष्ट्यर्थं माषभक्षणाय माषक्षेत्रे एवाश्वबन्धनं तदा ''माषेष्वश्वं बध्नाति'' इत्यादौ माषाणां न कर्मत्वम्, यतो हि माषाणां बन्धनप्रयोज्यभक्षणाश्रयत्वेऽपि भक्षणस्य बन्धधात्वर्थत्वाभावात्। लक्षणे प्रयोज्यपदनिवेशात् ''गां पयो दोग्धि'' इत्यादौ विभागानुकूलव्यापारानुकूल व्यापारार्थक दुहियोगे पयसः कर्मत्वसिद्धिरिति स्पष्टं भाष्ये। एतदेवाह- ''गां पयो दोग्धि'' इत्यत्र विभागानुकूलव्यापारानुकूलो व्यापारः गोवृत्तिः, तदनुकूलश्च व्यापारः गोपवृत्तिः,

* शोध छात्र, व्याकरण विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : 1993ns@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गोपव्यापारं विना पयसि व्यापारपूर्वकविभागानुत्पत्तेः। गोपव्यापारजन्यो यः गोवृत्तिव्यापारः स धातुवाच्यः, तज्जन्यस्तु पयोवृत्तिः व्यापार-पूर्वकोविभागः, तत्र पयोनिष्ठव्यापारस्य विभागानान्तरीयकत्वान्न न धातुवाच्येति न तदुल्लेखः। एवञ्च विभागरूपफलस्य गोपनिष्ठधात्वर्थप्रधानव्यापारजन्यत्वाभावात् कर्मसंज्ञा न स्यादिति साक्षात्-परम्परासाधारणं प्रयोज्यत्वं निवेशनीयमितिभावः। एतदस्वीकारे तु प्रधानीभूतगोपवृत्तिव्यापारजन्यत्वस्य गोव्यापारे एव सत्वात् विभागे तदभावेन पयसः कर्मत्वं न स्यात्। साक्षात्परम्परासाधारणप्रयोज्य निवेशे तु प्रधानव्यापारप्रयोज्यत्वस्य विभागेऽपि सत्वात् तदाश्रयत्वेन पयसः कर्मत्वसिद्धिः। गोर्विभागश्रयत्वेन तु न कर्मत्वम्, पयोनिष्ठ-विभागीयसम्बन्धस्यैव फलतावच्छेदकत्वात्, तत्वेनानुद्देश्यत्वाच्चेति भावः। फलव्यापारयोः प्रकृतधात्वर्थत्वन्तु प्रत्यासत्तिलभ्यम्, अत एव ''प्रयागात् काशीं गच्छति'' इत्यत्र प्रयागस्य कर्मत्ववारणाय प्रकृतधात्वर्थफलेति। कर्तृनिष्ठपादप्रक्षेपादिरूपव्यापारेण काश्याः संयोगस्य इव प्रयागात् विभागस्यापि जायमानत्वेन संयोगाश्रयत्वात् काश्या इव प्रयागस्यापि विभागाश्रयत्वेन कर्मत्वं प्राप्तं तद्वारणाय प्रकृतधात्वर्थ-फलस्येति निवेशितम्। प्रकृतगम्धात्वर्थस्तु उत्तरदेशसंयोगानुकूलव्यापार एव न तु विभागः, किन्तु तस्य नान्तरीयकतया गमनेन जाय-मानत्वात्। प्रयागस्य फलतावच्छेदकसम्बन्धेन फलाश्रयत्वेनानुद्देश्यत्वाच्च। अत्र फलाश्रयत्वं फलतावच्छेदकसम्बन्धेनैव ग्राह्यम्। येन सम्बन्धेन फलाश्रयत्वप्रकारिकेच्छा भवति, स फलतावच्छेदकसम्बन्धः। स च तत्तद् धातुभेदात् भिन्नो भिन्नो भवति। यथा- ग्रामं गच्छती ''त्यत्रानुयोगित्वविशिष्टः समवायः फलतावच्छेदकसम्बन्धः। तेन सम्बन्धेन संयोगरूपफलाश्रयो ग्रामो भवतु, इत्याकारकेच्छीयफलनिष्ठ-विषयतावच्छेकत्वस्य समवायस्यैव सत्वेन तत्सम्बन्धेन फलाश्रयस्यैव कर्मत्वं न तु कालिकादिना फलाश्रयस्य, तत्सम्बन्धस्य फलतावच्छेद-कत्वाभावात्। एवञ्च प्रयागादेर्न कर्मत्वम्। ''कर्तुरीप्सिततमं कर्म'' इत्यत्र सन्प्रत्ययेनोद्देश्यत्वं प्रतीयते, किन्तूद्देश्याभावेऽपि प्रयागात् काशीं गच्छतीत्यादौ प्रकृतधात्वर्थग्रहणेनैवे-टसिद्धिः तर्हि लक्षणे उद्देश्यत्वग्रहणं किमर्थम्?

उच्यते- तस्यासाधारणप्रयोजनं ''काशीं गच्छन् पथि मृतः'' इति काश्याः फलाश्रयत्वाभावेऽपि फलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वसत्वात् कर्मत्वम्। अयं भावः लक्षणे उद्देश्यत्वग्रहणाभावे ''काशीं गच्छन् पथि मृतः'' इत्यादौ प्रकृतगम्धात्वर्थसंयोगरूपफलाश्रयत्वाभावात् काश्याः कर्मत्वं न स्यात्। उद्देश्यत्वनिवेशे तु नायं दोषः, काश्याः संयोगरूपफलाश्रयत्वाभावेऽपि तद्रूपफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वात् तस्याः कर्मत्वसिद्धिरिति। ननु काशीं गच्छति चैत्रे, चैत्रः काशीं गच्छति न प्रयागम्'' इति प्रयोगानुपपत्तिः, प्रयागस्य फलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वाभावदिति चेत् उच्यते- कर्मलक्षणे ईप्सिततमं पदस्य स्वार्थविशिष्टयोग्यताविशेषे लक्षणा। तथा च प्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वयोग्यताविशेष-शालित्वं प्रयागस्याप्यस्तीति कर्मत्वं तस्य सुलभम्। एवञ्च लक्षणाविशिष्टलक्षणस्वीकारे प्रयागगमनस्यापि उद्देश्यत्वेन किञ्चित् कारणवशात् तत्र गमनाभावेऽपि तत्र कर्मत्व सिद्धौ न किमपि बाधकमिति। अन्ये तु ''काशीं गच्छति चैत्रः न प्रयागम्'' इत्यत्र प्रयागे उद्देश्य-त्वारोपादेव निर्वाहान्नोक्तनिवेशावश्यक इत्याहुः। उक्तलक्षणाङ्गीकारेण कार्यान्तरे कुर्वति चैत्रे किं ग्रामं गच्छति'' अथवा ''ओदनं पचति'' इति प्रश्ने न ग्रामं गच्छति न ओदनं पचतीत्यादिप्रयोगाः अपि व्याख्याताः। अत्र ओदने तादृशफलाश्रयत्वयोग्यतासत्वात्, एवमेव ग्रामेऽपि तादृशयोग्यतासत्वात् कर्मत्वसिद्धौ न किमपि बाधकमिति भावः। उक्तनिवेशास्वीकारे तु नात्र कर्मत्वोपपत्तिरिति बोध्यम्। यत्र तु ताडनादिना पराधीनतया विषभोजनादिकं तत्र विषादितादृशफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वमेव। अनेनानीप्सितस्थलेऽपि कर्मत्वसिद्धिः। यथा विषभक्षिते सति सद्यः ताडनादितः मुक्तिर्भविष्यतीति विचिन्त्य विषं भुङ्क्ते। एवञ्च विषेऽपि तादृशफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वमक्षतमिति। अत एव ''आप्तश्च विषमीप्सितं यद्भक्षयति ताडनात्'' इति भाष्यं संगच्छते। ताडनादिभयात् विषभक्षणस्योद्देश्यत्वमिव कशाभिर्हतः (कोडा इति भाषायां) कारागारं गच्छतीति व्याख्यातम्। कालत्रये काशीगमनशून्ये चैत्रे काशीं गच्छति चैत्र इति वारणाय विशेष इति। काश्याः फलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वयोग्यतासत्वेऽपि योग्यताविशेषाभावान्न कर्मत्वम्। योग्यताविशेषश्च ''व्यापारसमकालिकतटस्थजनगम्यः''। किञ्च इदृशस्थले तद्विशेषवत्वेऽपि निषेध एवानुभवसिद्धः यत् काशीं न गच्छतीति न किमप्यनुपपन्नम्। नन्वेवमपि ''अन्नं भक्षयन् विषं भुङ्क्ते'' ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति'' इत्यादौ विषतृणयोरुद्देश्यत्वाभावात् कथं कर्मत्वमिति चेच्छृणु- ''तथायुक्तञ्चानीप्सितम्''[4] इति लक्षणान्तरस्य सत्वान्न क्षतिः। प्रकृतधात्वर्थप्रधानीभूतव्यापारप्रयोज्य-प्रकृतधात्वर्थफलाश्रयत्वमनीप्सितकर्मत्वमिति तदर्थात्। प्रकृते च प्रकृतधातुत्वेन भक्षिधातोर्गम्धातोश्चग्रहणम्। तथायुक्तमिति सूत्रे तथायुक्तत्वञ्च- समभिव्याहृतधात्वर्थप्रधानव्यापारप्रयोज्यतद्धात्वर्थफला-श्रयत्वरूपम्। पराधीनतया विषं भुञ्जानेऽपि भुजिक्रियाफलाश्रयत्वेनोद्देश्यत्वात् ''कर्तुरीप्सिततं कर्म'' इति सूत्रेणैव सिद्धम्। तदुक्तं भाष्ये आप्तश्च विषमीप्सितं यत्तद् भक्षयतीति। तस्मात् ''चौरान् पश्यती'' द्वेष्योदाहरणम्। विषयेन्द्रियसम्बन्धात् दृश्यमानाऽपि ते न दर्शनोद्देश्याः अपितु अनिष्टदर्शना एवेति स्पष्टं भाष्यकैयटयोः। एवञ्च तत्र पूर्वसूत्रेणाप्राप्तौ वचनमिति। अनीप्सितं= अनुद्देश्यं तच्च द्वेष्यम्, उदासीनञ्च। अनीप्सितपदाभावे ईप्सितस्य प्रकर्षहीनस्याप्यनेन संज्ञा प्राप्तौ ''वारणार्थानामीप्सितः''[5] इत्यनवकाशं स्यात्। द्वेष्योदासीनकर्मसंग्रहार्थमिदं लक्षणम्। अन्यत् कर्म अपि व्याचष्टे- ''अकथितं च''[6] इति सूत्रेणापि कर्मसंज्ञा विधीयते। किन्तु दुहादीनां

व्यापारद्वयार्थकत्वपक्षे ''अकथितं च'' इति सूत्रं व्यर्थम्, पूर्वसूत्रेणैवेष्टसिद्धेः। एकव्यापारार्थकत्वपक्षे तु सम्बन्धषष्ठीः बाधनार्थमावश्यकमिदं सूत्रम्। अयं भावः- ''गो दोग्धि पयः'' इत्यादौ गौः पयस्त्यजति देवदत्तो गवा पयस्त्याजयति'' इत्याद्यर्थस्यापि प्रतीत्या पयोनिष्ठविभागानुकूलगो निष्ठप्यापारानुकूलव्यापारः दुह्धात्वर्थः। अत्र पक्षे फलद्वयस्योपादानात् ''कर्तुरीप्सिततं कर्म'' इत्यनेनैव गोः पयसश्च कर्मत्वं सिद्धम्। किन्तु यदा गोनिष्ठव्यापारस्य प्रतीत्यभावेऽपि दुहादेः प्रयोगो दृश्यते तदा पयोनिष्ठविभागानुकूल- व्यापारः दुह्धात्वर्थ इत्यपि पक्षः। तथा च अपादानत्वाद्यविवक्षायामन्येनासिद्धकर्मत्वार्थम् ''अकथितं च'' इति सूत्रमावश्यकम्। प्रकृतसूत्राभाव अपादानत्वाद्यविवक्षायां सम्बन्धषष्ठी प्राप्नोति, तद्बाधनार्थमिदं सूत्रम्। एकव्यापारार्थकत्वपक्षे कर्मसम्बन्धित्वे सति अपादानादिविशेषाविवक्षितत्वमकथितकर्मत्वमिति तृतीयलक्षणेन ''गां पयो दोग्धि'' इत्यादौ गामित्यस्य कर्मत्वसिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः।

इदानीं कर्मप्रकारान् ब्रूते- एतच्च कर्म सप्तविधमुक्तञ्च वाक्यपदीये- ''निर्वर्त्यञ्च विकार्यञ्च प्राप्यञ्चेति त्रिधा मतम्। तच्चेप्सिततमं कर्म चतुर्द्धाऽन्यत्तु कल्पितम्।। औदसीन्येन यत् प्राप्यं यच्च कर्त्तुरनीप्सितम्। संज्ञान्तरैरनाख्यातं यद्यच्चाप्यन्यपूर्वकम्।।''

क्रमेण तेषामुदाहरणं वक्ष्यते, ''घटं करोति'' इति निर्वर्त्यं कर्म। ''काष्ठं भस्म करोति'' इति ''सुवर्णं कुण्डलं कराति'' इति विकार्यं कर्म। ''घटं पश्यति'' इति प्राप्यं कर्म। ''विषं भुङ्क्ते'' इति द्वेष्यं कर्म। ''गां दोग्धि'' इति संज्ञान्तरैरनाख्यातं कर्म। ''क्रूरमभिक्रुध्यति'' इत्यन्यपूर्वकं कर्म।

संदर्भ

[1] *अष्टाध्यायी* 1-4-49
[2] *अष्टाध्यायी* 2-3-67
[3] *अष्टाध्यायी* 3-2-188
[4] *अष्टाध्यायी* 1-4-50
[5] *अष्टाध्यायी* 1-4-27
[6] *अष्टाध्यायी* 1-4-51

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,8-11
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

व्याप्तिसामान्यविचारः

श्रीकान्त मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *व्याप्तिसामान्यविचार:* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *श्रीकान्त मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

जगदेव दुःखपङ्कनिमग्नमुद्दिधीर्षुः अष्टादश विद्यास्थानेषु अभ्यरहिततमाम् आन्वीक्षिकीं परमकारुणिको मुनिः प्रणिनाय[1] *'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः'*[2] इति नियमम् अनुशृत्य तत्त्वज्ञानमेव मोक्षसाधनम्। तच्च तत्त्वज्ञानं मानाधीना[3] मेयसिद्धिः इति रित्या प्रमाणादि-ज्ञानं विना न सम्भवति। अतः परमकारूणिको मुनिः-प्रमाणप्रमेयसंशय..... इत्यादि असूत्रयत् तच्च प्रमाणं प्रमाकरणत्वरूपं चतुर्विधम् प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दभेदात्।।

तेषु प्रमाणेषु अन्यतमं प्रमाणं अनुमानम् तच्चानुमानं व्याप्तिज्ञानस्वरूपम्। तादृशानुमितिकारणीभूतव्याप्तिज्ञानविषयीभूताव्याप्तिः का? इति प्रश्नानन्तरम् अनुमानप्रामाण्यनिरूपणानन्तरं जायमानायाः अनुमितिकारणीभूत व्याप्तिज्ञानविषयव्याप्तिस्वरूपविषयक-जिज्ञासायाः निवृतये-प्रथमं पूर्वपक्षीया अव्यभिचरितत्वरूपाः पंचव्याप्तयः प्रदर्शिताः।

(1) साध्याभाववदवृत्तित्वम्। (2) साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वम्। (3) साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधि-करण्यम्, (4) सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्। (5) साध्यवदन्यावृत्तित्वम्।[5]

एतेषां लक्षणानां वह्न्यभावाधिकरणह्रदादिनिरूपितवृत्तित्वाभावस्य धूमे सत्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। यद्यपि एतेषां पञ्चविधानामपिलक्षणानां 'इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात्' इत्यादि केवलान्वयिस्थले अव्याप्तिः। तथापि प्रथमलक्षण्स्य वाच्यत्वाभावाधिकरणा-प्रसिद्धया, द्वितीय, तृतीय, पञ्चमानां वाच्यत्ववद्भिन्नत्वाप्रसिद्धयाः अव्याप्तिः।

एवं चतुर्थलक्षणस्याऽपि साध्याभावाधिकरणघटितत्त्वेन वाच्यत्वाभावाधिकरणाप्रसिद्ध्यैव अव्याप्तिः।

अतः प्रतियोग्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्वरूपं व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावमभ्युपगच्छताम् सोन्दड़ानां मतमवलम्ब्य पूर्वोक्तलक्षणेषु केवलान्वयिसाध्यकस्थले जायमानायाः अव्याप्तेः वारणार्थं प्रयाससम्पादनार्थम् आह मणिकारः *'अथेदं वाच्यं ज्ञोयत्वात् इत्यत्र समवायितया वाच्यत्वाभावो घटे एव प्रसिद्धः तथा च नाव्याप्तिः'।*

परन्तु अत्रेयं जिज्ञासा जायते यत् समवायितया वाच्यत्वाभावस्वरूपस्य व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य स्वीकारेऽपि तदधिकरणनिरूपितवृत्तितायाः एव ज्ञेयत्वे सत्त्वात् अव्याप्तिः पूर्ववदेव तिष्ठेत्।

* शोध छात्र, वैदिकदर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : shrikantmishra092@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अतः व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्वीकारे कृते व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावघटितं पारिभाषिकमेवाव्यभिचरितत्वस्य प्रथमं लक्षणमाह→ *यत्समानाधिकरणाः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न व्यापकतावच्छेदक प्रतियोगिताका यावन्तोऽभावाः प्रतियोगिसमानाधिकरणास्तत्त्वम्।*[7]

तथा च लक्षणसमन्वयप्रकारश्चेत्थं-''पर्वतो वह्निमान् धूमात्'' इत्यत्र यत्पदेन धूमहेतुः गृह्यते तदधिकरणे पर्वते विद्यमानः अभावः घटत्वेन वह्न्यभावः

सच अभावः वह्नित्वावच्छिन्नवन्निष्ठः नहि घटत्वेन वह्न्यभावीयप्रतियोगितावान् नास्ति इत्याकारकाभावः अपितु घटाभावीय प्रतियोगितावान् नास्ति इत्याकारकः अभावः, तत् प्रतियोगितावच्छेदिका घटाभावीयप्रतियोगिता अनवच्छेदिका घटत्वेन वह्न्यभावीयप्रतियोगिता, तन्निरूपको अभावः घटत्वेन वह्न्यभावः, तत् प्रतियोगिनः वह्नेः अधिकरणे घटत्वेन वह्न्यभावः विद्यते, अतस्सः अभावः भवति प्रतियोगिसमानाधिकरणः, तत्त्वस्य धूमहेतौ सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। पर्वतो धूमवान् वह्नेः इत्यत्र वह्निसमानाधिकरणः धूमत्वावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदक प्रतियोगिताकाभावः धूमाभावः तस्य च प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वाभावात् नातिव्याप्तिः।

एवमेव वाच्यत्वादिसाध्यककेवलान्वयिस्थले इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात् इत्यत्र समवायितया वाच्यत्वाभावस्य तादृशतया तस्य च प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वेन तत् स्थलेऽपि लक्षणसमन्वयः कर्तुं शक्यते।

यद्येवमाशंकेत प्रमेयवान् वाच्यत्वात् इत्यादि प्रमेयसाध्यकस्थले कस्यापि धर्मस्य प्रमेयावृत्तितया असम्भवात्, कोऽपि अभावः साध्यावृत्तिधर्मावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावत्त्वेन प्रसिद्धः नास्ति। अतः कथं तत्र लक्षणसमन्वयः।

तत्र इदं विचिन्तनीयं यत् तत्रापि भावत्वेन अभावो नास्ति, अभावत्वेन भावो नास्ति इत्याकारकः प्रमेयसामान्यस्य अभावः सुलभः यदि च एषः अभावः भावप्रतियोगिकः अभावप्रतियोगिकश्च अस्ति, इत्येवं ब्रूते चेत्, तदा वह्न्यभाववति जले वह्नित्वेन प्रमेयं नास्ति इत्याकारकः प्रमेयसामान्यस्य अभावः सुलभः, यदि वह्निमतिदेशे वह्नित्वेन प्रमेयं नास्ति इत्याकारक प्रतीतेरभावात्, इयं प्रतीतिः प्रमेयवह्निमात्रप्रतियोगिकत्वमेवावगाहते, न तु प्रमेयसामान्यप्रतियोगित्वं इति चेत् तदापि

अवृत्तिमात्रवृत्ति गगनत्वेन प्रमेयं नास्ति अथ च विरुद्धघटत्वपटत्वोभयाभ्यां प्रमेयं नास्ति इत्याकारकः प्रमेयसामान्याभावः सुलभः। इत्थं प्रकारेण प्रमेयवान् वाच्यत्वात् इत्यत्रापि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिता काभावस्य सौलभत्वं विचिन्तनीयम्। अत्र लक्षणे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न व्यापकता वच्छेदकत्वञ्च, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नवन्निष्ठाऽत्यन्ताभावीयप्रतियोगितानवच्छेदकत्वरूपम्। साध्यवन्निष्ठाभावश्च प्रतियोगिव्यधिकरणोग्राह्यः।

तथा च यत्सम्बन्धेन स्वावच्छिन्नानधिकरणसाध्यवन्निष्ठाभावीय प्रतियोगितावच्छेदको यो यः तदन्यत्वे सति तत्सम्बन्धावच्छिन्नाधेयतावच्छेदकप्रतियोगिताकाः यावन्तोऽभावाः प्रतियोगिसमानाधिकरणास्तत्त्वम्। प्रतियोगिवैयधिकरण्याघटितञ्चव्यापकतावच्छेदकत्व लक्षणे निवेशितं तथा च→*'साध्यवन्निष्ठाभावीय यत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितायाः सामानाधिकरण्येन अनवच्छेदिका यदभावप्रतियोगिता, तादृशाभावीय प्रतियोगिताकाः यावन्तोऽभावाः प्रतियोगिसमानाधिकरणास्तत्त्वम्।'*

एवं व्यधिकरणद्वितीयलक्षणस्वरूपं तावद्→*यत्समानाधिकरणानां साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां यावद्अभावानां प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं तत्त्वं वा तत्।*

अत्र लक्षणे षष्ठ्यन्तत्रयसमभिव्याहारात् अभावत्वं धर्मितावच्छेदकं भवति, तत्र च हेतुसामानाधिकरण्यसाध्यव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वयोः अन्वयः क्रियते।

एवं यत्सामानाधिकरण्यतादृशप्रतियोगिताकत्वअभावत्वएतद्त्रितयधर्माणां धर्मितावच्छेदकं विधाय यावत्त्वस्य अन्वयः। तथा च यत्समानाधिकरणाः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकरूपा-वच्छिन्नप्रतियोगिताकाः यावन्तोऽभावाः प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसमानाधिकरणास्तत्त्वम्।

अत्र लक्षणे ''पर्वतो वह्निमान् धूमात्'' इत्यत्र लक्षणसमन्वयप्रकारश्चेत्थं→ धूमसमानाधिकरणः वह्नित्वावच्छिन्नवन्निष्ठघटाद्यभावीयप्रतियोगितानवच्छेदकं वह्नित्वं तदवच्छिन्नप्रतियोगिताका यावन्तोऽभावाः इत्यनेन वह्नित्वेन घटाभावस्यैव धर्तुं शक्यतया, स्वपदग्राह्यः य अभावः वह्नित्वेन घटाभावः तद्विशिष्टहेत्वधिकरणं पर्वतः तदवच्छेदेन वह्नित्वात्मकप्रतियोगितावच्छेदकं यद् वह्नित्वं तदविच्छन्न वह्निसामानधिकरण्यस्य वह्नित्वेन घटाभावे विद्यमानतया तत्त्वस्य धूमहेतौ सत्त्वात् भवति लक्षणसमन्वयः।

परन्तु चिन्तामणिकारस्य खण्डनग्रन्थः अस्ति। *''प्रतियोग्यवृत्तिश्चधर्मो न प्रतियोगिताकछेदकः''*[9] अर्थात् प्रतियोगी वृत्ति धर्मः एव अवच्छेदको भवति। प्रतियोगिनि अवृत्ति धर्मः प्रतियोगतिावच्छेदको भवितुं नार्हति। अत एव वाच्यत्वत्वेनैव वाच्यत्वाभावः गृहितुं शक्यते। प्रतियोगिनि अवृत्ति समवायित्वधर्मस्य वाच्यत्वाभावीयप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावात् प्रतियोग्यवृत्तिसमवायित्वावच्छिन्नवाच्यत्व प्रतियोगिकाभावमादाय लक्षणसमन्वयासम्भवात्, वाच्यत्वत्वेन वाच्यत्वाभावाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिः तदवस्थैव। अतः एतद् दोषवारणार्थं चिन्तामणिकारेणैव व्याप्तेः सिद्धान्तलक्षणं कृतम्रु प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।[10] अत्र च लक्षणघटकप्रथमयत्पदेन हेतुः गृह्यते एवं द्वितीययत्पदेन साध्यं गृह्यते। तथा च लक्षणस्वरूपम्→ *प्रतियोग्यसमानधिकरण हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावीय प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नवृत्तिर्यो भेदः तत्प्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।* ''घटः सत्तावान् जातेः'' इत्यत्र पटासमानाधिकरण जातिसमानाधिकरणाऽन्ताभावपदेन पटाद्यभावः धर्तुं शक्यते, तादृशाभावीयप्रतियोगितावच्छेदकं पटत्वं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो पटः तद्वृत्तिर्यो भेदः ''सत्ता न इत्याकारकभेदः'' तत् प्रतियोगिसत्तासामानाधिकरण्यस्य जातौ सत्वात् लक्षणः समन्वयो भवति। एवं इत्थं व्यप्तिलक्षणकरणे ''इदं वाच्यं ज्ञेयत्वात् इत्यादौ केवलान्वयिसाध्यकस्थले नाव्याप्तिः। यतोहि घटासमनाधिकरणः ज्ञेयत्वसमानाधिकरणश्च योऽत्यन्ताभावः घटाभावः तादृशाभावीयप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ने घटे वाच्यत्वं न इत्याकारकभेदः अस्त्येव (घटः वाच्यो भवति वाच्यत्वं नास्ति) तत् प्रतियोगिवाच्यत्वसामानाधिकरण्यस्य ज्ञेयत्वे सत्त्वात् लक्षणः संघटते। परन्तु अत्र लक्षणे ''पर्वतः प्रमेयवान् धूमात्'' इत्यत्र घटासमानाधिकरण- हेतुसमानाधिकरणाऽत्यन्ताभावपदेन घटाद्यभावः गृह्यते, तत् प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो घटः तत्र ''प्रमेयो न'' इत्याकारकःभेदस्य धर्तुमशक्यत्वात् अव्याप्तिः स्यात्। यदि एतद् दोषवारणार्थं ''नञ्व्यत्यासः'' क्रियते, अर्थात् यत्पदोत्तरं श्रूयमाणस्य नञ्पदस्य यत्पदाव्यवहितपूर्वं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नपदोत्तरं अनुसन्धानं क्रियते, तथा च लक्षणस्वरूपम्→ *प्रतियोग्यसमानाधिकरण हेतुसमानाधिकरणाऽत्यन्ताभावीय प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नभिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।* तथा च तादृशाभावीयप्रतियोगिता-वच्छेदकावच्छिन्नो घटः तद्भिन्नः पटात्मकप्रमेयः तत् सामानाधिकरण्यस्य धूमे सत्वात् तत्र तु नाव्याप्तिः। किन्तु ''पर्वतो वह्निमान् धूमात्'' इत्यत्र ''चालनीयन्न्यायेन'' तत्तद्वह्निव्यक्त्यभावमादायाव्याप्तिः। अतः एतद्दोषनिरसनार्थं अनवच्छेदकत्वानुसरणं दीधितिकारेण रघुनाथेन कृतम्। पूर्वं तु धर्मिभेदः धर्मिणि भासते परन्तु इदानीं धर्मस्य भेदः धर्मे गृह्यते अर्थात् प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः साध्यतावच्छेदके अन्वेति। तथाच लक्षणस्वरूपम्→ *प्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतुसमानाधिकरणाऽत्यन्ताभावीयप्रतियोगितानच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।*[11] इत्थं व्याप्तेः परिष्कारे कृते तादृशाभावीयप्रतियोगितावच्छेदकं तद्तदव्यक्तित्वं तद्भिन्नं साध्यतावच्छेदकं वह्नित्वं तदवच्छिन्नसाध्यवह्निसामानाधिकरण्यस्य धूमे सत्वात् भवति लक्षणसमन्वयः। एतल्लक्षणघटकप्रतियोगिव्यधिकरणत्वपदानुपादाने ''वृक्षः कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्'' इत्यत्राव्याप्तिः। यतोहि एतद्वृक्षत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावपदेन कपिसंयोगरूपसाध्याभावोऽपि धर्तुं शक्यते। यतोहि एतद्वृक्षत्वाधिकरणे एतद्वृक्षे मूलावच्छेदेन कपिसंयोगाभावः अस्त्येव, तादृशाभावीयप्रतियोगितावच्छेदकमेव साध्यातावच्छेदकं कपिसंयोगत्वम् अनवच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं नास्ति, अतः तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य एतद्वृक्षत्वे अभावात्। तदुपादाने च कपिसंयोगाभावः प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् प्रतियोग्य-समानाधिकरणाऽत्यन्ताभावपदेन पूर्वोक्तसाध्याभावस्य धर्तुमशक्यत्वात् अन्याभावामादाय लक्षणः समन्वयो भवति। यदि एतल्लक्षणघटकाभावे हेतुसमानाधिकरणत्वानुपादाने ''अयमात्मा ज्ञानात्'' इत्यत्राव्याप्तिः यदि अभावे अत्यन्तपदं न निविश्यते चेद्? तदा ''पर्वतो वह्निमान् धूमात्'' इत्यत्रैव ''वह्निर्न'' इत्याकारकभेदमादायाव्याप्तिः। अतः तदुपादानम् इत्थं प्रकारेण सिद्धान्तव्याप्तिलक्षणे कृते सति नास्ति कश्चनदोषः इत्यलम्।

सन्दर्भ-सूची

[1] *न्यायभाष्यम्,* पृष्ठ संख्या 1

[2] *श्रुतिः*

[3] *न्या.सू.,* 1/1/1

[4] *चिन्तामणिः* (व्याप्तिपञ्चकग्रन्थः), पृष्ठ संख्या 2

[5]*चिन्तामणिः* (व्यधिकरणग्रंथः) पृष्ठ संख्या 1
[6]*दीधितिः* (व्यधिकरणग्रंथः) पृष्ठ संख्या 13
[7]*जागदीशी* ((व्यधिकरणग्रंथः) पृष्ठ संख्या 35
[8]*चिन्तामणिः* (व्यधिकरणग्रंथः) पृष्ठ संख्या 1
[9]*चिन्तामणिः* (सिद्धान्तलक्षणम्) पृष्ठ संख्या 1
[10]*दीधितिः* (सिद्धान्तलक्षणम्) पृष्ठ संख्या 5
[11]*******

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,12-14
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

कालिदास की कृतियों में पात्रों के सामाजिक जीवन का पर्यालोचन

श्वेता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कालिदास की कृतियों में पात्रों के सामाजिक जीवन का पर्यालोचन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्वेता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी राष्ट्र अथवा समाज का वास्तविक इतिहास उसका साहित्य होता है। साहित्य ही समाज के उस समय के चिन्तनों, धारणाओं, आकांक्षाओं और आदर्शों का समुचित चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है। समाज शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अज् धातु घञ् प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ है सभा; अर्थात् मनुष्यों के समूह को समाज कहते हैं। समाज शब्द में ठक् प्रत्यय करके सामाजिक शब्द बनता है। इस प्रकार से समाज को व्यक्तियों के समूह के रूप में चित्रित किया जाता है। व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करते और सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण साहित्य समाज का मुकुर है। साहित्य से हमें उस राष्ट्र अथवा समाज की श्रेष्ठता तथा गौरव का परिचय मिलता है। उसमें भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है उस साहित्य में प्रयुक्त पात्रों की। पात्रों के ही माध्यम से किसी राष्ट्र या समाज की स्थिति को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे ही पात्रों के कुशल प्रयोगकर्ता थे महाकवि कालिदास।

भारतीय प्रतिभा के ज्योतिर्मय सूर्य महाकवि कालिदास ने अपने प्रखर प्रज्ञा के प्रकाश द्वारा न केवल भारत भूमि को अपितु समस्त विश्व को आलोकित किया। उनकी नाट्यकला की सुन्दरता निरखिये, काव्य की वर्णन छटा देखिये, गीतिकाव्य के सरस हृदयोद्गारों को पढ़िये, कालिदास की प्रतिभा सर्वातिशायिनी है। कालिदास के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है फिर भी अधिकांश विद्वान इनका जन्म प्रथम शताब्दी उज्जैन में हुआ स्वीकार करते हैं। यह शिव के उपासक थे, रघुवंश के आरम्भ में ही शिव और पार्वती की वन्दना किये हैं- *वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये। जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।*

कालिदास द्वारा रचित सात काव्य प्रसिद्ध हैं- *दो महाकाव्य;* रघुवंश और कुमारसंभव, *दो खण्डकाव्य या गीतिकाव्य;* मेघदूत तथा ऋतुसंहार। *तीन रूपक;* मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल।

* शोध छात्रा, वैदिकदर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : dshweta91@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कालिदास के कृतियों से ज्ञात होता है कि उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था अस्तित्व में थी। समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र चार वर्णों में विभक्त था। ब्राह्मण का मुख्य कर्म अध्ययन-अध्यापन एवं यज्ञादि कृत्यों का सम्पादन करना था। महर्षि कण्व और मारीच आदि इसी प्रकार के ब्राह्मण थे। क्षत्रिय का कार्य देश की रक्षा और शासन करना था। प्रजापालन ही उनका मुख्य कर्तव्य था; दुष्यन्त ऐसे ही राजाओं में थे। वैश्य वर्ण वणिक् वृत्ति से आजीविका चलाता था। शूद्र का कार्य समाज की सेवा करना था। सरोवर में मछली पकड़कर धीवर अपनी आजीविका चलाता था। सभी लोग अपना वंशानुगत कर्म करने में ही गर्व का अनुभव करते थे। कोई भी अपने कर्म के प्रति अरूचि नहीं रखता था, कोई भी वर्ण से विपरीत मार्ग का अनुसरण नहीं करता था। कालिदास के जितने भी पात्र हैं सभी अपने कार्यों का निर्वहन भली-भाँति करते थे; जिससे समाज में उनकी स्थिति अच्छी रहती थी।

कालिदास ने जीवन-क्षेत्र के सभी पक्षों का विचार अपने काव्य में प्रस्तुत किया है। जीवन का कोई भी पक्ष कालिदास की लेखनी से अछूता नहीं रह गया है और उन्हीं विचारों के द्वारा कालिदास ने अपना लक्ष्य भी व्यक्त कर दिया है। जीवन के आध्यात्मिक पक्ष से लेकर समाज-शिक्षा, राष्ट्रीयता, नारीत्व-पुरुषत्व के साथ ही साथ मित्रता, प्रेम, सज्जनता, सुख-दुःख, निर्धनता आदि सभी विषयों से सम्बन्धित विचाररत्न कालिदास के काव्यों एवं नाटकों में उपलब्ध होते हैं।

सामाजिक जीवन की ओर भी कालिदास ने संकेत दिए हैं। कालिदास का यह मत है कि वर्ण और आश्रम की व्यवस्था पर ही समाज का उत्थान सम्भव है। इसी सामाजिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए कवि ने पारिवारिक जीवन, गृहस्थाश्रम, विवाह आदि में भिन्न-भिन्न पक्षों को अपने काव्यों में उभारने का प्रयास किया है। समाज में बालक और बालिकाओं का बड़ा महत्व होता है, अतएव कवि ने बालकों तथा बालिकाओं को भी अपने काव्य में महत्वपूर्ण स्थान दिया। पुत्र-जन्म परिवार के लिए समस्त उत्सवों को प्रदान करने वाला होता है और पुत्र का स्पर्श अमृत-स्पर्श के समान होता है। इस प्रकार के वर्णनों के साथ ही साथ पुत्रों के कर्त्तव्य और शिक्षा, चरित्र आदि के सम्बन्ध में कालिदास ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। कालिदास के पात्र राष्ट्र-कल्याण के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर देने में कभी संकोच नहीं करते।

बालकों के ही समान बालिकाओं के प्रति भी कवि की ममता है। कवि ने नारी रूप का वर्णन बड़ी उत्कृष्टता के साथ किया है। बालिकाएं परिवार के लिए धरोहर के समान होती है, यह कवि की उक्ति है। इसके साथ ही कवि ने इनके महत्व को बताते हुए कहा है कि यह दोनों परिवारों को दीपशिखा की भाँति प्रकाशित करती हैं और इनके प्रति माता-पिता की कितनी ममता होती है इस ओर भी कालिदास ने संकेत किया है। स्त्री के विभिन्न रूपों का वर्णन भी कवि ने किया है। कभी बालिका के रूप में कभी युवती के रूप में, कभी गृहिणी और कभी माता के रूप में, सभी रूप भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखते हैं।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के प्रथम अंक में राजा दुष्यन्त मृगया व्यापार का अत्यन्त शौकीन होने पर भी तपोवन के तपस्वियों द्वारा मना किये जाने पर नहीं मारता- *राजन् आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।*

महर्षि कण्व वनवासी होते हुए भी समाज के व्यवहार को जानते हैं जो अपनी पालिता पुत्री को इस प्रकार से उपदेश देते हैं- *शुश्रूषस्व गुरून्कुरू प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने/ भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः। भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी/ यान्त्येवं गृहिणी पदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।* (अभि0 4/18)

रघुवंशम् में राजा दिलीप कुलगुरू वशिष्ठ की आज्ञानुसार नन्दिनी की सेवा पूरी निष्ठा से करते हैं। जब नन्दिनी राजा की परीक्षा ले रही थी तो ये अपना प्राण भी त्यागने को तैयार हो गये- *स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं, देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद। दिनावसानोत्सुकबालवत्सा, विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।।* (रघु0 2/45)

इसी में ही राम सीता से अत्यधिक स्नेह करने पर भी लोकापवाद के कारण छोड़ देते हैं। सीता इतनी विषम परिस्थिति पड़ने पर भी अपने भाग्य को ही कोसती हैं।

इस प्रकार से कालिदास के सभी पात्र स्वयं में एक आदर्श हैं। वे सामाजिक बन्धनों का पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे।

सन्दर्भित ग्रन्थ सूची

कालिदास ग्रन्थावली (वर्ष 2012) -त्रिपाठी, डॉ0 ब्रह्मानन्द, प्रकाशन- चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
अभिज्ञानशाकुन्तलम् (वर्ष 1996) -त्रिपाठी, डॉ0 श्रीकृष्णमणि, प्रकाशन- चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
रघुवंशम् -मिश्र, साहित्याचार्यः श्रीहरगोविन्द, प्रकाशन- चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी
संस्कृत साहित्य का इतिहास -आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,15-20
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

उपनिषदों में अष्टाङ्गयोग

उपमा राय*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपनिषदों में अष्टाङ्गयोग* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *उपमा राय* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भूमिका

उपनिषदें चिरन्तन ऋषियों के चिंतन से प्रसूत ज्ञान की वह दिव्य राशि हैं, जो काल से अनवछिन्न हैं। अन्य वस्तुओं को काल परिवर्तित कर सकता है किन्तु उपनिषदों में जो सिद्धान्त ऋषियों ने प्रतिपादित किए हैं, उनमें परिवर्तन नहीं हो सकता। ये सिद्धान्त सार्वभौमिक सार्वकालिक और सर्वजनहितकारी हैं। अध्यात्म- विद्या केवल साधारण ज्ञान नहीं है, बल्कि एक महा-विज्ञान है, मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

उपनिषद् शब्द का निर्वचन

उपनिषद् शब्द ''उप'' और 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु से 'क्विप' प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। 'सद्' धातु विसरण, गति, अवसादन, इन तीन अर्थों में प्रयुक्त होती है- ''षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु।''

उपनिषदों की विषयवस्तु

अध्यात्म विद्या, ज्ञान-मीमांसा, तत्त्व-मीमांसा, आचार-मीमांसा, देवताओं का स्वरूप, परा-अपरा विद्या, व्यवहार और नीति कर्म स्वातंन्त्र्य, आत्मा की अपरोक्षानुभूति ये सभी उपनिषदों के विषय हैं।

* शोध छात्रा, वैदिकदर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : cuteupmarai91@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उपनिषदों की संख्या

मुक्तिकोपनिषद् में कुल 108 उपनिषदों के नाम बताए गए हैं। इनमें से 10 उपनिषदों पर आचार्य शंकर के भाष्य प्राप्त होते हैं तथा ये ही दश उपनिषद् प्रमाणिक माने गए हैं। इन 108 उपनिषदों में 20 उपनिषद् ब्रह्मयोगिकृत (योग : विषयक) टीका सहित दिये हुए हैं।

योग शब्द की व्युत्पत्ति

व्याकरण शास्त्र के अनुसार योग शब्द की निष्पत्ति तीन धातुओं से हो सकती हैं- युज् समाधौ, युजिर योगे तथा युज् संयमने। रुधादिगण की 'युजिर् योगे' धातु मिलन, संयोग अथवा जोड़ के अर्थ में तथा 'युज समाधौ' दिवादिगण की धातु समाधि के अर्थ में तथा युज् संयमने जोड़ के अर्थ में ली जाती है।

योग की परिभाषाएँ

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है- *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।*[1]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि जब पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर हो जाती हैं और मन निश्चल बुद्धि के साथ आ मिलता है, उस अवस्था को ''परम गति'' कहते हैं। इन्द्रियों की स्थिर धारणा ही योग है। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती है, वह अप्रमत्त अर्थात् प्रमादहीन हो जाता है और यही अवस्था योग है- *यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह/ बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्। तां योगमिति मन्यंते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्/ अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययो।*[2]

मैत्रायण्युपनिषद् में कहा गया है कि प्राण मन व इन्द्रियों का एक हो जाना, एकाग्रावस्था को प्राप्त कर लेना, बाह्य विषयों से विमुख होकर इन्द्रियों का मन में और मन का आत्मा में लग जाना, प्राण का निश्चल हो जाना योग है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि कर्मों में कुशलता ही योग है- *योगः कर्मसु कौशलम्।*[3]

योग की विभिन्न पद्धतियाँ

योग के प्रचलित पद्धत्तियों में कुछ के नाम इस प्रकार हैं- आर्षयोग, ध्यानयोग, राजयोग, अष्टांगयोग, कमयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग, पूर्णयोग, मन्त्रयोग, लययोग, सिद्धयोग, जपयोग, शब्दयोग, सुरतयोग, प्रणवयोग, सांख्ययोग आदि।

इन सभी पद्धत्तियों का उद्देश्य लक्ष्य प्राप्ति करना है।

अष्टाङ्ग योग

योग के आठ अङ्ग माने गए हैं इन आठो अङ्गो को ही अष्टाङ्गयोग कहा जाता है। योग सूत्र में योग के आठ अङ्ग इस प्रकार बताए गए हैं- *यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाध्योऽष्टावङ्गानि।*[4]

उपनिषदों में योगाङ्गों का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है। उपनिषदों के मुख्यतः दो वर्ग हैं। ईशोपनिषद् आदि प्रधान-भूत एकादश उपनिषद् तथा अन्य उपनिषदें। ईशादि एकादश उपनिषदों में यम-नियम आदि का नाम लेकर उस रूप में योगांगों की चर्चा नहीं की गई है जैसे की शेष उपनिषदों में। किन्तु इन उपनिषदों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूप से योगाङ्गों का बीज प्राप्त होता है।

1. यम

योगसूत्र में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को यम कहा गया है- *अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।*[5]

उपनिषदों में भी यम नियमों का उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु वहाँ पर इनका स्वरूप एवं परिभाषा योगदर्शन के समान तथा उससे भिन्न भी प्राप्त होता है।

(i) अहिंसा : अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर अहिंसक योगी की सन्निथि में रहनेवाले समस्त प्राणी हिंसक प्रवृत्ति का परित्याग करके परस्पर प्रेमपूर्वक रहने लगते हैं- *अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।*[6]

शाण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर अहिंसक योगी की सन्निधि में रहने वाले समस्त जीव हिंसक प्रवृत्ति का परित्याग करके परस्पर प्रेम पूर्वक रहने लगते हैं- *तत्राहिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वभूतेषु सर्वदा-कलेशजननम्।*[7]

(ii) सत्य : जिस योगी की सत्य में दृढ़ स्थिति हो जाती उसकी वाणी से कभी असत्य नहीं निकलता क्योंकि वह यथार्थ ज्ञान वाला होता हो जाता है। ऐसी स्थिति में उस सत्यनिष्ठ व्यक्ति की वाणी क्रियाफल का आश्रय बनती है- *सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानाः।*[8]

तैत्तिरीयोपनिषद् में स्नातक को किसी भी अवस्था में सत्य की उपेक्षा न करके सर्वदा सत्य बोलने का उपदेश देता है- *सत्यं वद। सत्यान्न प्रमदितत्यम्।*[9]

(iii) अस्तेय : अस्तेय विषयक प्रतिष्ठा की प्राप्ति होने पर सभी प्रकार के रत्नों की उपस्थिति होती है- *अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थापनम्।*[10]

मन, वचन, शरीर तथा कर्म द्वारा अन्य में द्रव्य के विषय में निः स्पृहा होना ही अस्तेय कहा जाता है- *अस्तेयं नाम मनोवाक्काय-कर्मभिः परद्रव्येषु निःस्पृहाः*[11]

(iv) ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्य विषयक प्रतिष्ठा प्राप्त होने पर वीर्य का लाभ होता है- *ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।*[12]

छान्दोग्योपनिषद् में ब्रह्मचर्य के द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति बतलाई गई है- *तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुवदन्ति।*[13]

(v) अपरिग्रह : अपरिग्रह नामक स्थिरता प्राप्त होने पर भूत, भावी तथा वर्तमान जन्म तथा उन जन्मों की विशिष्टता का साक्षात्कार होता है- *अपरिग्रहस्थैर्य जन्मकथन्तासम्बोधः।*[14]

कठोपनिषद् में यमाचार्य नचिकेता के समक्ष संसार के सभी प्रलोभन उपस्थित करते हैं किन्तु नचिकेता यह कहकर इनका तिरस्कार कर देता है कि- *तवैव वाहास्तव नृत्यगीते यमाचार्य*

मुझे इन विषयों में से कुछ नहीं चाहिए, ये सब तुम्हें प्राप्त हों। नचिकेता का त्याग अपरिग्रह वृत्ति का ही फल है।

2. नियम

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।[15]

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश-प्रणिधान- ये पाँच ''नियम'' कहे गये हैं।

(i) शौच : शौच के पूर्णतः अनुष्ठान से, स्थिरता से, अपने अंगों के प्रति ग्लानि घृणा उत्पन्न होती है और दूसरों के स्पर्श करने का अभाव हो जाता है- *शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः*[16]

कठोपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो व्यक्ति सदैव पवित्र रहता है, वही ब्रह्म पद को प्राप्त कर सकता है- *स तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुद्धिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।*[17]

(ii) सन्तोष : सन्तोष से, सर्वश्रेष्ठ, अनुपम, सुखलाभ होता है। *सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः।*[18]

ईशोपनिषद् में कहा गया है कि मनुष्य को त्यागपूर्वक ही उपभोग करना चाहिए अथवा परमेश्वर के द्वारा प्रदत्त भोगों का ही संतोष पूर्वक उपभोग करना चाहिए यह एक प्रकार से सन्तोष वृत्ति को धारण करने का ही उपदेश है- *तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृधः कस्यास्विद्धनम्।*[19]

(iii) तप : तप का आचरण करते-करते तपोनिष्ठा की प्राप्ति होने पर अशुद्धि रूप आवरण-मल के क्षय होने से शरीर तथा इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त होती है- *कायेन्द्रिय सिद्धि शुद्धिक्षयात्तपसः।*[20]

तैत्तिरीयोपनिषद् में अनेक बार तप का उल्लेख करते हुए तप के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति बतलाई है तथा तप को साक्षात् ब्रह्म बतलाया गया है- *तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति।*[21]

(iv) स्वाध्याय : स्वाध्याय से इष्टदेव का दर्शन प्राप्त होता है- *स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।*[22]

तैत्तिरीयोपनिषद् में स्वाध्याय के साथ प्रवचन को भी जोड़कर इन दोनों को करना आवश्यक कर्तव्य बतलाया गया है- *ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय0।*[23] *स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।*[24]

(v) ईश्वरप्रणिधान : ईश्वर-प्राणिधान अर्थात् सभी कर्मों को ईश्वर के लिए अर्पित करने से सम्प्रज्ञात समाधि सिद्धि होती है- *समाधिसिधिरीश्वरप्रणिधानात्।*[25] उपनिषदों में कहा गया है कि कर्म व्यक्ति को बांधने वाले न हों। ईशोपनिषद् में कहा गया है कि व्यक्ति की कर्मफल में अनासक्ति होनी चाहिए- *न कर्म लिप्यते नरः।*[26]

3. आसन

जिससे स्थिरता एवं सुख की प्राप्ति हो वह, आसन कहा जाता है- *स्थिरसुखमासनम्।*[27]

व्यास जी ने पद्मासन आदि 12 आसनों के नाम बताए हैं। शाण्डिल्योपनिषद् में 1.1 में ''आसनान्यष्टौ'' कहकर केवल 8 आसन बताया है।

ध्यान-बिन्दू पनिषद् में कहा गया है कि जितनी भी जीव जातियाँ होती हैं, उतने ही प्रकार के आसन होते हैं- *आसनानि च तावंति यावन्त्यो जीवजातयः।*[28]

4. प्राणायाम्

आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास एवं प्रश्वास की स्वाभाविक गति का जो विच्छेद है वह प्राणायाम कहा गया है- *तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।*[29]

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि सभी भूत प्राण से ही उत्पन्न होते हैं तथा प्राणों में ही लीन होते हैं- *सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवासंविशन्ति।*[30]

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी प्राण से भूतों की उत्पत्ति बतलाकर प्राण को साक्षात् ब्रह्म ही कह दिया गया- *प्राणो ब्रह्मेति व्यजानत्।*[31]

5. प्रत्याहार

इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों के साथ संयुक्त न होने पर, चित्त के स्वरूपानुकार रूप की तरह हो जाना, प्रत्याहार है- *स्वविषयसम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इनेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।*[32]

मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में भी विषयों से इन्द्रियों को हटाना प्रत्याहार कहा गया है- *इन्द्रियार्थेभ्यो मनोनिरोधनं प्रत्याहारः।*[33]

6. धारणा

चित्त को किसी नासिकाग्र भाग आदि स्थानों में एकाग्र करना, धारण हैं- *देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।*[34]

श्वेताश्वर उपनिषद् में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विद्वान् पुरूष मन को उसी प्रकार धारण करे जैसे कि दुष्ट अश्व को वश में किया जाता है- *दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनोधारयेत्ताप्रमतः।*[35]

7. ध्यान

उस नाभि चक्र आदि स्थानों में जो ज्ञानवृत्ति अथवा ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है वह ध्यान कहा जाता है- *तत्र प्रत्ययैक-तानता ध्यानम।*[36]

मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि ज्ञानप्रसाद के द्वारा विशुद्धसत्य होकर ध्यान करता हुआ आत्मा को देखे- *ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वस्ततस्तु तं पश्येत् निष्कलं ध्यायमानः।*[37]

8. समाधि

वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूपमात्र का प्रकाशक होते हुए अपने स्वरूप से शून्य-सा हो जाता है तब वह समाधि कहलाता है- *तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशूनयमिव समाधिः।*[38]

शाण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि- जीवात्मा व परमात्मा की एकता अनुभव करने से ज्ञान ज्ञेय और ज्ञातावह त्रिपटी रहित परमानन्द स्वरूप और शुद्धचैतन्य अवस्था ही ''समाधि'' कही जाती है- *जीवात्मपरमात्मैक्यावस्थः त्रिपुटीरहिता परमानन्द-स्वरूपा/ शुद्धचैतन्यालिका भवति समाधिः।*[39]

अतः इस प्रकार सभी उपनिषदों के अध्ययन एवं मनन से यह सिद्धान्त होता है कि अष्टांग योग का वर्णन उपनिषदों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में वर्णित है, जो मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपादेय है।

संदर्भ ग्रंथ

[1] *यो0सू0* 1/2
[2] *कठो0,* उ0 2/3/10-11/1
[3] *गीता,* 2/50
[4] *यो0सू0,* 2/29
[5] *यो0सू0,* 2/30
[6] *यो0सू0,* 2/35
[7] *शा0उ0,* 1/1
[8] *मु0उ0,* 3/1/6
[9] *तैत्तिरीयो0,* 01 : 101
[10] *यो0सू0,* 2/37
[11] *शा0उ0,* 1/1/11
[12] *यो0सू0,* 2/38
[13] *छा0उ0,* 8/3/3
[14] *यो0सू0,* 2/39
[15] *यो0सू0,* 1/32
[16] *यो0सू0,* 2/40
[17] *कठो0 उ0,* 3/8
[18] *यो0सू0,* 2/42
[19] *इशो0 उ0,* 1.1
[20] *यो0सू0,* 2/43
[21] *तै0उ0,* 3.3
[22] *यो0सू0,* 2/44
[23] *तै0उ0,* 1.9.7.6
[24] *तै0उ0,* 1.101

[25] *यो0सू0,* 2/45
[26] *ईशो0उ0,* 2
[27] *यो0सू0,* 2/46
[28] *ध्या0वि0,* 4/2
[29] *यो0सू0,* 2/49
[30] *छा0उ0,* 1.11.5
[31] *तै0उ0भृ0व0 (अनु),* 03
[32] *यो0सू0,* 2.54
[33] *मण्डल ब्रा0,* पृष्ठ संख्या 347
[34] *यो0सू0,* 3/1
[35] *श्वे0,* 2/9
[36] *यो0सू0,* 3/2
[37] *मु0उ0,* 1.8
[38] *यो0सू0,* 3/3
[39] शा0उ0

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,21-23
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

डॉ. हरि नारायण दीक्षित विरचित भारत माता ब्रूते महाकाव्यम् : एक अनुशीलन

संगीता प्रजापति*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. हरि नारायण दीक्षित विरचित भारत माता ब्रूते महाकाव्यम् : एक अनुशीलन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *संगीता प्रजापति* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कवि परिचय

महाकवि हरि नारायण दीक्षित, ग्राम-पढ़कुला, जिला-जालौन, उत्तर प्रदेश के निवासी है। इनकी माता सुदामा एवं पिता स्व0 रघुवीर सहार दीक्षित हैं।

भूमिका

यह निर्विवाद सत्य है कि सम्पूर्ण भारतीय वैदिक वाङ्मय तथा लौकिक संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु समग्र विश्व साहित्य में वेद प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ रत्न है। वेदों में उपस्थित ज्ञान राशि सर्वाधिक प्राचीन है। इहलौकिक तथा पारलौकिक विषयों का उद्घाटन होने के परिणामस्वरूप ही इन्हें समग्र ज्ञान राशि का कोश कहा गया है। ऋषियों तथा महर्षियों की तपश्चर्या के फलस्वरूप शब्द प्रधान ऋक् यजुष् तथा साम ज्ञान की जो अविरल धारा प्रवाहित हुई वह वेद नाम से अलङ्कृत हुई। 'वेद' मन्त्र तथा ब्राह्मण इन दोनों के नामधेय को कहा गया है- *मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्*[1]

वेद की रचना किसी पुरूष के द्वारा नहीं हुई है अपितु वे अपौरूषेय हैं- *अपौरूषेयं वाक्यं वेदः*[2]

वेद में जहाँ और मंत्रों सूक्तो तथा संवादो सूक्तों आदि के माध्यम से देवताओं की स्तुतियों, यज्ञों तथा उपासना आदि का वर्णन है, वही दूसरी ओर साहित्य के तत्व-रस अलङ्कार तथा छन्दादि के माध्यम से सरस साहित्य का मनोरम वर्णन दृष्टिगोचर

* शोध छात्रा, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : sangitabhu728@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

होता है। इन साहित्यिक तत्वों के अनुस्यूत होने के कारण वेद को अमर काव्य कहा गया है, जो कभी पुरातन नहीं होता अपितु नित्य नूतन ही रहता है- *पश्य देवस्य काव्यं न मामर न जीर्यति।*

यह काव्य के साथ ही भारतीय ज्ञान-विज्ञान तथा प्रज्ञान का भी मूल स्रोत है जिसका भान विभिन्न विषयों के परिशीलन तथा मनीषियों एवं वैज्ञानिकों द्वारा किए गये अनुसंधानों से होता है।

संस्कृत साहित्य में अनेक प्रकार के ग्रन्थों की रचना विविध विधाओं में हुई है। यथा-महाकाव्य खण्डकाव्य तथा नाटकादि। महाकाव्यों की परम्परा में लौकिक संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि ''आदिकवि'' तथा उनकी कृति रामायण ''आदिकाव्य'' की संज्ञा से अभिहित है। क्रौञ्च पक्षी की विरह जनित पीड़ा को देखकर उनके अन्तःकरण से जो छन्दोमयी वाणी निःसृत हुई वह संस्कृत साहित्य की प्रथम रचना के रूप में परिगत हुई- *मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः। यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमबधीः काममोहितम्।*[2]

सत्यवतीनन्दन महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास द्वारा विरचित महाभारत अपनी विशालता से संसार में आश्चर्य का कारण है। रामायण एवं महाभारत नामक दोनों ही आर्ष-काव्य संस्कृत साहित्य के प्रधान उपजीव्य है। पुराण का सामान्य अर्थ प्राचीन है, प्राचीनता तथा महत्व में पुराण वैदिक संहिताओं के समान माने गये हैं।

पुराण का निरूक्तकार यास्क ने यह लक्षण दिया है- *पुरा नवं भवति/ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्।*[3]

सर्वप्रथम महाकाव्य का अन्य नाम भी मिलता है- सर्गबंध यह नाम भी बाल्मीकि रामायण के प्रभाव से प्रचलन में आया हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि बाल्मीकि रामायण पहला काव्य है, जिसका विभाजन कांडो के अंतर्गत संर्गों में हुआ है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः। सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः।। एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा। श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोङ्गी रस इष्यते।।[4]

महर्षि वेदव्यास के अतिरिक्त कुछ ऐसे महाकवि हैं जिनकी रचनाओं को लघुत्रयी तथा वृहत्त्रयी मे रखा गया है। सुकुमार मार्ग का अनुसरण करने वाले कवियों की रचनाओं को लघुत्रयी तथा विचित्र मार्ग का अनुकरण करने वाले कवियों की रचनाओं को बृहत्त्रयी के अन्तर्गत रखा गया है।

लघुत्रयी में महाकवि कालिदास प्रणीत कुमारसम्भवम् रघुवंश महाकाव्यम् तथा मेघदूत परिगणित है।

वृहत्त्रयी में महाकवि भारवि प्रणीत किरातार्जुनीयम महाकवि माघ प्रणीत शिशुपालवधम् तथा श्रीहर्ष प्रणीत नैषधीयचरितम् परिगणित है।

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य में अपने अर्थगौरव के वैशिष्ट्य के लिए प्रसिद्ध हैं अतएव इनके विषय में कहा भी गया है- *उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।*

प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने महाकवि भारवि के अपूर्व काव्य की तुलना नारिकेल फल से की है- *नारिकेलफल-सम्मितं वचः।*

जो आकारतः कठोर एवं पुष्ट परन्तु आन्तरिक रूप से अत्यन्त सरस हुआ करता है।

महाकवि कालिदास, अश्वघोष भारवि माघ आदि कवियों ने इस परम्परा का निर्वाह बखूबी किया है जिसे आज भी संस्कृत साहित्य को भी जीवन्तता प्रदान की है।

तदन्तर इस प्रकार की परम्परा का निर्वाह करते हुये बहुत सारे महाकाव्यों का लेखन संस्कृत साहित्य में हुआ है जिसमें आधुनिक कवियों में, *अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी, आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी और हरिनारायण दीक्षित* आदि कवि है।

जिसमें हरिनारायण दीक्षित कृत भारत माता ब्रूते महाकाव्य का मैंने पठन-पाठन के दौरान अध्ययन किया जिससे मुझे इस विषय पर शोध करने की इच्छा प्रकट हुयी। अतः यह विषय समाज के लिए बहुत ही उपयोगी हो सकता है, इसलिए मैंने इसे अपना शोध विषय बनाना उचित समझा।

इसमें आधुनिक समाज तथा वन्दियाँ आधुनिकीकरण अन्य विषयों पर कवि के द्वारा प्रकाश डाला गया है। *भारत माता ब्रूते महाकाव्यम्*- कृतिकार डॉ0 हरिनारायण दीक्षित प्रथम संस्करण-2003।

डॉ0 हरिनारायण दीक्षित द्वारा संस्कृत भाषा में विरचित भारत माता ब्रूते नामक महाकाव्य है। यह महाकाव्य अधुनातन भारतीय समाज में संक्रामक रोग की तरह तेजी से फैलती हुई अपसंस्कृति और अपसभ्यता के विभिन्न पक्षों को उजागर करके लोगों को उनसे दूर रहने का संदेश देता रहता है।

इसमें 22 सर्ग है जिसमें समाज के प्रायः प्रत्येक प्रकार की व्यक्ति की व्यथा कथा को सुनकर उस परिस्थिति को मानवता के विपरित सिद्ध किया गया है और उसे न विपरित सिद्ध किया गया है और उसे न पनपने देने का संदेश दिया है। इस महाकाव्य में कवि ने सर्वप्रथम गणेश की माता पार्वती जी की और महादेव जी की स्तुति की गयी है इसके बाद विद्या की देवी सरस्वती तत्पश्चात जन्म देने वाली माँ और भारत माँ की वन्दना की गयी है।

इसमें कवि ने भारतीय संस्कृति भारतीय सभ्यता देश प्रेम सर्वधर्मसम्भाव सर्वजातिसम्भाव सर्वक्षेत्रसम्भाव सदाचार अंहिसा-कर्तव्यनिष्ठा कृतज्ञता आदिमानवीय गुणों को अपनाने के लिए स्थान-स्थान पर प्रेरित किया है। महाकाव्य की शुरूवात में खेद और शोक से रहते वैकुण्ठ लोगों ने पुष्पवाटिका में बैठे हुये भगवान विष्णु और लक्ष्मी जी का आपस वार्तालाप के दौरान सांसारिक लोगों की सुख-दुख की बाते और भारत की चर्चा कवि ने कराकर महाकाव्य में बीज को उद्घृत किया है। और उसी दौरान जैसे माता-पिता को अपने बच्चों की सुख-दुख को जानने के लिए मन उत्कष्ठित होता है उसी प्रकार ऐसी इच्छा लिए हुए माँ लक्ष्मी और पिता विष्णु भारत भूमि के भ्रमण पर निकल गये, भ्रमण के दौरान कवि ने विभिन्न घटनाओं को आधार बनाकर महाकाव्य के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

स्रोत

[1]*आपस्तम्ब कृत यज्ञ परिभाषा,* 1.33
[2]*आचार्य सायण कृत ऋग्वेद भष्य भूमिका,* पृष्ठ संख्या 127
[3]*वाल्मीकि रामायण*
[4]*वा0पु0* 3/6/24, कू0पु0 1/12
[5]*साहित्य दर्पण,* 6/324

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,24-26
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

अथर्ववेद में वर्णित विविध रोगों की चिकित्सा

प्रियंका पाठक*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अथर्ववेद में वर्णित विविध रोगों की चिकित्सा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रियंका पाठक* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय संस्कृति का मूलाधार ग्रन्थ वेद ही है, जो मानव जाति के लिये श्रेयस्कर मार्ग को प्रकाशित करते हुये मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। इहलोक और परलोक दोनों को दुःखरहित एवं सुखपूर्ण बनाने के लिये विविध उपायों का विधान वेदों में हुआ है। चारों वेदों में अथर्ववेद एक भूयसी विशेषता से संवलित अन्यतम वेद है।

संसार के समस्त रोगों का समाधान अथर्ववेद में मिलता है। अथर्ववेद में विविध प्रकार की औषधियों का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद का उपवेद आयुर्वेद है और आयुर्वेद प्राकृतिक चिकित्सा का अक्षय भण्डार है। अथर्ववेद में विविध रोगों का चिकित्सा और औषधियाँ इस प्रकार बतायी गयी है :

1. *वात रोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में पिप्पली अर्थात् पीपर के गुणों का वर्णन किया गया है। अथर्ववेद का कथन है कि पीपर का सेवन करने वाला कभी रोगग्रस्त नहीं होता है। *पिप्लल्यः.....नं स रिष्यति पूरुषः।*[1]

पीपर यह अकेली औषधि जीवन-दान के लिए पर्याप्त है। पीपर से उन्माद रोग, वातरोग और पक्षाघात की चिकित्सा होती है।

भाव प्रकाश निघण्टु में पीपर के गुणों आदि का वर्णन है।[2] पीपर भूख बढ़ाने वाली, शक्तिवर्धक, रसायन, वात और कफ की नाशक तथा रेचक है। यह खासी, उदररोग, ज्वर, कोढ़, प्रमेह, गँठिया, बवासीर, दर्द और आमवातनाशक है।

2. *पित्त रोग चिकित्सा;* पित्त रोगों में अतिसार, रक्तातिसार, आमातिसार, रक्तपित्त, विशरीक तथा रक्त वमन आदि रोग परिगणित होते हैं। अथर्ववेद में इन रोगों को विशरीक अथवा आशरीक कहा गया है। अथर्ववेद में इसकी चिकित्सा के लिये भी अनेक औषधियाँ बताई है। *आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम्। मण्डूकी....आसु शं भुवः।। पिपीलिकावतः।।*[3]

3. *कफ रोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में कफरोगों की सविस्तार वर्णन है। कास, कासा अथवा कासिका (खाँसी) के रोग पर अनेक सूक्तों पर चर्चा है। इसकी चिकित्सा तीन प्रकार से होती है- मानस चिकित्सा, पार्थिव चिकित्सा (मृच्चिकित्सा) एवं समुद्री चिकित्सा।

मानस चिकित्सा में मनोबल द्वारा अथवा संकल्प द्वारा कफ बाहर निकाला जाता है। *एतवा त्वं कासे प्रपत, मनसोऽनु प्रवारयम्।।*[4]

मृच्चिकित्सा में मिट्टी के क्षार द्वारा कफ दूर किया जाता है। *एवा त्वं कासे प्रपत, पृथिव्या अनु संवृतम्।।*[5]

* शोध छात्रा, आयुर्वेद संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

समुद्री चिकित्सा में समुद्रीझाग (समुद्र फेन) द्वारा कफ शान्त की जाती है और इस तरह कास (खासी) शान्त किया जाता है- *एवा त्वं कासे प्रपत, समुद्र स्यानु विक्षरम्।।*[6]

भाव प्रकाश में भी ''समुद्रफेनः कफछत्[7]'' कहकर समुद्रझाग को कफहर अथवा कास रोग नाशनी कहा गया है।

बलास भी कफ रोग माना जाता है। इसे क्षय रोग माना जाता है। अथर्ववेद में इसके निवास स्थानों द्वारा इसकी औषधियों जंगिड, आञ्जन, पिप्पली एवं वंश (बांस) का विस्तृत वर्णन है- *त्रयो दासा आञ्जनस्य तक्मा बलास आदहिः। बलासं सर्वं नाशय।। अथो बलास नाशनी ओषधीः।। पिप्पलीक्षिप्त भेषजी।। वंशानां ते नहनानाम्0।।*[8]

4. *केश रोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में बालों में होने वाले रोगों की चिकित्सा तथा बाल बढ़ाने के उपायों का वर्णन होता है। अथर्ववेद में दो सूक्तों में नितत्नी औषधि को केश रोग की चिकित्सा बताया है। *त्वा त्वा नितत्नी केशेभ्यो दृंहणाय खनामसि। दृहं प्रत्नान् जनयाजातान् जातानुवर्षीयसस्कृधि।। उत स्थ केश दृंहणीरथो ह केशवर्धनीः।।*[9]

यह बालों को बढ़ाती है, बालों की जड़ों को मजबूत करती है, जहाँ बाल नहीं होते हैं, वहाँ पर नये बाल उगाती हैं अथर्ववेद में रेवती औषधि को केशवर्धक और बालों को दृढ़ करने वाला कहा गया है। शमी भी केशवर्धक औषधि है। *मृड केशेभ्यः शमि।*[10]

5. *नेत्र रोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में नेत्र-रोग की औषध चिकित्सा का वर्णन है।[11] नेत्र रोग में उपयोग की जाने वाली औषधि को सुपर्ण की कनीनिका कहा गया है- *दिव्यस्यसुपर्णस्य तस्य हासि कनीनिका।*[12]

सुपर्ण कमल का बोधक है। सुपर्ण की कनीनिका का अभिप्रायः है- कमल के अन्दर का पराग। आयुर्वेदिक निघण्टु में सफेद कमल के पराग को आँखों के लिए लाभप्रद कहा गया है। अंजन को नेत्र-रोगों के लिए विशेष लाभप्रद कहा है।

6. *मानसिक रोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में क्रोध की चिकित्सा का वर्णन किया गया है- *अयं दर्भो विमन्युकः। अयं यो भूमिमूलः समुद्रमवतिष्ठति। मन्युशमन उच्यते।।*[13]

इसमें दर्भ और भूरिमल औषधियों का उल्लेख है। दर्भ कुश या कुशा को कहते हैं। भावप्रकाश निघण्टु में कुश को शीतल कहा गया है, अतः वह क्रोध आदि को शान्त करता है।

7. *क्षत, व्रण की चिकित्सा;* अथर्ववेद में शीघ्र लगे चोट आदि के लिए जल-चिकित्सा बताई गयी है। शीघ्र लगे चोट पर गीले कपड़े की पट्टी बाँध देने से रक्त प्रवाह बन्द हो जाता हैं और चोट ठीक हो जाती है। इससे चोट, घाव आदि के लिए लाक्षा आषधि को बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है। लाक्षा को हिन्दी में लाख या लाही कहते हैं। डण्डा, बाण और जलने से जो घाव होता है, उसकी यह दवा है। लाक्षा के पीने से असाधारण शक्ति आती है, यह जीवन शक्ति देने वाली है। अथर्ववेद में खून को रोकने के लिए एक विशेष पत्थर का उल्लेख है। यहाँ पर अश्मन् से सफेद फिटकरी का ही अर्थ लेना उचित है। फिटकरी सब प्रकार के चोटों, घावों पर अत्यन्त उपयोगी है यह लगाते ही खून को फाड़ देती है और खून के प्रवाह को रोक देती है। रक्त स्राव को रोकने के लिये विभिन्न शिराओं के बन्धन का भी विधान है- *शतस्यधमनीनां सहस्त्रस्य हिराणाम्, अस्थुरिन्मध्यमा इमाः।*[14]

व्रण विद्रध फोड़े को कहते है। अथर्ववेद में गूगल, चीपुद्रु, साल आदि औषधियाँ विद्रध के उपचारार्थ कही गयी है- *यं भेषजस्य गुल्गुलोः ....।। विद्रधस्य बलासस्य लोहितस्य वनस्पते।। भेषजं चीपुद्रुरभिचक्षणम्।। विवृहामो विसल्पकं विद्रधं हृदयामयम्।। निः सालां धृष्णुं धिषणम्. .....।।*[15]

8. *विष चिकित्सा;* अथर्ववेद ने समस्त रोगों का कारण विष को माना है। अथर्ववेद में ताबुव औषधि से सर्प विषनाशन का वर्णन है- *ताबुवेन अरसं विषम्।*[16]

ताबुव के जो गुण बताये गये हैं, वे कुटुतुम्बी अर्थात् कड़वी लौकी में पाये जाते हैं। भाव प्रकाश में कुटुतुम्बी के गुण बताये गये है कि यह ठण्डी, हृदय को शक्ति देने वाली, पित्त, खाँसी, विष, वातज्वर और पित्त ज्वर को नष्ट करने वाली होती है। राजनिघण्टु आदि में इसको वमनकारक अर्थात् कै कराने वाली कहा है। यह उल्टी के द्वारा विष के प्रभाव को बाहर निकाल देती है। अतः सर्पविषनाशक कही जाती है।

9. *शिरोरोग चिकित्सा;* सिर दर्द अथवा शिरोरोग का उल्लेख अथर्ववेद में अनेक स्थान पर प्राप्त हैं- *शीर्षक्तिं शीर्षामयम्.....। सर्व शीर्षण्यं ते रोगं बहिर्निमन्त्रयामहे।। उदान्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगमनीनशः।।*[17]

इन मन्त्रों में शिरोवेदना अथवा शिरोरोगों के लिये शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य रोग नामों का उल्लेख है। उदय होते हुये सूर्य की किरण (सौर चिकित्सा) मन्त्र चिकित्सा और औषध चिकित्सा से शिरोरोग का उपचार कहा है।

10. *राजयक्ष्म अथवा क्षयरोग चिकित्सा;* अथर्ववेद में राजयक्ष्म का अनेक बार उल्लेख है- *मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कम्। अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।।*[18]

इस मन्त्र में राजयक्ष्म रोग के साथ-साथ अज्ञात यक्ष्म रोग (सम्भवतः कैसर) का भी उल्लेख है। इन रोगों की औषधि हविष बतायी गयी है। हविष का अभिप्रायः हवन से है। हवन में विभिन्न औषधों की आहुति तथा घृत आदि सुगन्धित द्रव्यों की आहुति से राजयक्ष्म रोग का उपचार होता है। राजयक्ष्म रोगों का राजा है।

राजयक्ष्मा रोग के साथ ही अथर्ववेद में अनेक बार अज्ञातयक्ष्म रोग का भी वर्णन है। सम्भवतः यह कैंसर रोग है। इसके निदानादि का पूर्ण बोध वैदिक ऋषियों व चिकित्सकों को नहीं था। अतएव इसे अज्ञात यक्ष्म नाम दिया गया।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद में विविध रोगों की चिकित्सा प्राप्त होती है। अथर्ववेदीय उपचार अन्य वेदों से प्राप्त उपचार से समृद्ध एवं विकसित है। इस वेद में व्याधियों, औषधियों तथा उपचारात्मक वर्णनों की अधिकता है। आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद इसीलिए कहा जाता है। अथर्ववेद में प्राप्त औषधियों की अधिक अन्वेषण-गवेषण की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ

[1]*अथर्ववेद संहिता,* 6.109.2
[2]*भाव0 हरीतक्यादि,* 53-58
[3]*अथर्ववेद,* 19-34-10, 18.3.60, 20.135.3
[4]*अथर्ववेद,* 6-105-1
[5]*अथर्ववेद,* 6-105-2
[6]*अथर्ववेद,* 6-105-3
[7]*भाव प्रकाश (हरि0),* 113
[8]*अथर्ववेद,* 4/9/8-10
[9]*अथर्ववेद,* 6 सूक्त- 136, 137
[10]*अथर्ववेद,* 6/30/3
[11]*अथर्ववेद,* 4.20.1 से 9
[12]*अथर्ववेद,* 4.20.3
[13]*अ0वे0,* 6.43.1-2
[14]*अथर्ववेद,* 1.17.3
[15]*अथर्ववेद,* 19/38/1-3, 6.127.1-3, 2.14.1
[16]*अथर्ववेद,* 5/13/11
[17]*अथर्ववेद,* 9/8/1, 22
[18]*अथर्ववेद,* 3.11.1, 20.96.6

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,27-29
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

पुरुषार्थों में धर्म का महत्व

हेमलता त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पुरुषार्थों में धर्म का महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *हेमलता त्रिपाठी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय परम्परा में चार पुरूषार्थ माने गये हैं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें प्रथम तीन इस लोक से सम्बन्ध है और मोक्ष का सम्बन्ध परलोक से है। इसमें भी धर्म को अर्थ और काम का साधन माना गया है क्योंकि धर्मानुसार आचरित होने पर ही अर्थ और काम फलित होते हैं इस प्रकार परस्पर ये तीनों सम्बद्ध है। महाभारत में वेदव्यास जी ने कहा है कि धर्म से अर्थ और काम की सिद्धि होती है, इसलिये इस धर्म का सेवन किया जाना चाहिये- *धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थ न सेव्यते।*[1]

इसी बात को रामायण में कहा गया है कि उपयोगिता के लिये गौण लक्ष्य प्रधान बन जाते हैं। मोक्ष की दृष्टि से धर्म गौण लक्ष्य है किन्तु जीवन के तीन पुरूषार्थों में इसको प्रधानता प्राप्त है। जहाँ धर्म तथा अर्थ अथवा धर्म और काम में विरोध हो वहाँ धर्म ही वांछनीय है- *धर्मार्थकामाः किल ताल लोके समीक्षिता धर्म फलोदयेषु। ते तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता सुपुत्राः।। यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत। द्वेष्यो भवत्यर्थपरो हि लोके कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता।।*[2]

संस्कृत भाषा में निबद्ध वेद समस्त विद्याओं के मूल स्रोत माने जाते हैं। स्वयं संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी होने का गौरव प्राप्त है। संस्कृत भाषा में विद्यमान उत्कृष्ट ज्ञान राशि के फलस्वरूप ही प्राचीनकाल में भारत ज्ञान का केन्द्र एवं जगद्गुरू कहलाता था। वेदों, स्मृतियों पुराणेतिहासादि में वर्णित कथा, उपाख्यान मानव के लिये एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। समस्त विषयों और ज्ञान का मूल होने के फलस्वरूप धर्म पर चर्चा करने के संदर्भ में वेदों की व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। वेदों की बात करें तो धर्म शब्द का सुस्पष्ट और अधिक प्रयोग नहीं मिला अपितु उसके स्थान पर *सत्य* और *मृत* का प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण स्वरूप निम्नांकित मंत्र प्रस्तुत है, जिनमें धर्म के महत्व को बताया गया है- *यत्किञ्चेदं वरूण दैव्ये* जनेऽभिद्रोहं मनुष्याऽश्चरामसि। अधित्तीयत्त्व धर्मायुयोयिम मानस्तस्यादेनेसो देवं रीरिषः।।[3]

* शोध छात्रा, धर्मशास्त्र विभाग, सं. वि. ध. वि. संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : htomshiva54@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अर्थात् हे वरूण! हम मनुष्य दिव्यजनों (देवताओं) के साथ जो अभिद्रोह करते हैं और असावधानी के कारण जिस तुम्हारे धर्म की अवज्ञा की है, उन सब पापों के कारण हे दैव! हमें हानि न पहुँचाना।

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्[4]; अर्थात् देव सरिता का वह वरण करने योग्य तेज हम धारण करते हैं, वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे।

तत्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्छरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।।[5] अर्थात् सामने वह चक्षु अर्थात् सूर्य है वह देवताओं कर हित करे, हम सौ वर्षों तक जीयें, सौ वर्षों तक सुनें, सौ वर्षों तक चलें, सौ वर्षों तक दीनता से दूर रहें और सौ वर्षों तक बार-बार देखें इत्यादि।

वेदों के बाद नाम आता है आरण्यक एवं उपनिषद् का। वेदकाल को दो भागों में विभक्त किया जाता है- पूर्व वैदिक और उत्तर वैदिक। उत्तर वैदिक काल में मुख्य रूप से आरण्यक एवं उपनिषद् आते हैं। इस क्रम में उपनिषदों के धर्म या व्यवहारिक सद्गुण आदि से सम्बन्धित कुछ उदाहरण निम्न लिखित है- *सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः .....। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव, अतिथि देवो भव।.....*

अलूक्षा धर्मकामाः स्युः[6] ;अर्थात् वेद का व्याख्यान करके आचार्य छात्र को अनुशासन देते हैं- सत्य बोलो, धर्माचरण करो, स्वाध्याय में प्रमाद न करो। माता-पिता, गुरू (आचार्य) एवं अतिथि को देव तुल्य समझो आदि।

एक अन्य उदाहरण देखें- *त्रयो धर्मस्कंधाः यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः, तप एव द्वितीयो, ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयो अत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलऽवसादयन्। सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति, ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति*[7]; अर्थात् धर्म के तीन स्कन्ध यानि शाखायें हैं- प्रथम यज्ञ, अध्ययन और दान। द्वितीय तप और तृतीय ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुये आचार्य के कुल में रहना। ये सभी पुण्य वाले लोग होते हैं और ब्रह्म में स्थिर होकर अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरूषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति दीयतेऽर्थाद्य प्रयो वृणीते।। श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः। श्रियो धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।[8] भाव यह है कि श्रेय और प्रेय भिन्न-भिन्न है। पुरूष उसके नाना अर्थ करते हैं, उनमें जो श्रेय का आश्रय लेता है, उसका शुभ होता है और जो प्रेय का वरण करता है उसकी हानि होती है। श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के सम्मुख होते हैं। धीर पुरूष इनका विवेचन करता है और श्रेय का वरण करता है तो वही मन्द व्यक्ति योग-क्षेम से प्रेय को स्वीकार करता है।

एवं च- *अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः*[9] भाव यह है कि जो तप, दान, आर्घव, अहिंसा और सत्य वचन है, वे इसके अर्थात् आत्मा के अनुकूल होते हैं

अब अगर स्मृतियों की बात करें तो मुख्यरूप से चार स्मृतियाँ प्रचलन में हैं- याज्ञवल्क्य स्मृति, पाराशर स्मृति, नारद स्मृति एवं मनुस्मृति। इसमें वेदों के अधिक सन्निकर होने के कारण मनुस्मृति का महत्व अधिक है। मनुस्मृति के अनुसार वेद ही सभी विद्याओं, विज्ञानों और कलाओं के स्रोत हैं।

मनुस्मृति में धर्म के विषय में कहा है कि धर्म की हानि देखने वाले मृत्यु तुल्य होते हैं जो धर्म को नष्ट करता है धर्म उसे नष्ट कर देता है। *धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्माद् धर्मो न हन्तब्यो मा नो धर्मो हतो वधीत्।।*[10]

मनुष्य को अपने विवेकज्ञान का आश्रय लेकर लोक को ध्यान में रखते हुये उचित अनुचित का विचार करके आचरण करना चाहिये; क्योंकि धर्मानुकूल आचरण के कारण ही मनुष्य और पशु में भिन्नता सिद्ध होती है नहीं तो आहारनिद्रादि गुण तो पशु में भी होते है। यथा- *आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानः।।*[11]

वैदिक परम्परा के उपरान्त अगर लौकिक परम्परा पर दृष्टि डालें तो प्रथम महाकाव्य अर्थात् आर्षकाव्य रामायण में भी धर्म को प्रधान मान कर उसकी महिमा का मण्डन किया गया है। रामायण के अनुसार, धर्मानुकूल आचरण करके ही मनुष्य परम गति को प्राप्त कर सकता है- *धर्मो हि परमा गति*[12]

स्वयं श्रीराम जी ने भी धर्मानुकूल आचरण किया और समाज के लिये आदर्श स्थापित किया है। रामायण के अनुसार धर्म ही वह साधन है जिससे उच्च पद और परम लोक को प्राप्त किया जा सकता है और इसका साध्य सत्य है अर्थात्

सत्य का साथ देकर ही धर्म की रक्षा की जा सकती है और यही मनुष्य के लिये करणीय है- *धर्मो हि परमो लोके, धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्*[13]

धर्म को मूल बताकर यह समझाया गया है कि धर्म का आश्रय लेकर ही सूख का अनुभव किया जा सकता है क्योंकि इस जगत् का सार एवं मूल धर्म ही है- *धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।*[14]

एवं च- *धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम्। धर्मेण लभते सर्वम् धर्मसारमिदं जगत्।।*[15]; *धर्माद् राज्यं धनं सौख्य-मधर्माद् दुःखमेव च। तस्माद् धर्मं सुखार्थाय कुर्यात् पापं विसर्जयेत्।।*[16]

संक्षेप में कहें तो बाल्मीकि रामायण के अनुसार धर्म ही वह तत्त्व है जिसका आश्रय लेकर मनुष्य इस जगत् में समस्त सुखों का भोग कर सकता है और धर्म ही वह तत्त्व है जो मनुष्य के लिये पर-लोक के द्वार खोलता है।

महाभारत में तो धर्म को वृद्धा अवस्था का आवश्यक गुण माना गया है। महाभारत के अनुसार जो धर्म को नहीं जानते या धर्म को नहीं कहते अर्थात् जिनका आचरण धर्मानुकूल नहीं है वे मनुष्य वृद्ध कहलाने के लायक ही नहीं हैं- *वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मं*[17]

और इस धर्म की रक्षा सत्य के द्वारा की जानी चाहिये- *सत्येन रक्ष्यते धर्मः।*[18] सूत्रों, स्मृतियों एवं अन्य धर्मशास्त्रों में धर्म की जो व्याख्या की गई है वह मुख्यतः चार वर्णों एवं चार आश्रमों से सम्बन्धित है और धर्म का आचरण सभी के लिये अनिवार्य है।

स्रोत

[1] *महाभारत*
[2] *रामायण, अध्योध्याकाण्ड*, 21-57/58
[3] *ऋक्*, 7.89-5
[4] *ऋग्वेद*, 7.72.10
[5] *यजुर्वेद संहिता*, 24
[6] *तैत्तिरियोपनिषद्*, 1-11-1
[7] *छान्दोग्योपनिषद्*, 2, 23.1
[8] *कठोपनिषद्*, 1.2.1-2
[9] *छान्दोग्योपनिषद्*, 3-17-4
[10] *मनुस्मृति*, 8-15
[11] *हितोपदेश*
[12] 7/3/10, रामायण
[13] 2/2/41, रामायण
[14] 2/109/12, रामायण
[15] 3/9/30, रामायण
[16] 7/15/23, रामायण
[17] *महाभारत*, 30/35/58
[18] *महाभारत*, 30/34/39

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,30-34
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 फरवरी 2016

वैदिक संस्कृति की निरन्तरता : एक अध्ययन

डॉ. शारदा कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक संस्कृति की निरन्तरता : एक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शारदा कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मनुष्य की लौकिक तथा अलौकिक जय-यात्रा में सहायक जीवन तत्वों की समष्टि का नाम ही संस्कृति है जिसका लक्ष्य व्यक्ति तथा समाज दोनों को कलात्मक, मंगलमय एवं महिमामय जीवन प्रदान करना है। अतः संस्कृति का संम्बंध अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों से है। भारतीय संस्कृति का मूल वेद है। वेद ऋषियों के साक्षात्कारात्मक अन्तर्ज्ञान की अभिव्यक्ति है। युजर्वेद की वाजसनेयि संहिता में सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्वधारा का उल्लेख संस्कृति की बात करता है। इस वैदिक संस्कृति को परिभाषित करता है ऋतसत्यात्मक सूत्र। मनीषियों के निष्कर्ष हैं कि आत्मविद्या और सृष्टिविद्या- इन दो तरह के ताने-बानो से वैदिक विचार -विज्ञान का निर्माण समझा जा सकता है।

पूर्व-वैदिक युग में ऋत ही सृष्टि का मूल नियामक तत्व था। देवता ऋत से जुड़ी चित् शक्तियाँ थी। ऋत, सत्य और देवता- एक ही तत्व के तीन आयाम थे। परवर्ती वैदिक युग में देवताओं का स्थान ब्रह्म ने ले लिया और ऋत का स्थान धर्म ने। अर्थात् पूर्व वैदिक युग के मुख्य विचार पद है- ऋत और देवता, पुरूष और यज्ञ। अपर वैदिक युग के प्रत्यय है- ब्रह्म, आत्मा उपासना, ज्ञान और धर्म।

हिन्दू धर्म एक समग्र जीवन-दर्शन एवं व्यवहार प्रक्रिया है। उसमें सकारात्मक स्वीकृतियों के साथ निषेधात्मक पक्षों के उन्नयन की गंभीर दृष्टि और उस पर आधारित समय-समय पर विकसित होते हुए जीवन के सभी क्षेत्रों के विधान है, जिन्हें 'शास्त्र' कहा गया है। इतिहास और पुराण तो वेदों के उपबृहंण ही है। विविधस्मृतियाँ तथा निबन्ध ग्रन्थों के रूप में बहुधा विप्रकीर्ण और विस्तीर्ण धर्मशास्त्र भी 'वेदोखिलोधर्ममूलम्' अथवा धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः की मान्यतानुसार वेदानुप्राणित ही हैं। इस प्रकार प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि प्रवर्तमान भारतीय संस्कृति का मूलांश वेदों पर ही आधारित है।

प्राचीन भारतीय परम्परा कहीं लौकिकता पर बल देती हे तो कहीं लौकिकता को सारहीन मानते हुए आत्मा और परमात्मा के मिलन को ही सर्वोच्च मानती है। इन दोनों ही पक्षों के सन्दर्भ में अनेकानेक चिंतन क्षेत्र और दर्शन भारतीय परम्परा की

* अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, ईविंग क्रिश्चियन कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

व्यापकता को परिलक्षित करते है। इसका कारण यह है कि चिंतन का कोई पक्ष छूट न जाये, अंतिम निर्णय तक पहुँचते-पहुँचते यह न कहा जा सके कि वह एकांगी है। इसीलिए भारतीय संस्कृति और दर्शन को "सत्य की खोज-यात्रा" भी कहा जाता है जो कि निरन्तर जारी है। भारतीय संस्कृति में धर्म का सर्वोच्च स्थान है तथा इसकी प्रमुख विशेषता धार्मिक प्रेरणा है। धार्मिक साधना की सजीव परम्परा ने ही इस संस्कृति को अन्तर्मुखी, बर्हिमुखी एवं उर्ध्वमुखी बनाया है।

वस्तुतः आज जिसे हम 'हिन्दू धर्म' नाम से सम्बोधित करते है वे अनेक धार्मिक सम्प्रदायों एवं परम्पराओं के अद्भुत समन्वय का प्रतीक है। यद्यपि वैदिक, परम्परा ही इसका प्रधान प्रेरणास्रोत है तथापि कई अन्य अवैदिक परम्पराओं ने भी इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वैदिक युग भारतीय संस्कृति का अति प्राचीन रूप माना जाता है। काल क्रम में वैदिक बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद की प्रधानता होने लगी। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक देवताओं में से किसी एक को प्रधान मानने लगा। यही प्रक्रिया अन्त में वैदिक धर्म को एकेश्वरवाद तथा सर्वेश्वरवाद की ओर ले गई।

संहिताकाल मे वैदिक ऋषियों को विशिष्ट धार्मिक अनुभूति की अवस्था में वैदिक सत्यों का साक्षात्कार हुआ। ऋग्वेद हमें उत्तम विचार देता है। यजुर्वेद हमें उत्तम कर्मो में प्रवृत्त करता है। सामवेद उपासना द्वारा आत्मिक शान्ति देता है तथा अथर्ववेद हमें स्थितप्रज्ञ बनाता है। ब्राह्मण काल में संहिताओं का कर्मकाण्ड की दृष्टि से विवेचन किया गया। आरण्यक काल चिन्तन प्रधान है, इस काल में वैदिक मान्यताओं का दार्शनिक विश्लेषण किया गया। प्रमुख उपनिषदों की रचना भी इसी युग में हुई। वैदिक चिंतन की पराकाष्ठा का प्रतीक होने के कारण इन्हें 'वेदान्त' कहा जाने लगा जो उत्तर कालीन भारतीय धर्म एवं दर्शन का मूल स्त्रोत है। तार्किक विधि प्रधान होने के कारण इसमें समस्याओं का समाधान नैतिक अथवा धार्मिक न होकर मुख्यतः बौद्धिक है। इस काल में प्रारम्भिक बहुदेववाद का स्थान अद्वैतवाद ले लेता है। तथा कर्मकाण्ड के स्थान पर आध्यात्मवाद प्रधान हो जाता है। वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास ही हिन्दू धर्म का मूल आधार रहा है। ईश्वर जगत अथवा आत्मा सम्बन्धी किसी सिद्धान्त विशेष को स्वीकार करना व्यक्ति के लिए उतना आवश्यक नहीं है जितना वेदों में श्रद्धा रखना आवश्यक है।

कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारतीय धर्म एवं दर्शन के अत्यन्त मौलिक मूल्यों में परिगणित है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा एवं वेदान्त में कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त को एक स्वर से स्वीकार किया है। बौद्धों एवं जैनों ने इसे अपने ढंग से अपना लिया है। वैदिक काल से स्वर्ग एवं नरक की भावनाएँ आगे चल कर कर्म एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त से परिमार्जित हो गई। विभिन्न अर्थो में 'कर्म' शब्द ऋग्वेद में चालीस बार से अधिक प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन काल मे स्वर्ग ऐसा स्थल माना जाता था, जहाँ अधिक से अधिक कार्यो के फल का आनन्द लिया जाता है। ऋग्वेद में अग्नि से प्रार्थना की गयी है कि वह मृत को उन लोगो के लोक में ले जाये जिन्होंने अच्छे कर्म किये हैं। (ताभिर्वहैनं सुकृतां उलोकम्)। 'सृकृतां लोकम् शब्द अथर्ववेद एवं वाज0 सं0 मे भी आये हैं।

ब्राह्मण-ग्रन्थों में सत्कर्मी के फलों एवं दुष्कर्मो के प्रतिकार के विषय में पर्याप्त वर्णन मिलता है। शत0 ब्रा0 में प्रतिकार की भावना व्यक्त की गयी है। श0ब्रा0 इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने मन के अनुसार निर्मित लोक में जन्म लेता है। मनुष्य अपने कर्मो एवं आचरण से अपना भविष्य बनाता है, इस सिद्धान्त की शिक्षा बृह0 उप0 में मिलती है।

भगवद्गीता, शान्ति पर्व, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि ने दो मार्गो का उल्लेख किया है, जिनमें एक वह है जिसके द्वारा जाने से योगी इस लोक में लौट कर नहीं आता और दूसरा वह है जिसके द्वारा जाने पर उसे पुनः यहां लौट आना पड़ता है। आपस्तम्ब धर्म-सूत्र के अनुसार विभिन्न वर्णों के लोग अपने व्यवस्थित कर्तव्यों के सम्पादन में सर्वोच्च अपरिमित सुख का भोग करते है। कर्मफल शेष होने के कारण वे लौट आते है और यथोचित जाति, रूप, वर्ण, बल, बुद्धि, प्रज्ञा, सम्पत्ति के साथ जन्म लेते हैं।

कर्म का सिद्धान्त यह बताता है कि प्रत्येक अच्छा या बुरा कर्म विशिष्ट प्रकार का परिणाम उपस्थित करता है, जिससे कोई बच नहीं सकता। इस भौतिक संसार में कार्य-कारण का एक सार्वभौम नियम है। कर्म का सिद्धान्त एक प्रकार से नैतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकता है। अतीत अस्तित्वों में किये गये कर्म वर्तमान अस्तित्व के रूप को निर्धारित एवं निश्चित करते हैं और वर्तमान अस्तित्व के कर्म पूर्व जन्मों के शेष कर्मो के साथ भावी अस्तित्व का रूप निर्धारित करते हैं। पद्म पुराण में आया है- बिना कर्म फल भोगे कर्म का नाश नहीं होता। अतीत जीवनों के कर्म से उत्पन्न बन्धन को कोई हटा नहीं सकता।

भारतीय विद्याओं की परम्परा में वैदिक चिन्तन की धारा निरन्तर प्रवाहित प्रतीत होती है। वैदिक तत्वज्ञान को इतिहास और पुराणों में फलित होते देखा जा सकता है। इस परम्परा के अनुशीलन के क्रम में नचिकेता का उपाख्यान विचारणीय एवं महत्वपूर्ण है। वेद इतिहास और पुराण में जीवन्त सातत्य नचिकेतोपाख्यान के विकासक्रम में स्पष्ट दिखाई देता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के तृतीय काण्ड में ग्यारहवें प्रपाठक के अष्टम अनुवाक में नचिकेतोपाख्यान मृत्यु पर विजय को प्रमाणित करता है। कठोपनिषद् में इसी उपाख्यान का कुछ परिवर्तित रूप दिखाई देता है। यद्यपि यहाँ वाग्देवी की उपस्थिति का कोई संकेत नहीं मिलता तथापि बालक स्वयं ज्ञानवान् और प्रतिभा-सम्पन्न प्रतीत होता है। यम के द्वारा अनेक सांसारिक भोग विलास के प्रलोभन को वह अस्वीकार करता है। तथा आध्यात्मिक ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन जाता है। इस प्रकार कठोपनिषद् की कथा में कर्मकाण्ड की अपेक्षा ब्रह्मविद्या के ज्ञान की प्रमुखता दिखाई देती है।

महाभारत में अनुशासन पर्व के 71वें अध्याय में यही उपख्यान एक नया रूप ग्रहण करता है। यहाँ इस उपाख्यान को पुरातन इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारतकार की यह कथा इससे पूर्व के 69 और 70 वें अध्यायों में वर्णित गोदान के महत्व को निर्धारित करता है। उपनिषद् और महाभारत की कथाओं में किसी न किसी प्रकार गोदान का अंश समान है। स्पष्टतः महाभारतकार ने गोदान के महात्म्य को इस पुरातन कथा से प्रमाणित किया है जो उनके लिए ऐतिहासिक भी है।

वाराह पुराण में यह उपाख्यान 193 वें अध्याय से 212वें अध्याय (20 अध्यायों में) तक पुरातन कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बालक ने अपनी स्तुति से यमराज को प्रसन्न किया और यम ने प्रसन्न होकर उसे चित्रगुप्त के पास भेजकर परलोक के विविध वृत्तों को स्वयं देखने का अवसर प्रदान किया।

इस प्रकार नचिकेतोपाख्यान वैदिक साहित्य से लेकर पौराणिक साहित्य तक निरन्तर विकसित होता गया। महाभारतकार इसी स्थिति को 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' के द्वारा निर्देशित करते हैं जो अन्यत्र पुराणों में और स्मृतिग्रन्थों में भी प्रतिध्वनित होता है।

इसके अतिरिक्त सरल और सुबोध आधार पर प्रणीत पुराणों के वर्ण्य विषयों ने साधारण व्यक्ति को ज्ञान और बृद्धि का नवीन मार्गदर्शन कराया तथा अपनी बोधगम्य शैली में सनातन वैदिक विचार-धारा, कर्म-धारा और भाव-धारा का प्रसार किया। वैदिक परम तत्व और ब्रह्म को, जो ऋषियों तक के लिए अगम्य था, पुराणों ने जनमानस के निकट करके बुद्धि, मन, और इंद्रिय-गम्य किया। वेदों के सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म को पुराणों में पतितपावन भगवान् के रूप में स्थान मिला। औपनिषदिक ब्रह्म जो अनेक नामों, रूपों और भावों से परे थे, उन्हें पुराणों में सर्वनामी, सर्वरूपी, सर्वव्यापक और सर्वभावयुक्त, भगवान के रूप में माना गया। उपनिषदों के ज्ञानतत्व को भी पुराणों ने नए परिवर्तनों और नए परिप्रेक्ष्य में ग्रहण किया।

वैदिक युग के बाद जब तत्कालीन समाज का विस्तृत विकास हुआ तब धार्मिक क्रिया-कलापों में भी विकासशील परिवर्तन हुआ। महाकाव्यों में हिन्दू धर्म के विषय में विस्तृत चर्चा मिलती है। रामायण में यह दर्शाया गया है कि चरित्र इस तरह आदर्शात्मक होना चाहिए कि वह देवत्व तक पहुँच जाय। यह चरित्र संयम, सत्य, इन्द्रिय नियंत्रण, कर्तव्य-पालन, लोक-मर्यादा की रक्षा, समाज की व्यवस्था में योगदान आदि पर अवलम्बित था। इन्हीं गुणों और कर्मो से चरित्र का निर्माण संभव था तथा धर्म की संभावना बढ़ती थी।

महाभारत में विविध कथाओं के माध्यम से लोक धर्म की अभिव्यक्ति की गई है, जिसमें धार्मिक विधानों के माध्यम से सामाजिक अभ्युत्थान की बात भी सम्मिलित है। इस ग्रन्थ में लोक धर्म के विविध रूपों का प्रवचन हुआ है। वैदिक यज्ञों, शिव-कृष्ण, दुर्गा, इन्द्र आदि विभिन्न देवी-देवताओं का पूजन और स्तुति की गई है। इस काल में धार्मिक तीर्थ भी प्रतिष्ठापित हो गए थे जो तप और मनः साधना के लिए अत्यन्त उपयुक्त थे। तीर्थ स्थानों पर आध्यात्मिक तत्व ज्ञान का परिचय संन्यासियों और तपस्वियों को प्राप्त होता था। इस ग्रन्थ मे सत्य को ही एक मात्र वेद माना गया है जो पाप से मुक्ति प्रदान करता था।

वैदिक युगीन यज्ञों का इस युग में नए सन्दर्भो के साथ अनुपालन किया जाता था। साधारणतः गृहस्थ पंच-महायज्ञ करता था, जिसमें पितरों, देवों, ब्राह्मणों, अतिथियों और भूतों को सन्तुष्ट किया जाता था। तत्कालीन (रामायण, महाभारत) युग में अश्वमेध और राजसूय यज्ञ भी प्रचलित थे। राम ने अश्वमेध यज्ञ किया था तथा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ। पृथ्वी विजय करने में जो भी पाप राजा से होता था, वह उसके यज्ञ करने से समाप्त हो जाता था, जिसमें गॉयें और गाँव पुरोहित को दान में मिलते थे।

देवताओं, ऋषियों और पितरों को तर्पण दिया जाता था, जिसमें उनके प्रति कृतज्ञता की भावना निहित रहती थी। रामायण से विदित होता है कि राम और सीता नित्य तर्पण देते थे। पाण्डव भी तर्पण देकर मंगल कामना किया करते थे। सन्ध्या-पूजन और अग्निहोत्र भी समाज में आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रचलित थे। प्राचीन ऋषियों को दीर्घायु, यश, बुद्धि और आध्यात्मिक बल इसी के माध्यम से प्राप्त हुए थे। रामायण से विदित होता है कि राम और लक्ष्मण संध्या और अग्निहोत्र दोनों करते थे। अग्निहोत्र के संदर्भ में महाभारत मे विवृत है कि अग्नि में हविष्य डालने से वह सूर्य को प्राप्त होता है जिससे वह प्रसन्न होकर जल-वृष्टि करते हैं और फलतः संसार मे अन्नोत्पादन होता है। युधिष्ठिर सन्ध्या और अग्निहोत्र दोनों किया करते थे।

महाकाव्यों के काल मे समाज मे सत्य की प्रतिष्ठा थी। उसकी तुलना सहस्र अश्वमेध यज्ञ से की गई थी। सत्य ही ब्रह्म का रूप था। दोनों महाकाव्यों में सत्य की उत्कृष्ट मीमांसा की गई है तथा उसे मनुष्य को उच्चस्थ पद प्रदान करने वाला माना गया है। सत्य का सत् से न्योन्याश्रित सम्बन्ध था। अतः महाकाव्यों में सत् और असत् के बीच का संघर्ष विवृत हुआ है। 'सत्' की महिमा अपार थी जो व्यक्ति को परम तत्व की प्राप्ति कराता था।

गोद लेने की प्रथा भी, जिसे आज कानूनी वैधता प्राप्त है, वैदिक संस्कृति की ही देन है। वैदिक काल में निःसंतान लोगों के अतिरिक्त कभी-कभी संतान वाले लोग भी दूसरे परिवार के प्रतिभावान व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थितियों में गोद ले सकते थे। इस प्रकार का उदाहरण विश्वामित्र द्वारा शुनः शेप को गोद लिए जाने के संदर्भ में मिलता है।

अतिथि-सत्कार के प्राचीनतम साक्ष्य भी हमें वैदिक साहित्य में मिलते हैं। ऋग्वेद एवं उत्तर वैदिक ग्रन्थों में अग्नि देव को अनेकशः अतिथि कहा गया है। जबकि 'अतिथि देवो भव' की घोषणा तैत्तिरीयोपनिषद् द्वारा किया गया। उत्तर वैदिक ग्रन्थों में वर्णित पाँच महायज्ञों- भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ में अतिथि-सत्कार को मनुष्य यज्ञ (नृयज्ञ) के अन्तर्गत रखा गया। अनुवर्ती धर्मशास्त्रों तथा अन्य अनेक ग्रन्थों में आतिथ्य के विभिन्न पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह परम्परा आज भी अपना महत्व बनाए हुए है।

सोलह मानक हिन्दू संस्कारों में विवाह को सर्वोत्कृष्ट महत्ता प्रदान की गयी है। वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में गोत्र एक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। सामान्यतः समान गोत्र वाले लोग आपस मे विवाह नहीं करते। गोत्र-परम्परा का उल्लेख ऋग्वेद में गोत्र 'गोशाला' गायों के झुण्ड घेरे तथा बाड़े आदि के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सर्वप्रथम संभवतः छान्दोग्योपनिषद् में गोत्र, कुल या वंश के अर्थ में आया है। जब सत्यकाम जाबाल के आचार्य उससे उसका गोत्र-नाम पूछते हैं। उपनिषदों में ब्रह्म ज्ञान की व्याख्या करते समय ऋषि द्वारा अपने शिष्यों को उनके गोत्र-नाम से पुकारते थे, यथा भारद्वाज, गार्ग्य, आश्वलायन, भार्गव एवं कात्यायन गोत्रों से। एक संस्था के रूप में गोत्र-परम्परा वैदिकोत्तर काल में प्रतिष्ठित हुई जैसा की गृह्य सूत्र एवं धर्म सूत्रो के साक्ष्य से प्रमाणित है। तथा सगोत्र विवाह वर्जित माना गया है। प्राचीन आर्यो मे गोत्र की व्यवहारिक महत्ता थी। (i) दाय के विषय में मरने वाले मनुष्य का धन सन्निकट संगोत्र को मिलता था। (ii) श्राद्ध में सगोत्र ब्राह्मणों को, जहाँ तक संभव हो, नहीं निमन्त्रित करना चाहिए।

भारत में वैदिक मंत्रों के बिना किसी कर्मकाण्ड की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में मनाये जाने वाले पर्व तथा व्रतों में षोड्श संस्कारों में, धार्मिक क्रियाओं मे, नित्य-नैमित्तिक कर्मो मे सर्वत्र वैदिक मंत्रो एवं क्रिया-कलाप की ही अनुगूँज सुनाई देती है, जो वैदिक संस्कृति के सातत्य का, निरन्तर प्रवहणशीलता का ज्वलन्त प्रमाण है। इस तरह संपूर्ण देश में सांस्कृतिक एकता बनाये रखने में वैदिक परम्पराओं की उत्कृष्ट भूमिका हैं।

अग्नि पूजा की वैदिक परम्परा पारम्परिक रूप से अद्यावधि अस्तित्वमान है। अग्नि की महत्ता याज्ञिक क्रियाओं एवं दाह कर्मादि के कारण यथावत् बनी हुई है। दाह-संस्कार की अवधि में निरन्तर अग्नि जलाये रहने का विधान पूर्व काल से चला आ रहा है। आज भी विवाह के अवसरों पर परम्परागत रूप से अग्नि देव को साक्षी मानकर संस्कार के अलावा अनेक दैनिक एवं विशिष्ट यज्ञ अग्नि के माध्यम से ही सम्पन्न होते है।

धर्मसूत्रो में चार वर्णो के आचार और कर्तव्य वर्णित है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र की द्वितीय कंडिका में गृहस्थ के धर्म, अतिथि सत्कार विधि, स्त्री के प्रति कर्तव्य, राजा के कर्तव्य आदि का आज भी मनन करके आज के संदर्भ में अपेक्षित परिवर्तन करते हुए अनुसरणीय है। गृहस्थाश्रम का महत्व सभी धर्मसूत्रो में दर्शाया गया है। गृहस्थाश्रम में आचार के नियम बहुत व्यापक है। धर्मसूत्र मे गृहस्थ के लिए शुद्धता के नियम दिए गए है।

इस तरह यह देखा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के विशाल वाङ्मय के तारतम्य में वैदिक संस्कृति का आकलन तथा सूक्ष्म और सूक्ष्मतर विवर्तो मे उनके संचार का साक्षात्कार संस्कृति शब्द के द्वारा उन्मीलित अर्थबोध पर निर्भर है। वैदिक संस्कृति का सातत्य एवं निरन्तरता ग्रहण एवं संरक्षण पर आधारित है। वैदिक संस्कृति का पल्लवन वैदिक युग तक सीमित नहीं रहा है। परवर्ती युगों के साहित्य में वह संस्कृति नवीकृत ऊर्जा से सम्पन्न दीख पड़ती है। सभ्यता या भौतिकता के धरातल पर दूरगामी परिवर्तनो के उपरान्त भी भारत की संस्कृति का वैदिक आधार यथापूर्व अक्षत है।

स्रोत

ऋ0, 8/36/7, 9/96/11
ऋ0, 10/16/4
अथर्ववेद, 3/28/6ः 18/2/71 एवं वाज0 सं0, 18/52
शत0 ब्रा0, 12/9/1/1
बृह0 उप0, 4/4/ 5-7
भगवद्गीता, 8/23-27, शान्ति पर्व, 26/8-10; याज्ञवल्क्य स्मृति, 3/197
आपस्तम्ब धर्म-सूत्र, 2/1/2/2-3, 5-6
रामायण, 13.37.17; महाभारत, शान्तिपर्व, 270.10.11
महाभारत, 3.33.78-79
रामायण, 7.37.13
महाभारत, 17.1.11
रामायण, 1.29.31-32
ऐतरेय ब्राह्मण, 7.17
तैत्तिरियोपनिषद्, 1.11
शतपथ ब्रा0, 11.5.6.1,
मनु0, 3.70
काणे पी0वी0 (1992) -धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृष्ठ संख्या 383
छान्दोग्योपनिषद्, 4.4.1-4
प्रश्नोपनिषद्, 1.1
गौतम, 28/19
आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.7.17.4
गौतम, 15.20

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,35-38
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 जनवरी 2016

कालिदास के ग्रंथों में वर्णित सांगीतिक तत्व

राधा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कालिदास के ग्रंथों में वर्णित सांगीतिक तत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

संस्कृत-साहित्य के अप्रतिम कवि कालिदास की कृतियों में उनका विविध-शास्त्र-विषयक पाण्डित्य परिलक्षित होता है। व्याकरण, दर्शन, वनस्पतिशास्त्र तथा संगीतादि ललितकलाओं में कवि कालिदास परम निष्णात थे। संगीत के अन्तर्गत गायन, वादन तथा नृत्य तीनों को परिगणित किया जाता है। वस्तुतः यह तीनों संगीत की स्वतंत्र तीन विधायें हैं। इन तीनों के अनेकविध उल्लेख कालिदास की सप्तकृतियों में उपलब्ध होते है। कालिदास-साहित्य का अनुशीलन करते समय पाठक इतना रस-विभोर हो जाता है; कि उनके साहित्य में किस शास्त्र अथवा विधा के कितने उल्लेख है, इसकी ओर उसका ध्यान सहज ही नहीं जाता किन्तु जब मात्र संगीत की दृष्टि से कालिदास साहित्य का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि संगीत-कला के जितने अधिक उल्लेख कालिदास-कृतियों में हैं, उतने किसी भी अन्य संस्कृत-कवि के साहित्य में नहीं। यह समस्त सांगीतिक उल्लेख मात्र ऐसे ही साहित्य में प्रयुक्त नहीं है, अपितु कवि ने उनका बड़ा औचित्यपूर्ण तथा सरस प्रयोग किया है। संगीत-सम्बन्धी उल्लेखों ने कालिदास के साहित्य को एक अपूर्व रमणीयता एवं मधुरता प्रदान की है। ये समस्त उल्लेख कवि के संगीत-विषयक परम पैदुष्य के सूचक है।

महाकवि कालिदास की विश्वप्रसिद्ध निम्नलिखित सप्त कृतियाँ मानी जाती है- (1) ऋतुसंहारम् (2) मेघदूतम् (3) कुमार-सम्भवम् (4) रघुवंशम् (5) मालाविकाग्निमित्रम् (6) विक्रमोर्वशीय तथा (7) आभिज्ञानशाकुन्तलम् उनके इन्हीं सप्त कृतियों में सांगीतिक तत्वों का विवेचन कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत्य है-

सर्वप्रथम रघुवंशम् महाकाव्य में महाकवि कालिदास कहते है कि अयोध्या की विलासवती स्त्रियाँ जब सरयू में जलक्रीड़ा करती है, तो वे दोनों हाथों से इस प्रकार जल का आस्फालन करती है, कि उसमें मृदंग की सी ध्वनि ध्वनित होती है- थप-थप की जब अनेक स्त्रियाँ एक साथ ऐसा करती है तो ध्वनि और तीव्र हो जाती है, जिसे सुनकर तीर स्थली के मयूर नाचने और गाने लगते है- *तीरस्थलीवर्हिभिरुत्कलापैः प्रस्निग्ध-केकैरभिनन्द्यमानम्। श्रोतेषु संमूर्च्छति रक्तमासं गीतानुगमं पारिमृदंग*

* शोध छात्रा, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वाद्यम्।। यहाँ गीत वाद्य और नृत्य तीनों का संयोग उपस्थित है। संगीत के तीनों विधाओं में गीत प्रमुख है, नृत्य और वाद्य उसके अंग है। गायकों में सर्वप्रथम उल्लेख लव-कुश का प्राप्त होता है। वे दोनों रामायण के गान में निपुण थे। राम की सभा में जब उन्होंने रामायण का गान किया तो समस्त प्रजावासियों के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी। जैसा कि रघुवंशम् के पन्द्रहवें सर्ग के 66 वें श्लोक में द्रष्टव्य है- *तग्दीतश्रवणैकाग्रा संसदश्रुमुखी वभौ* संगीतकारों ने उनकी गीत माधुरी की प्रशंसा भी की- *गीते चमाधुर्य तयोस्तज्ज्ञैर्निवेदितम्।* (रघुवंशम् 16-65) और जब उनसे पूछा गया कि तुम्हें संगीत की शिक्षा किसने दी तो उन्होंने महर्षि वाल्मीकि का नाम बताया-*गेये केन विनीतौ वा कस्य चेयं कृतिः कवेः। इति राज्ञा स्वयं पृष्टौ वाल्मीकिमशंसताम्।।* (रघुवंशम् 15-69)

प्राचीन काल में अनेक अवसरों पर अनेक प्रकार के गीतों के गाने की प्रथा थी। राजा की प्रशस्ति में जो गीत गाया जाता था, उसका आरम्भ *जयति* आदि पदों से होता था। वह *जयोदाहरण* नामक प्रबन्धविशेष कहलाता था। इसी प्रकार के 'जयोदाहरण गीत' का उल्लेख रघुवंशम् महाकाव्य में प्राप्त होता है, जहाँ महराज रघु अपने दिग्विजय प्रसंग में 'उत्सवसंकते' नामक गणों पर विजय प्राप्त करते है तथा देवगायन किन्नर उस विजय का गान प्रस्तुत करते हैं- *शरैरूत्सवसङ्ेतान्स कृत्वा विरतोत्सवान्। जयोदाहरणं वाहोर्गापयामास किन्नरान्।।* (रघु0 8-78)

इसी प्रकार देवगायिका मधुरकण्डी किन्नरियों द्वारा पशुपति शिव के त्रिपुर-विजय-परक विजय-गीतों के वंशी-वादन के साथ गाये जाने का वर्णन मेघदूत के अधोलिखित पद्य में द्रष्टव्य है- शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचका पूर्यमाणाः। संसक्ताभिस्त्रि-पुरविजयो गीतये किन्नरीभिः/ निह्नदस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिः स्या-/ त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः।। (मेघदूत 1/60)

किन्नर जाति अपनी संगीतप्रियता, संगीत-दक्षता एवं मधुर कण्ठस्वर के लिए बहुत प्रसिद्ध है। कालिदास के काव्यों में किन्नर-किन्नरियों तथा उनके संगीत के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। हिमालय पर्वत पर अनेक किन्नर-किन्नरियाँ निवास करते हैं। गायन उनका मुख्य कार्य है। जब वे गान करते हैं, तब हिमालय अपनी कन्दराओं से उत्थित वायु द्वारा कीचक नामक वंश विशेष के छिद्रों को पूर्ण करता है। जिससे उन छिद्रों से मधुर संगीत-ध्वनि निःसृत होती है। इस प्रकार हिमालय उस मधुर वंशीवादन द्वारा किन्नरों के गान के लिए मानों तान प्रदान करता है- *यः पूरयन्कीचकरन्ध्रभागान् दरीमुखोत्थेन समीरणेन्। उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम्।।* (कुमार0 1/8)

किन्नरों के समान गान्धर्व भी गान विद्या में निपुण माने जाते है ये लोग भी किन्नरों के समान भगवान् शिव के लिए प्रभातिक मंगलगान गाते हैं। वैतालिकों का गान और गन्धर्वो का शंखवादन दोनों मिलकर गान को संगीत बना देते हैं। जिसका उल्लेख कुमारसम्भवम् के 9 वें सर्ग के 32 वें श्लौक में प्राप्त है- *व्यधुर्वहिर्मंगल गानमुच्चै र्वैतालिकाश्चित्र-चरित्र-चारू. ..*गन्धर्वो की स्त्रियाँ भी गान में उनसे कम निपुण नहीं थी। कार्तिकेय के जन्मावसर पर उन्होंने तथा विद्याधरों की स्त्रियों ने पार्वती के सदन में मंगल गीत गाये थे- *महोत्सवे तत्र समागतानां गन्धर्व विद्याधर सुन्दरीणाम्। संभावितानां गिरिराज पुत्र्या गृहेऽभवन् मंगलगीतकानि।।* (कुमा0 11/34)

संगीत की द्वितीय विद्या 'वाद्य' की यदि चर्चा की जाए तो महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में विविध प्रकार के वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। वाद्यों में वीणा सर्वप्राचीन एवं सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य रहा है। महाकवि कालिदास की कृतियों में जिस सूक्ष्मता के साथ वीणावादन के विविध पक्षों का उल्लेख प्राप्त होता है उससे उनके संगीत विषयक प्रगाढ़ पाण्डित्य एवं कुशल संगीत साधना उद्भासित होते हैं। वीणा-वादन के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने की दृष्टि से मेघदूत का प्रस्तुत पद्य सर्वाधिक महत्व रखता है, जिसे नायक विरही यक्ष अपनी विरहणी पत्नी के वर्णन में कहता है- *उत्संगे वा मलिन वसने सौम्य निक्षिप्य वीणाम्। मद्गोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।। तन्त्रीमार्द्रां नयन-सलिलैः सारयित्वा कथाच्जिद। भयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्तीम्।।* (मेघ0 2/23); अर्थात् हे! प्रियदर्शन मेघ मेरी विरहणी प्रिया इस वियोगकाल में धूसरित वस्त्र धारण की हुई, गोद में वीणा रखकर मेरे नाम से युक्त गीत को गाने की इच्छा कर रही होगी। उस समय मेरी स्मृति आने उसके नेत्रों से अश्रु गिरेगें जिससे वीणा के तार भींग जायेगें। तब वह अश्रु पोंछकर किसी प्रकार वीणा के तारों को मिलाकर गाने के लिए जैसे ही उद्यत होगी, उसी समय स्वनिर्मित मूर्च्छनाओं को (विरहातिराय के कारण) बार-बार भूल जाती होगी।

सांगीतिक तत्वों द्वारा यक्षपत्नी की विरह-वेदना को महाकवि कालिदास ने बहुत ही उत्कृष्ट ढंग से उपर्युक्त श्लोक में व्याञ्जित किया है। कामोद्दीपन के साधन के रूप में भी वीणा गायन के साथ वादन का प्रयोग उस समय प्रचलित था, जिसका रमणीय उल्लेख कालिदास ने ऋतुसंहार के प्रस्तुत पद्य में किया है- *सवल्लकी-काकलिगीतनिःस्वनैर्विबोध्यते सुपत इवाद्य मन्मथः।* (ऋतुसंहार 1/8) श्रृंगारिक क्रीडाओं के अवसर पर वीणावादन का उल्लेख कालिदास ने अन्यत्र भी किया है। यथा- रघुवंशम् के अन्तिम सर्ग में राजा अग्निवर्ण की अन्तःपुर- प्रमदाओं के विलास-वर्णन प्रसंग में- *वेणुना दशनपीडिताधरा वीणया नखपदांकितोरवः। शिल्पकार्य उभयेन वेजितास्तं विजिह्ननयना व्यलोभयन्।।* (रघु0 19/35)

अवनद्ध वाद्यों में महाकवि कालिदास ने पुष्कर, मृदंग, मुरज, पटह, दुन्दुभि, भेरी आदि अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख किया है। इनमें पुष्कर अतिप्राचीन नाम है। भरतमुनि ने.....*अवनद्धं तुपौष्करम्* (नाट्यशास्त्र 28/2) कहकर इसकी प्राचीनता की पुष्टि की है। मनोरम पुष्कर-वादन का उल्लेख महाकवि कालिदास ने विक्रमोर्वशीय में किया है, जिसकी ध्वनि सुनकर मयूर ग्रीवा उठाकर ऊपर देखने लगते हैं कि कहीं मेघ तो नहीं गरज रहा है- *जीमूतस्तनित-विशंकिभिर्मयूरैरूद्ग्रीवैरनु रसितस्य पुष्करस्य/ निह्नर्नादिन्युपहित मध्यम-स्वरोत्था मायूरी मादयति मार्जना मनांसि।।* (मालविका0 1/12)

इसी क्रम में रघुवंशम महाकाव्य में राजा अग्निवर्ण तो पुष्करवादन में इतना प्रवीण था कि अच्छी-अच्छी नर्तकियाँ उसके सम्मुख बेताल हो जाने पर लज्जित हो जाती थी- *स स्वयं प्रहत-पुष्करः कृती लोलमात्य-वलयोऽहरन्मनः। नर्तकीरभिनयाति-लंघिनीः पार्श्ववर्तिषु गुरूष्वलज्जयत्।।* (रघु0 19/14)

पुष्कर का ही एक नाम मृदंग भी है। इसका निर्माण मृत अर्थात् मिट्टी से होने के कारण इसे मृदंग कहा जाने लगा रघुवंशम के 19 वें सर्ग के 5 वें श्लोक में महाकवि कालिदास लिखते हैं कि अग्निवर्ण का प्रासाद तो सदैव मृदंग ध्वनि से गूँजता रहता था। प्रतिदिन चलने वाले उत्सवों में प्रत्येक उत्सव पहले से अधिक बढ़ कर होता था- *तस्यवेरमसु मृदंगनादिषु ऋद्धिमन्तमधिकर्द्धिस्तरः पूर्वमुत्सवमपोहदुत्तरः* क्रमशः मुरज नामक वाद्य भी मृदंग का पर्याय है कुमारसम्भवम् में औषधिप्रस्थ का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि वहाँ के भवनों के ऊपर मेघ छाये रहते थे और भीतर मुरज बजते थे। इन दोनों का घोष एक जैसा था, फिर भी ताल और लय मुरज की ध्वनि को मेघ ध्वनि से पृथक करते थे- *शिखरासक्त-मेघानां व्यज्यन्ते तत्र वेश्मनाम्। अनुगर्जित-संदिग्धाः करणैर्मुरजस्वनाः।।* (कुमार0 6/40)

अवनद्ध वाद्यों में पटह का उल्लेख संस्कृत साहित्य में आरम्भ से ही मिलता है। महाकवि कालिदास की कृतियों में भी पटह के विविध उल्लेख प्राप्त होते है। यथा- मेघदूत में महाकाल की सायं-पूजा के वर्णन प्रसंग में- *कुर्वन् सन्ध्यावलि-पटहतां शुलिनः श्लाघनीया। मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।* (मेघ0 1/38)

इसी क्रम में अग्रसर होते हुए दुन्दुभि वाद्य का परिगणन प्राचीनतम् वाद्यों में किया जाता है, जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होता है। महाकवि कालिदास ने भी अपने ग्रन्थों में इसका यथावसर प्रयोग किया है। कुमारसम्भव के एकादश सर्ग में कालिदास ने कुमार कार्तिकेय के जन्मोत्सव प्रसंग में इस प्राचीनतम् वाद्य का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है- 'गम्भीरशंखध्वनिमिश्रमुच्चैर्गृहोद्भवा दुन्दुभयः प्रणेदुः।' (कुमार0 11/38) तत्पश्चात् युद्ध वाद्यों में भेरी का स्थान महत्वपूर्ण है। प्रायः युद्ध के अवसरों पर अपनी सेना को उत्साहित करने तथा शत्रुदल के सैनिकों का मनोबल ध्वस्त करने के उद्देश्य से युद्ध-प्रमाण तथा युद्धारम्भ में इसका वादन किया जाता था, जैसा कि प्रस्तुत श्लोक में अवलोकनीय है- *गम्भीरभेरीध्वनितैर्भय करैमहागुहान्तप्रतिनादमेदुरैः। महारथानां गुरूनेमिनिःस्वनै रनाकुलैस्तैर्मृगराताजनि।।* (कुमार0 14/27)

इन समस्त वाद्यों के अतिरिक्त अन्य वाद्यों में वंशी (कीचक), ताल, घण्टा, नुपूर, तूर्यादि वाद्यों का उल्लेख महाकवि कालिदास के कृतियों प्राप्त होता है।

क्रमशः संगीत की तृतीय विधा नृत्य का भी सुन्दर सन्निवेश कालिदास ने अपने ग्रन्थों में किया है नृत्य का नाम लेते ही हमारे सम्मुख पंख फैलाये मयूर की छवि उपस्थित हो जाती है। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में मयूर नर्तन के अनेकानेक उदाहरण दर्शनीय है। यथा- *बन्धुप्रीत्याभवनाशीखिभिर्दन्तनृत्यापहारः* (मेघ0 1/32)। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक में शकुन्तला के विदाई वर्णन प्रसंग में प्रियम्बदा दुःखी शकुन्तला से कहती है- *उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्त्तना मयूराः* (अभि0 4/12) रघुवंशम् महाकाव्य में मयूर नर्तक का यह दृश्य तो पाठकों को नितान्त प्रिय है- *पुरोपकण्ठोपवनाश्रयाणां कलापिनामुद्धत नृत्य हेतौ। प्रध्मातशंखे परितो दिगन्तान् तूर्यस्वने मूर्च्छनिमंगलाये।।* (रघु0 6/9)

मयूर नर्तन के साथ-साथ हृदय को अह्लादित करने वाली गणिकाओं के दैशिक नृत्य का भी मनोरम दृश्य महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में दर्शनीय है- *पदन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः/ रत्नच्छायाश्वचितबलिभिरचामरैः क्लान्तहस्ताः। वेश्यास्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-/ नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्।।* (मेघ0 1/35)

प्राणी पक्षी के अतिरिक्त कवि की सूक्ष्म दृष्टि वृक्षों तक में नृत्य का दर्शन कर लेती है, गन्ध से उन्मादित मधुपों का गीत, कोफिल द्वारा आध्मात तूर्य, पवन से चंचल पल्लवों की हस्तमुद्रायें और इनके साथ विविध ललित प्रकारों से तरूकर नृत्य यह दृष्टि कालिदास को ही सुलभ थी- *गन्धुम्माइअ महुअर गीरगहिं, वज्जन्तेहिं परहुअतूरेहिं। पसरिअ पवणुब्वेल्लिअ पल्लवणिअरू,/ सुललिअ विविह पआरेहिंणच्चइ कप्पअरू।* (विक्रमो0 4/12)

अन्ततः उपर्युक्त समस्त विवेचन से यह स्वतः सिद्ध है कि महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित सांगीतिक तत्व-विषयक गायन वादन एवं नृत्य का मञ्जुल सन्निवेश है, जिससे उनकी साहित्य की चारूता द्विगुणित हो गई है। इसके पश्चात् यह कहने की आवश्यकता नहीं रह गयी है कि कालिदास सांगीतिक तत्वों की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी रखते थे निश्चय ही उन्होंने नाट्यशास्त्र तथा संगीत विषयक अन्य ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा कवि के संगीतकला विषयक सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक प्रयोग उनके संगीत-विषयक परम वैदुष्य को प्रमाणित करता है।

सन्दर्भित ग्रन्थ सूची

कालिदास ग्रन्थावली -त्रिपाठी, डॉ0 ब्रह्मानन्द, प्रकाशन- चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, वर्ष 2012
अभिज्ञानशाकुन्तलम् -त्रिपाठी, डॉ0 श्रीकृष्णमणि, प्रकाशन- चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, वर्ष 1996
ऋतुसंहारम् -द्विवेदी, शिवप्रसाद, प्रकाशन- चौखम्बा सुरभारती वाराणसी, वर्ष 2004
मेघदूतम् -शास्त्री, श्री वैद्यनाथ झॉ, प्रकाशन- कृष्णदास अकादमी वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 2002
कुमारसम्भवम् -पाण्डेय, श्री पं0 प्रद्युम्न, प्रकाशन- चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, वर्ष 2013
रघुवंशम् -मिश्र, साहित्याचार्यः श्रीहरगोविन्द, प्रकाशन- चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस वाराणसी
विक्रमोर्वशीय -मिश्र, डॉ0 विन्ध्येश्वरी प्रसाद, प्रकाशन- कृष्णदास अकादमी वाराणसी
मालविकाग्निमित्रम् -प्रकाशन- 'मोतीलाल बनारसीदास, प्रकाशन वर्ष 1971, संस्करण, चतुर्थ
भारतीय संगीत के सुपिर वाद्यों का इतिहास -जयसवाल, डॉ0 राधेश्याम, प्रकाशन- कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,39-40
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वनस्पतियों की प्रासंगिकता

ज्योति शुक्ला* एवं डॉ. भुवाल राम**

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वनस्पतियों की प्रासंगिकता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका *ज्योति शुक्ला एवं भुवाल राम* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

प्राचीन काल से ही वनस्पतियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वनस्पति को तरू नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीर स्वामी' ने तरू शब्द की व्याख्या इस प्रकार से की है कि जिसके द्वारा मनुष्य दुःखों से तर जाता है उसे 'तरू' कहा जाता है- *तरन्ति आपदं अनेन इति तरू।*

अमरकोश में बिना फले ही फूलने वाले वृक्षों को वनस्पति कहा गया है। वनस्पतियों का विभिन्न रूपों में महत्त्वपूर्ण स्थान है ः

1. *वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध;* वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है; क्योंकि जीव-जन्तुओं का जीवन पूर्ण रूप से वनस्पतियों पर निर्भर है। पृथ्वी का सम्पूर्ण रस वनस्पतियों के द्वारा ही प्राप्त होता है। वनस्पतियाँ ही भूमि में से प्राणवहन करती हैं। इसी कारण इसे 'पृथ्वीमाता' कहा जाता है।[1] वनस्पतियाँ प्राणवाय (ऑक्सीजन) उत्पन्न करती हैं जो प्रत्येक प्राणी के जीवन के लिये परमावश्यक है। इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी वनस्पतियों के लिये अपानवायु (कार्बन-डाई-ऑक्साइड) उत्पन्न करती है। वनस्पतियाँ ही अशुद्ध वायु (कार्बन-डाई-ऑक्साइड) को ग्रहण करती है तथा वायु को शुद्ध करती है, जो प्राणी मात्र के लिये परम आवश्यक है। इससे यह सिद्ध होता है कि वनस्पति और जीव-जन्तु एक दूसरे पर आश्रित हैं।
2. *सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में;* प्राचीन समय में लोग वस्त्रों के रूप में वृक्षों की छालों का धारण करते थे। शृङ्गार आदि के लिये इन वृक्षों के द्वारा प्राप्त अङ्गराग, चन्दन, तैल, हल्दी, गोरोचन, महावर, कुमकुम आदि का प्रयोग किया जाता था। पुष्पों का आभूषण धारण करते थे। अतः सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में भी वनस्पतियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि वन्स्पतियाँ पृथ्वी को आकर्षक एवं उनकी शोभा को बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होती है। वनस्पतियाँ मनुष्य को अत्यन्त प्रिय हैं जो उनके मन को, सहज ही आकर्षित करती हैं।
3. *यज्ञ के रूप में;* यज्ञ में भी वनस्पतियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यज्ञशाला में वेदी-यूप आदि के निर्माण से लेकर यथार्थ उपयुक्त समिधा आदि के लिये वनस्पतियों की ही आवश्यकता पड़ती थी, बिना वनस्पति के यज्ञकार्य सम्पन्न ही नहीं किया जा सकता था। शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसा उल्लेख मिलता है- *न हि मनुष्या एजेरन् यद् वनस्पतयो नस्यु।*[2]

* शोध छात्रा, द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय [चिकित्सा विज्ञान संस्थान] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत।E-mail : shuklajyoti2016@gmail.com
** एसोसिएट प्रोफेसर, द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय [चिकित्सा विज्ञान संस्थान] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यज्ञशाला के निर्माण में भी वनस्पतियों का उपयोग होता है, साथ ही यूप, सुक आदि उपकरण वनस्पतियों से ही बनते हैं। यज्ञ में बेल, तुलसी, खादिर, पलाश, मदार और उदुम्बर उपयोगी वृक्ष माने जाते हैं। ये वनस्पतियाँ जब यज्ञ के माध्यम से वायुमण्डल में जाती हैं तो पर्यावरण को भी शुद्ध करती हैं।

4. *शिक्षक के रूप में;* शिक्षक के रूप में भी वनस्पतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि हम वनस्पतियों से बहुत कुछ सीखते हैं। वृक्ष स्वयं दिन भर सूर्य का प्रखर ताप सहन करता है और उन पर आश्रित मनुष्य आदि प्राणियों को सुखद छाया प्रदान करता है और जीवन में स्वयं दुःख सहन करके दूसरे का सुख देते हैं। अतः वनस्पति रूपी गुरू के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करना चाहिये तथा अपने जीवन में चरितार्थ करना चाहिये।

5. *आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से;* प्राचीन समय में लोग किसी भी प्रकार की व्याधि के निवारण के लिये इन वृक्षों के पुष्पों, फलों, शाकों, पत्तों आदि से औषधि तैयार करते थे। अतः संसार में जब से मनुष्यादि की सृष्टि हुई है तभी से रोगों की उत्पत्ति भी हुई है। अतः रोग उत्पत्ति का इतिहास भी सृष्टि के विकास के साथ साथ आरम्भ हुआ। आज के वैज्ञानिक युग में चिकित्सा का महत्त्व बढ़ जाने से वनस्पतियों का महत्त्व और भी बढ़ गया है रोगग्रस्त प्राणियों को स्वस्थ्य बनाने के लिये सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक जितने भी रोगनिवारण उपायों का अन्वेषण हुआ है उनमें आयुर्वेद का प्रमुख स्थान है।

इसके अतिरिक्त दैनन्दिनी व्यवहार तथा गृह निर्माण आदि में भी वनस्पतियों का महत्वपूर्ण स्थान है। वनस्पतियों की महत्ता के संदर्भ में *इसर्ससन* का कथन है कि, ''वृक्ष अपूर्ण मानव है।'' इस कथन में ही वनस्पतियों का स्थान कितना महत्त्वपूर्ण है, यह बतलाया गया है।

संस्कृत साहित्य के प्राचीन तथा नवीन सभी कवियों द्वारा प्रकृति-चित्रण के रूप में अनेक वनस्पतियों का वर्णन किया गया है, जिनके अध्ययन से आयुर्वेदिक वनस्पतियों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो सकती है। भारतीय संस्कृति का वास्तविक चित्रांकन वनों में ही हुआ था इसी कारण से भारतीय कवियों और तत्त्वद्रष्टाओं ने वृक्षों की पूजा एवं वन्दना इन शब्दों से की है- *यो देहमर्पयति धान्यसुखस्य हेतोः/ तस्मैवदन्यगुरूवे तरवे नामेऽस्तु।।*

वेदों में भी वनस्पतियों को गुण दृष्टिगोचर होता है क्योंकि जो औषधियाँ फलवाली या फलहीन है, जो बिना फूल के है और जो पुष्पवत है, वे वनस्पति से युक्त हुई औषधियाँ हमें पापों से मुक्त करे।

या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः वृहस्पति प्रसुतास्तां नो मुंचन्त्वंहसः।।[3]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सृष्टि के आदि काल से ही दैनिक आवश्यकताओं के लिये वानस्पतिक द्रव्यों का प्रयोग होता आ रहा है। अतः वनस्पतियों की जितनी महत्ता प्राचीन समय में थी, उतनी ही वर्तमान में है। वर्तमान समय में वनस्पतियों की उपयोगिता और अधिक बढ़ती जा रही है।

सस्रोत

[1] *शतपथ ब्राह्मण,* 1/3/1/14
[2] वही, 3/2/2/9
[3] *ऋग्वेद,* 10/97/5

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,41-42
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 फरवरी 2016

आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये उपन्यासस्य स्वरुपम् : एक समीक्षणम्

डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये उपन्यासस्य स्वरुपम् : एक समीक्षणम्* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सूर्यकान्त त्रिपाठी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

उप नि उपसर्गपूर्वात् अस् धातोः घञि कृते उपन्यासः शब्दः निष्पन्नोऽस्ति। उपन्यास शब्दः समीपे, स्थापनम्, प्रस्ताव भूमिकार्थेषु प्रयुज्यते। अस्याः विधायाः प्रयोगः हिन्दी भाषायामेव प्रचलितोऽस्ति। कवयः निरंकुशा भवन्ति, ते स्वतंत्राः सन्त एवं काव्य रचनां कुर्वन्ति। कथाख्यायिकयोः मिश्ररूपम् उपन्यासः कथ्यते। उपन्यास शब्दस्य सर्वप्रथमं प्रयोगः अम्बिकास्तव्यासेन शिवराज विजयाय कृतोऽस्ति। सः कथयति- *गद्यैर्विद्योतितं यस्याद् गद्यकाव्यं तदीरितम्। ग्रंथरूपं तदेवात्र श्रब्यं किञ्चिन्निरूप्यते।। उपन्यास पदेनामि तदेव परिकल्प्यते। यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजविजयो मम।।*[1]

आधुनिक आचार्याः संस्कृतभाषायामपि अस्याः विधायाः अपतराणां कुर्वन्ति। आचार्यः राधा बल्लभ त्रिपाठी महोदयः उपन्यासस्य संदर्भे कथयति-

गद्यबद्ध उपन्यासो महाकाव्यमयी कथा।[2] अर्थात् जीवनस्य सर्वाङ्गीणं रूपं गद्यमाध्यमेन् यत्र प्रस्तूयते स उपनयासो कथ्यते। आचार्य राधा बल्लभ त्रिपाठिना निगदितं यत उपन्यासे उदात्तजीवनमूल्यानां अभिव्यक्तिः कर्त्तव्या। राधा बल्लभ त्रिपाठिना उपन्यासस्य चतस्त्रः अवस्था निरूपिता-

कथारम्भः सङ्घर्ष आरोहः अवसानम् समाप्तिश्च। प्रो0 त्रिपाठी विषयाधारितोपन्यासस्य सप्तभेदान् कुरूते- घटना प्रधानः, सामाजिकः, राजनैतिकः, ऐतिहासिकः मनोवैज्ञानिकः, आञ्चलिकः, जीवन चरितात्मकश्च।

आचार्यः रहस बिहारी द्विवेदी उपन्यासस्य मौलिकं नूतनञ्च लक्षणं प्रस्तौति। प्रो0 द्विवेदिना स्वीकृतं यत्- *कथानकं युगानुरूपं भवेत् गद्यकाव्यबृहद्वन्धः उपन्यासोऽभिधीयते। अस्मिन् युगोचितं वस्तु पात्रं कवि पात्रं कवि समीहितम्।। देशकालोचितं चित्रं गद्यशिल्पं मनोहरम्। कल्पितं चाापि तत्सर्वं यथार्थं सम्प्रतीयते।।*[3]

* प्रवक्ता [संस्कृत], पंचायत इण्टर कॉलेज परतावल, महराजगंज (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

समन्वयवादी आचार्यः प्रो0 राजेन्द्र मिश्रः उपन्यासस्य सर्वाङ्गपूर्ण लक्षणं करोति। प्रो0 मिश्रस्यानुसारेण उपन्यासे कथाख्यायिकयोरूभयोरपि विशिष्टता प्राप्यते। सः उपन्यासं लक्षयति- *कथाख्यायिकयोः कश्चिन्मिश्र भेदोऽपि साम्प्रतम्। उपन्यास इति ख्यातो भाषान्तरप्रतिष्ठितः।। कालखण्डविशेषस्य समग्रं जनजीवनम्। प्रतिबिम्ब इवादर्शे न्यस्यतेऽत्र सविस्तरम्।।*

क्वचित्सामाजिकी क्रान्तिः सर्वोदय समर्थिनी रूढ़िपाखण्डविध्वंसे नवाचारः क्वचित्पुनः महाकाव्यवदेवायमुपन्यासोऽपि वस्तुतः।

साङ्गोपाङ्गं समग्रश्च नेतृ जीवनचित्रणम्। धर्मराजनयार्थानां नैव वृत्तं हि तादृशम्। यदुपन्यासनिर्माणे नोपयोज्यं भवेत्पुनः।। विविधाः सन्त्युपन्यासाः इतिवृत्तानुरोधतः। कथाप्रस्तुतिभेदाच्च कविप्रतिभयाञ्चिताः।।[4]

अनेन प्रकारेण प्रो0 मिश्रः उपन्यासस्य युगानुरूपं मौलिकञ्च लक्षणं विदधाति। सर्वप्रथमं अम्बिकादत्त व्यासः कादम्बरीं स्वोपज्ञं शिवराजविजयं उपन्यासपदेन उक्तवान्। आधुनिकाचार्येषु प्रो0 राधा बल्लभ त्रिपाठी विस्तारपूर्वकं उपन्यासस्य लक्षणं विदधाति। आचार्य रहस बिहारी द्विवेदिना उपन्यासस्य स्वतंत्र रूपेण लक्षणं कृतमस्ति। अभिराज राजेन्द्र मिश्रः उपन्यासस्य समन्वयपूर्वकं लक्षणं करोति। प्रो0 मिश्रस्यानुसारेण उपन्यासस्य कथानकं महाकाव्यस्य वर्ण्यविषय सदृशं भवति। उपन्यासान्तर्गत सामाजिकी चेतना, पाखण्डाडम्बरादेः खण्डयित्वा सभ्यसुसंस्कृतसमाजस्य वर्णनं करणीयम्। अनेन प्रकारेण प्राचीन परम्परां युगानुरूपरचनया सह संयोजनं कृत्वा संस्कृत गद्यलेखन विधायाः व्यापकत्वं अपेक्षितमस्ति।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]*उद्धृतम्- अभिराजयशोभूषणम्,* पृष्ठ संख्या 235

[2]*अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्,* 31/1/3

[3]*आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र समीक्षणम्,* पृष्ठ संख्या 43

[4]*अभिराजयशोभूषणम्,* पृष्ठ संख्या 4/105-110

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,43-45
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

मानव जीवन में आयुर्वेद का महत्व

श्याम सुन्दर*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मानव जीवन में आयुर्वेद का महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *श्याम सुन्दर* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

1. *वृक्ष वनस्पतियाँ शिव के रूप में;* शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ (औषधियाँ) पशुपति अर्थात् भगवान शिव के रूप हैं।[1] यजुर्वेद के रूद्राध्याय (अध्याय-16) में शिव को वृक्ष वनस्पति वन औषधि और लमा गुल्म (झाड़ी) का स्वामी बताया गया है।[2] भगवान् शिव को शिव इसलिये कहा गया है कि वे विष का पान करते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष वनस्पतियों का शिवत्व यह है कि वे कार्बन-डाई-ऑक्साड (CO_2) रूपी विष को पीते हैं और ऑक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते हैं। शिव का दूसरा रूप रूद्र है। वह संसार का नाशक और संहारक है। वृक्षों का रूद्र रूप यह है कि यदि वृक्षों को अन्धा-धुन्ध काटा जाये और वृक्ष सम्पदा को नष्ट किया जाये तो संसार का जीपन रक्षक तत्व (प्राणवायु) O_2 प्राप्त नहीं होगा और संसार का स्वयं नाश विनाश हो जायेगा।

अथर्ववेद-आयुर्वेद के ग्रंथों व वैद्यों का पथ-प्रदर्शक है।[3] इसके चौथे, छठें और दशवें काण्डों में विशेष रूप से चिकित्सा शास्त्र की चर्चा है। इसी प्रकार परम्परा या आगामों का भी अथर्ववेद स्रोत है।

2. *आयुर्वेद में वर्णित औषधियाँ;* वेदों और ब्राह्मण ग्रंथों आदि में वर्णित-औषधियों के नामों का सुन्दर संकलन आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने अपने ग्रंथ *द्रव्यगुण विज्ञान* में किया है।[4] तदनुसार इन ग्रंथों में इतनी औषधियों का वर्णन है- 1. ऋग्वेद (67), 2. यजुर्वेद (82), 3. अथर्ववेद (288), 4. ब्राह्मण ग्रंथ (129), 5. उपनिषदें (31), 6. कल्पसूत्र (519) आदि। वेदों में मुख्य रूप से 286 औषधियों के गुण धर्मो का वर्णन मिलता है।[5]

यहाँ पर कुछ विशेष महत्वपूर्ण औषधियों का ही संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है :

1. *अजशृगी :* अथर्ववेद में इसका वर्णन है।[6] यह मेषशृगी या मेढ़ासिगी है। यह विभिन्न प्रकार के रोगों और कीटाणुओं को नष्ट करती है।
2. *अतिविद्धभेषजी :* अथर्ववेद में इसका उल्लेख है।[7] यह पिप्पली इसे पीपर भी कहते हैं।
3. *पिंग :* अथर्ववेद में पिंग और बज का उल्लेख है।[8] पिंग पिली सरसों है और बज सफेद सरसों। इसको कमर में बांधने (नीविभार्य) का वर्णन है। गर्भिणी के गर्भ दोष-निवारण के लिये इसको कमर में बांधा जाता है।

* शोध छात्र, द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय [चिकित्सा विज्ञान संस्थान] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यह गर्भ-नाशक कृमियों को नष्ट करता है। यह गर्भ रक्षक और गर्भाशय संकोचक है।

3. *आयुर्वेद में वनस्पतियों की उपयोगिता;* वेदों में वनस्पति और आयुर्वेद जगत् से सम्बद्ध सामग्री बहुत अधिक है। वेदों में औषधि शब्द का बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है, औषधि शब्द वनस्पति जगत् का पर्याय है। औषधियों का मुख्य रूप से दो भेद हैं- 1. वनस्पति और 2. औषधि। वृक्षों के लिये वनस्पति शब्द है और छोटे-छोटे पौधों के लिये औषधि। बाद में औषधि शब्द का प्रयोग नाशक या चिकित्सा के लिये उपयोगी वृक्षों के लिये-प्रचलित हो गया है। वैदिक साहित्य में वनस्पतियों की उपयोगिता का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वृक्ष मानव मात्र को प्राणवायु (O_2) देते हैं।

अतः वे मानव के रक्षक, पोषक और माता-पिता हैं। अतएव ऋग्वेद और यजुर्वेद में औषधियों एवं वनस्पतियों को माता कहा गया है।[9]

वनस्पतियाँ मनुष्य को प्राणवायुरूपी जीवनशक्ति देती हैं, अतः इन्हें *पुरूषजीवनी* कहा गया है।[10]

4. *आयुर्वेद पर पण्डित मदनमोहन मालवीय जी के विचार;* महामना के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व अध्यावसायी जीवन, धार्मिक मनोवृत्ति, साहस एवं विनम्र स्वभाव के संस्कार मानों परम्परा से विद्यमान थे। महामना के भारतीय संस्कृति तथा वैदिक साहित्य पर गर्व था। यदि सूक्ष्मता से इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विचार किया जाये तो आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों की स्पष्ट छवि लक्षित होती है। अनके विचार में मानव जीवन के सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनंद मय जीवन के लिये विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा शरीरिक शक्ति की पुष्टि का भी अत्यन्त महत्व था; इसलिये वे आहार-विहार, ब्रह्मचर्य तथा व्यायाम को आवश्यक मानते थे।[11]

आयुर्वेद शास्त्र का प्रथम प्रयोजन स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना ही है। आयुर्वेद के आर्ष ग्रंथ चरक संहिता में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है[12], *प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।* (च0 सू0 30/26)

स्वास्थ्य के रक्षा हेतु आयुर्वेद में सद्वृत्त, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा समुचित आहार-विहार का विस्तृत वर्णन है। महामना ने भी सदैव अपने जीवन में उपरोक्त नियमों का आचरण किया और निर्विकार दीर्घायु को यापन किया। मालवीय जी को दुःख था कि स्वास्थ्य रक्षा का समुचित ज्ञान व प्रबन्ध न होने के कारण प्रतिवर्ष हजारों बच्चे नव-युवक, मातायें और बहनें मौत का शिकार हो जाती हैं, और लाखों अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति का समुचित विकास नहीं कर पाते।[13] इसी प्रकार से अभिभूत हो स्वास्थ समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के लिये महामना ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आयुर्वेद के प्रति आपके स्नेह और विकास को आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने साकार रूप दिया।

5. *स्वास्थ्य निर्माण के प्रबल समर्थक मालवीय जी;* मालवीय जी निरन्तर सर्वांगीण विकास पर बल दिये, उन्होंने शारीरिक तथा मानसिक दोनों आधार को सबल बनाने का उपदेश दिया, क्योंकि पूर्ण स्वस्थ की कल्पना तभी की जा सकती है जब शारीरिक तथा मानसिक दोनों पक्ष साम्यावस्था में हों, आयुर्वेद में स्वस्थ को परिभाषित करते हुये कहा गया है[14]- *समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।* (सु0यू0 15/41)

इस संदर्भ में दोष, धातु, मल, शारीरिक स्वास्थ्य, आत्मा, इन्द्रिय, तथा मन, मानसिक स्वास्थ्य के द्योतक हैं, इसी हेतु महामना ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शारीरिक तथा मानसिक दोनों के विकास के लिये अवलम्ब स्थापित किया। जहाँ अन्य विश्वविद्यालयों में केवल पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन होता था और विद्यार्थियों का केवल अर्थोपार्जन करने योग्य बनाया जाता था, वहीं मालवीय जी- शैक्षणिक विकास के लिये साथ-साथ चारित्रिक उन्नयन का घ्येय बनाया, उन्होंने स्वयं अपने संदेश में कहा है[15]- *सत्येन ब्रह्मचर्य्येण व्यायामेनाथ विद्यया। देश भक्त-यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदाभव।।*

शारीरिक स्वास्थ्य सभी पुरूषार्थों का मूल है। चरक संहिता जो कि आयुर्वेद का मूल ग्रंथ है, उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है।[16] *सर्वमन्यत परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्। तद्भावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।।* (च0 नि0 6/7)

6. *मालवीय जी का आयुर्वेद पर आस्था व विश्वास;* पण्डित मदनमोहन मालवीय जी को आयुर्वेद-चिकित्सा पद्धति पर अटूट विश्वास था, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने कायाकल्प चिकित्सा का निर्णय लिया। कायाकल्प एक प्रकार का रासायन चिकित्सा है, जो कुटी-प्रावेशिक प्रक्रिया के अन्तर्गत समाहित है।[17]

स्रोत

[1]*औषधयो वै पशुपतिः,* शतपथ ब्राह्मण, 6.1.3.12
[2]*वनानां पतये नमः /वृक्षाणां पतये नमः /औषधीनां पतये नमः /कक्षाणां पतये नमः,* यजुर्वेद, 16.17 से 19
[3]*अथर्ववेद काण्ड,* सं0 4.6.10
[4]आचार्य प्रियव्रत शर्मा- *द्रव्यगुणविज्ञान,* भाग-4, पृष्ठ संख्या 200-16
[5]पद्मश्री डॉ0 कपिल देव द्विवेदी- *वेदों में आयुर्वेद,* पृष्ठ संख्या 235, सं0 277
[6]*अजशृगी अराटकी,* अथर्ववेद, 4.37.6
[7]*पिप्पली अतिविद्धभेषजी,* अथर्ववेद, 6.109.1-3
[8]*बजश्च पिंगश्च,* अथर्ववेद, 8.6.24
[9]*ओषधीरिति मातरः,* ऋग0, 10.97.4; यजु0 12.78
[10]*वीरूध पुरूषजीवनीः,* अथर्ववेद, 8.7.4
[11]*प्रान्तीय कौंसिल में भाषण,* 1907
[12]*चरक संहिता,* सूत्रस्थान 30/26
[13]दी आनरेबिल पं0 मदनमोहन मालवीय- *लाइफ एण्ड स्पीचेज* 1907, पृष्ठ संख्या 398
[14]*सुश्रुत संहिता,* सूत्र स्थान 15/41
[15]*महामना के विचार : एक चयन,* उपदेश पंचामृत एक चयन, पृष्ठ संख्या 34, 36
[16]*चरक संहिता,* निदान स्थान 6/7
[17]*अष्टांग हृदय उत्तर स्थान रसायन विधि अध्याय,* 39/4-5

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,46-53
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 जनवरी 2016

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा

डॉ. मंजु वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वर्तमान परिप्रेक्ष्य में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मंजु वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र अपना विकास नहीं कर सकता है। व्यक्तित्व का विकास बाहरी वेश-भूषा एवं शरीर की सजावट से नहीं हो सकता वह केवल मानवीय गुणों द्वारा ही सम्भव है। इसके लिए शिक्षा आवश्यक है जिससे व्यक्ति में आत्मविश्वास, आत्म-संयम, आत्म-सम्मान, न्याय-भावना और विवेक आदि सद्गुणों का विकास हो सके। सुशिक्षित व्यक्ति ही समाज में सम्मानित होते हैं। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति में सामाजिकता तथा नागरिकता के गुणों का भी विकास होता है। सेवाभाव, कर्तव्यभावना, आत्मत्याग तथा निःस्वार्थता जैसी भावनाओं का उदय भी शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा केवल पुस्तकीय न होकर व्यावहारिक होनी चाहिए। शिक्षा ही व्यक्ति को पूर्ण जीवन के लिए तैयार करती है।

ज्ञान एक शक्ति है जिससे मनुष्य अपने को, समाज को तथा प्रकृति को समझने एवं अपने अनुकूल परिवर्तित करने की सामर्थ्य प्राप्त करता है। इसी ज्ञान को प्राप्त करने की विद्या शिक्षा है। अक्षर ज्ञान ही शिक्षा नहीं है। जब व्यक्ति विभिन्न स्रोतों से अनुभव प्राप्त कर अपने व्यवहारों को परिमार्जित करता है तब अनुभवों का यह परिमार्जन ही शिक्षा कहलाती है।

शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा जन्म से लेकर आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा शब्द संस्कृत की ''शिक्ष'' धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्षा शब्द से तात्पर्य ''सीखना और सिखाना'' है। अतः शिक्षा में सीखने और सिखाने की प्रक्रिया चलती रहती है। बाल्यावस्था से ही मनुष्य को प्राकृतिक वातावरण के साथ समायोजित होने का प्रयास करना पड़ता है। थोड़ी आयु बढ़ने के बाद उसी बालक को सामाजिक एवं आध्यात्मिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते समय व्यक्ति अनेक नवीन अनुभव अर्जित करता है। यह अनुभव ही शिक्षा है। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री टी0 रेमॉण्ट ने शिक्षा के विकास के विषय में इस प्रकार लिखा है- ''शिक्षा विकास का वह क्रम है जो बाल्यावस्था से परिपक्वावस्था तक चलता है तथा जिससे मनुष्य अपने आप को आवश्यकतानुसार

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. डी. ए. के. पी. जी. कॉलेज हाथरस (उत्तर प्रदेश) भारत।

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

धीरे-धीरे भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुरूप बना लेता है।'' जीवन में नये अनुभव प्राप्त करना तथा उन अनुभवों के आधार पर विभिन्न वातावरण व पर्यावरण के साथ समायोजित करने की क्षमता का विकास करते हुए सफल व शान्तिपूर्ण जीवनयापन करना ही शिक्षा है। सीखने का क्रम लगातार चलता रहता है। शिक्षाशास्त्री Dumble के अनुसार- Education in its wider sense includes all the influences which act upon an individual during his passage from cradle to the grave.

शिक्षा घर या विद्यालय तक ही सीमित नहीं होती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति विभिन्न संगठनों, संस्थाओं तथा विभिन्न व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है; उनसे अनेक बातों को भी सीखता है और उन्हीं अनुभवों के आधार पर अपने व्यवहार तथा विचारों में परिवर्तन भी करता है। इस दृष्टि से प्रत्येक प्राणी शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों होता है तथा सम्पूर्ण जीवन शिक्षा-काल है। लॉक का कथन भी इसी विचार की पुष्टि करता है- ''जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है।''

अपने संकुचित अर्थ में शिक्षा से अभिप्रायः उस शिक्षा से होता है जो बालक को विद्यालय में दी जाती है। दूसरे शब्दों में- बालक को एक निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित समय तक और निश्चित विधियों से निश्चित प्रकार का ज्ञान निश्चित स्थान पर दिया जाता है। उसकी शिक्षा कुछ प्रभावों तक ही सीमित रहती है। इस अर्थ के अनुसार व्यक्ति का विद्यालयी जीवन ही शिक्षाकाल होता है। विद्यालय जाने के बाद शिक्षा प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की शिक्षा को बालक कुछ वर्षों तक ही प्राप्त कर सकता है। साधारण शिक्षा का अर्थ विशेष प्रकार की पुस्तकों को पढ़ना और समझना ही माना जाता है। संकुचित अर्थ में अनेक शिक्षाशास्त्री शिक्षा की आलोचना करते हैं। पुस्तकीय शिक्षा के कारण बालक व्यावहारिक ज्ञान से वंचित रह जाता है। इस प्रकार की शिक्षा उनके मानसिक और चारित्रिक विकास में कोई योगदान नहीं करती जिससे आत्मविश्वास की वृद्धि नहीं होती है।

प्राचीन भारत के मनीषी इस बात से भली भाँति अवगत थे कि शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधारशिला है। उन्होंने शिक्षा की एक ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का प्रतिपादन किया था जिसने न केवल विशाल साहित्य को सुरक्षित रखा वल्कि ज्ञान के विविध क्षेत्रों में भी मौलिक विचारकों को जन्म दिया। भारतीय शिक्षा की प्रशंसा एफ0डबल्यू0 थॉमस ने इस प्रकार की- भारत में शिक्षा विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो या जिसने इतना चिरस्थायी और शक्तिशाली प्रभाव डाला है।

वैदिक साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है- विद्या, ज्ञान, बोध और विनय। डा0 ए0एस0 अल्टेकर के अनुसार- *शिक्षा का तात्पर्य है- व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना।* इस प्रकार शिक्षा वह प्रकाश है जो व्यक्ति को अपना बहुअंगी विकास करने, उत्तम जीवन व्ययतीत करने तथा मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देती है। अर्थात् शिक्षा जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यक्ति का पथ-प्रदर्शित करने वाला प्रकाश है। निष्कर्ष रूप में शिक्षा का वास्तविक अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है- शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है और सामाजिक पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने की क्षमता, योग्यता बढ़ाती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसके कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए उसके विचार एवं व्यवहार में समाज के लिए लाभकारी परिवर्तन करती है।

कहने का आशय यही है कि शिक्षा ही मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक एवं सामंजस्यपूर्ण विकास में योगदान करती है। शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार, विचार और दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन लाती है जिससे मनुष्य समाज, देश और विश्व के लिए लाभकारी होता है। शिक्षा समाज के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा उपयोगी प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। समाज के गत्यात्मक होने के कारण शिक्षा भी गत्यात्मक होती है। समाज के दर्शन, रीति रिवाजों तथा आवश्यकताओं में जब जब परिवर्तन होता है शिक्षा अपने ढाँचे व स्वरूप को भी बदल लेती है। आज शिक्षा अधिक से अधिक सामाजिक होती जा रही है। आदर्शवाद के स्थान पर शिक्षा व्यावहारिक एवं समाजोपयोगी हो रही है। शिक्षा में नवीन चिंतन, नवीन विषय वस्तु समाहित होती जा रही है। आज के वैज्ञानिक युग में इतनी विषमता आ गयी है कि धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है जिससे नैतिक मूल्यों के पतन को बचाया जा सके। आज का प्राणी हृदय-शून्यता के साथ-साथ मूल्यविहीन भी हो गया है। अतः संस्कारों को स्थापित करने प्रेम, करूणा, दया, समानता आदि नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज का सदस्य है। उसकी अत्युत्तम शुभ की साधना समाज में ही होती है। सामाजिक या सामान्य हित के लिए समाज अपने सदस्यों को कुछ नैतिक अधिकार प्रदान करता है। व्यक्ति समाज द्वारा संरक्षित इन अधिकारों का उपभोग करता है; उसके अधिकारों का विरोध कोई नहीं कर सकता। दूसरे व्यक्तियों को भी उनका सम्मान करना चाहिए। जो दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन करते हैं वे समाज द्वारा दण्डनीय होते हैं। अधिकार और कर्तव्य सापेक्ष हैं। समाज व्यक्तियों को अधिकार देता है और साथ ही उनके ऊपर कर्त्तव्य लाद देता है। इस प्रकार समाज ही अधिकार और कर्त्तव्यों की सृष्टि करता है। उनको जीवन देता है और व्यक्तियों को उन्हें मानने के लिए बाध्य करता है। समाज के अभाव में अधिकार और कर्त्तव्य अर्थहीन हो जायेंगें। कर्त्तव्य-जो कर्म सत् है वह व्यक्ति का कर्त्तव्य है।

आज धर्म और आचार विषयक बातों की आवश्यकता है जिनसे व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के साथ -साथ लौकिक उन्नति एवं समाज, परिवार के विकास में भी कोई व्यवधान उपस्थित न हो। भारतीय संस्कृति का आदर्श केवल अपने परिवार को ही नहीं बल्कि पूरे विश्व को ही कुटुम्ब मानने का रहा है। यहाँ वसुधैव कुटुम्बकम् केवल आदर्श वाक्य ही नहीं रहा है बल्कि बुद्ध तथा गाँधी जैसे महापुरूषों ने इसे अपने जीवन में उतारने का भी सफल प्रयास किया है। यहाँ आर्ष ग्रन्थ, महापुरूषों द्वारा निर्दिष्ट पथ एवं वातावरण सभी में यह भावना पूर्ण रूप से भरी है। यही कारण है कि हमारी धार्मिक और आचारिक नीति बहुजन सुखाय बहुजन हिताय है। व्यष्टि और समष्टि दोनों ही की उन्नति के लिए उसमें प्रशस्त पथ है। इस परिधि में आने वाली नीति की सभी बातें उस दीपक के समान हैं जिनसे व्यक्ति और विश्व दोनों को ही यथोचित प्रकाश का सम्बल मिलता है।

धर्म और आचार सम्बन्धी नीति को दो वर्गों में रखा जा सकता है। कुछ तो ऐसी हैं जिनका सम्बन्ध केवल व्यक्ति से है जैसे ईश्वर में विश्वास, संसार एवं शरीर को अस्थाई मानकर उनके प्रति अधिक आसक्ति न रखना आदि। दूसरे वर्ग की धार्मिक एवं नैतिक वृत्तियाँ वे हैं जो व्यक्ति से सम्बद्ध या उस पर आश्रित होते हुए भी समाज पर अधिक आश्रित हैं। राग, द्वेष, ईर्ष्या, क्षमा, दया, सत्य तथा क्रोध आदि इसी श्रेणी की हैं। विश्व का कोई भी कार्य या सिद्धांत पूर्णतः वैयक्तिक नहीं हो सकता। व्यक्ति क्योंकि समाज का अंग है, वह अपने आप में सीमित होते हुए भी समाज की इकाई है, इसीलिए उसकी वैयक्तिक बातें भी धीरे-धीरे समाज से प्रभावित होती हैं तथा समाज को भी प्रभावित करती हैं।

धर्म- किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें सदा रहे, उससे कभी अलग न हो धर्म है। जैसे- आँख का धर्म है देखना। यहाँ धर्म का अर्थ स्वभाव या नित्य नियम है। ऋग्वेद (1,22,18) में धर्म शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग हुआ है। आचार्यों तथा आर्ष ग्रन्थों द्वारा निर्दिष्ट वे कर्म जिनका लक्ष्य पारलौकिक आनन्द या मुक्ति की प्राप्ति है धर्म के अंतर्गत आते हैं। यह एक सामान्य परिभाषा है।

भारतीय समाज में नीति के कुछ बँधे-बँधाए दृष्टिकोण चले आ रहे हैं और वे आज भी लगभग उसी रूप एवं अंश में मान्य हैं। इनमें बहुत से तो समान रूप से विश्व के सभी सभ्य राष्ट्रों में मान्य हैं लेकिन नवीन आर्थिक व्यवस्था तथा नवीन जीवन दर्शन तथा पश्चिम के सम्पर्क से हमारे दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं। धर्म, आचार और नीति की हुई बातें परम्परा से आते हुए अनुभवों पर आधारित है और ये बातें जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हैं। इनकों जीवन में उतारने के लिए सावधानी एवं सतर्कता की आवश्यकता है। धार्मिक, नैतिक नीतियों का अन्धानुकरण न करके परिस्थिति, स्थान, काल तथा व्यक्ति के संदर्भ में ही समझकर अनुसरण करना श्रेयस्कर है। कुछ बातें नए वातावरण में पुरानी भी हो सकती हैं इसलिए उनका अनुकरण विवेक से करना अपेक्षित है। संसार में शायद ही कोई ऐसा सिद्धांत होगा जिसका अंधानुकरण लाभकारी हो।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा हेतु शिक्षा

धर्म को उपासना पद्धति का पर्याय मानना गलत है। धर्म करने योग्य कर्मों की व्यवस्था है। इसमें सद्कर्म, सद्व्यवहार तथा सदाचार ही आता है। यह सामाजिक नैतिकता का आधार है जिस पर सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने का उत्तरदायित्व होता है। अतः धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये।

धर्म का अर्थ

धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है धारण करना, इसलिये धर्म का अर्थ होता है- जो धारण किया जाये। जीवन प्राणी द्वारा अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के अनवरत प्रयत्न का नाम है। आजकल जो समस्याऐं उठ रहीं हैं वह मुख्यतः आंतरिक तथा आध्यात्मिक हैं। जो लोग धर्म, जाति, राष्ट्र या राजपद्धति के नाम पर आपस में लड़ते हैं वे मानव विकास में सहायता नहीं देते हैं। विश्व संकट के इस समय में विवेकशील लोगों को न केवल एक ऐतिहासिक युग की अपितु एक आध्यात्मिक युग की भी समाप्ति दिखाई दे रही है। विकास का सोपान मनुष्य की आत्मा से होना चाहिए।

धर्म शब्द अनेक अर्थों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह 'धृ' धातु से बना है। जिसका अर्थ है बनाए रखना, धारण करना, पुष्ट करना। यही वह मानदण्ड है जो विश्व को धारण करता है, किसी भी वस्तु का वह मूल तत्व है जिसके कारण वह वस्तु वह होती है। (- डॉ0 राधाकृष्णन)

धर्म का उद्देश्य मानव सेवा है, करूणा का प्रवाह है, क्षमा का संचार है, स्वयं को अन्य के लिए समर्पित कर देना है। जिस ढंग से अनुशासित लोग आचरण करते हैं, वह भी धर्म का एक स्रोत है। यह आशा की जाती है कि भले मनुष्यों का व्यवहार आदर्शों के अनुकूल ही होगा और इसीलिए उसे आचरण के लिए पथ-प्रदर्शक माना जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि भले अर्थात् सज्जन मनुष्य हिन्दू ही हों, वह किसी भी जाति विशेष का हो सकता है। आज धर्म शब्द रूढ़ हो गया है और हिंसा, विद्वेष एवं प्रतिशोध का आचरण मात्र बन गया है। आज पुनः धर्म शब्द विचारणीय है। यह धर्म अच्छा है यह धर्म बुरा है यह असत्य है क्योंकि धर्म तो शाश्वत सत्य है- उसके नियम विश्रृंखल हो सकते हैं किन्तु उसका उद्देश्य एक ही है- कल्याण का अभ्युदय। मानवीय स्वभाव पर जो अनुशासन कर सकता है- वह धर्म है। कोई भी धर्म अन्तिम या पूर्ण नही है। धर्म एक गति है, एक विकास है। सत्य किसी भी धर्म की अपेक्षा कही अधिक ऊँचा है। किसी भी धर्म को परम या सर्वोच्च बताना कठिन है।

संसार की एकता के लिए कोई नया आधार होना चाहिए। किसी भी धर्म का स्वरूप उसकी रूढ़ियों, कट्टरता से पता नहीं चलता अपितु उसके आत्मिक मूल्यों और मन की सज्जा से पता चलता है। धर्म सभ्यता का आंतरिक पक्ष है। मानव-व्यक्ति शरीर मन और आत्मा से बना है। इनमें से प्रत्येक को अपने लिए समुचित पोषक तत्व चाहिए। शरीर भोजन और व्यायाम द्वारा चुस्त रहता है, मन विज्ञान और आलोचना द्वारा तथा आत्मा कला और साहित्य द्वारा, दर्शन और धर्म द्वारा प्रबुद्ध रहती है। यदि मानवता की आत्मा का विकास करना है तो उसकी सुन्दरतम ऊर्जाओं द्वारा ही हो सकता है। एशियाई और यूरोपीय धाराओं ने अपने-अपने ढंग से आश्चर्यजनक परिणाम उत्पन्न कर दिखाए हैं- एशियाई धारा ने अपनी पूर्ण आध्यात्मिक निष्ठा द्वारा और यूरोपीय धारा ने अपनी कठोर बौद्धिक निष्पक्षता द्वारा। धर्म के विषय में भारत पूर्व का प्रतीक है। प्रारम्भ में इसका प्रयोग आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति के लिये धारण किये जाने वाले आचार विचार के लिये ही किया जाता था, परन्तु बाद में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में होने लगा। कुछ लोग आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति को लिए मंदिर में जाकर घण्टा बजाने एवं पूजा करने, मस्जिद में जाकर नवाज़ पढ़ने, गिरजाघर में ईश प्रार्थना करने और गुरूद्वारे में जाकर गुरूग्रन्थ पढ़ने आदि को धर्म मानते हैं। ये दोनों ही धर्म के आध्यात्मिक पक्ष है। कुछ व्यक्तियों के अनुसार व्यक्ति का ईश्वर के प्रति सम्बन्ध उसके सामाजिक सम्बन्धों से अभिव्यक्त होता है। इन विचारकों ने मनुष्य का मनुष्य के प्रति किये जाने वाले सामाजिक व्यवहार को ही धर्म माना है। इस दृष्टि से धर्म और कर्त्तव्य में कोई भेद नहीं होता। आध्यात्मिक दृष्टि से दूसरों की सेवा करना धर्म है तथा सामाजिक दृष्टि से दूसरों की सेवा करना मनुष्य का कर्त्तव्य भी है। अपने वास्तविक अर्थ में धर्म का क्षेत्र बहुत व्यापक है। धर्म के अन्दर केवल गुण ही नहीं आते जो मनुष्य से ईश्वर के सम्बन्ध को स्थापित करने के लिये आवश्यक होते हैं अपितु वे गुण भी आते हैं, जिनके द्वारा वह मनुष्य से अच्छे सम्बन्ध भी स्थापित करता है। और जीवन को सुखमय बनाता है। मनुस्मृति में इस धर्म के दस लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं- ''धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशमं धर्म लक्षणं।। (मनुस्मृति)

इन गुणों से युक्त मनुष्य इस जीवन के सुखों को तो प्राप्त करता ही है साथ ही परलोक के सुखों की भी प्राप्ति होती है।

"Religion is nothing but morality touched with Emotion"—-Mathew Arnold

''भावना से युक्त नैतिकता ही धर्म है।'' -मैथ्यू आर्नल्ड

धर्म और नैतिकता का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, चाहे वह जिस रूप में भी अभिव्यक्त हो। धर्म भावना पर आधारित है परन्तु नैतिक बुद्धि पर आधारित हो जाने पर धर्म को नैतिकता नहीं कहना चाहियें। संस्कृत में धर्म का अर्थ जगत के नैतिक विधान से है।

इस प्रकार धर्म वह चीज है, जो मनुष्य और ईश्वर के बीच तथा ईश्वर की सन्तान होने के कारण और मनुष्य के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है।

मनुष्य और मनुष्य में सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब हम दूसरों की भलाई करें। यह तभी सम्भव है जब हम नम्र, पवित्र, दयालु और निष्पक्ष हों।

कहने का तात्पर्य है कि धर्म का सार- न्रमता, पवित्रता, दया और निष्पक्षता है।

1933 में महात्मा गाँधी ने मानव जीवन में धर्म को महान शक्ति बताया और कहा- ''धर्म वह शक्ति है, जो व्यक्ति को बड़े-बड़े संकट में ईमानदार बनाये रहती है। यह इस संसार में और दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अन्तिम सहारा है।''

यह स्पष्ट है कि धर्म मस्तिष्क को शान्ति देता है, मनुष्य के हृदय में आशा का संचार करता है। और समस्या का सामना करने के लिए बल देता है।

धर्म मानव जीवन में और समाज में भी कार्य करता है। यह व्यक्ति के पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन को एक निश्चित दिशा देता है। मानव- जाति के सम्पूर्ण इतिहास पर धर्म की छाप लगी हुई है। आधुनिक समय में महात्मा गाँधी और बिनोवा भावे के नेतृत्व में होने वाले महान सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों का आधार धर्म ही था। धर्म एक सर्वव्यापक शक्ति है जो व्यक्ति और समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। हुमायूँ कबीर ने लिखा है- ''धर्म अनेक संघर्षो का अन्त करता है। यह उन शक्तियों का संचार करता है जो कठिनाइयों और पराजयों को स्वीकार नहीं करती।''

धर्म और नैतिकता

वास्तविक अर्थ में धर्म और नैतिकता में कोई अन्तर नहीं है। सामाजिक जीवन की व्यवस्था के लिए कुछ नियम बनाये जाते हैं। जब ये नियम धर्म से सम्बन्धित हो जाते हैं तो उन्हें नैतिक नियम कहा जाता है। इन धर्मो के पालन करने के भाव शक्ति को नैतिकता कहा जाता है।

वर्तमान में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता- बिना शिक्षा के धार्मिक आदर्शों की प्राप्ति नहीं हो सकती। गिरते नैतिक मूल्यों को बनाये रखने के लिये धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की पुनः आवश्यकता है। धर्म शिक्षा को सार माना गया है। धर्म के अभाव में शिक्षा व्यक्ति को कठोर और स्वार्थी बना देती है। धर्म और शिक्षा को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। शिक्षा और धर्म के लक्ष्य एक ही हैं। धर्म से अलग करके शिक्षा को उसके क्षेत्र, उद्देश्य और लक्ष्य को संकुचित बना दिया जाता है। शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करती है तथा धार्मिक आदर्श भी सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करते हें। शिक्षा का आधार धर्म होना चाहिये।

जार्ज डब्ल्यू फिस्के ने लिखा है- ''शिक्षा की आर्गाणत परिभाषाओं में से कोई भी ऐसी नहीं है, जो धर्म की शिक्षा की सम्भावना और आवश्यकता को सीखने की महान प्रक्रिया का अंग मानने का सुझाव न देती हो, भौतिकवादी दृष्टिकोण के सिवाय, सभी से शिक्षा में धार्मिक पहलू और धार्मिक विषय-वस्तु दिखाई देती है। अतः शिक्षा को पूर्ण होने के लिये धार्मिक होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम शिक्षा को अधूरा छोड़ देते हैं।''(--जार्ज एफ. फिस्की)

धार्मिक व नैतिक शिक्षा की आवश्यकता महत्व

मनुष्य और समाज के जीवन में धार्मिक व नैतिक शिक्षा का स्थान सदैव महत्वपूर्ण रहा है। परन्तु इस शिक्षा का आधार संकीर्ण धर्म न होकर, व्यापक धर्म होना चाहिये। संकीर्ण धर्म मानव में भेद उत्पन्न करता है और समाज में अनेक प्रकार के संघर्षों को जन्म देता है। महात्मा गांधी ने वर्धा-शिक्षा योजना में धर्म को कोई स्थान नहीं दिया और कहा- ''हमने वर्धा शिक्षा

-योजना में धर्मों की शिक्षा-योजना में धर्मों की शिक्षा को इसलिये स्थान नहीं दिया है क्योंकि हमें विश्वास है कि आजकल जिस प्रकार धर्मों की शिक्षा दी जाती है और उसका अनुसरण किया जाता है, उससे एकता के बजाय संघर्ष उत्पन्न होता है।''

अतः धार्मिक शिक्षा संकीर्ण धर्म पर आधारित न होकर व्यापक धर्म पर आधारित होनी चाहिये।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

1. आज के भौतिकवादी युग में मनुष्य संसारिक सुख तो प्राप्त कर लेता है परन्तु उसे वास्तविक सुख और शान्ति नहीं मिलती है। इस कारण धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा आवश्यक है।
2. मनुष्य धर्म का आदर करता है तथा धार्मिक सिद्धान्तों का पालन भी करता है। धार्मिक व नैतिक शिक्षा द्वारा समाज की अनेक बुराइयों को दूर भी किया जा सकता है।
3. भारत धर्म प्रधान देश है। अतः भारतीय जीवन से धर्म को नहीं निकालना चाहिये।
4. धार्मिक व नैतिक शिक्षा-व्यक्ति में सत्य, सदाचार ईमानदारी आदि के उत्तम गुणों का विकास करती है।
5. धार्मिक शिक्षा- ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' का पाठ पढ़ाती है।
6. धार्मिक शिक्षा- मन की स्थिरता, इच्छा शक्ति और एकाग्रता को विकसित करने में भी योगदान देती है।
7. धार्मिक शिक्षा के द्वारा उचित आचरण के आदर्शों का विकास होता है।
8. सुदृढ़ और सबल व्यक्तित्व के लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक है।

इस प्रकार मानव और समाज के जीवन में धर्म का स्थान अति महत्वपूर्ण है। यद्यपि हम धन और भौतिकवाद में विश्वास करने लगे हैं, फिर भी हम धर्म और धार्मिक शिक्षा के बिना जीवन व्यतीत नहीं कर सकते हैं।

आज हम विज्ञान आधारित जगत में निवास कर रहे हैं। आज के जगत के विकास का प्रमुख आधार विज्ञान एवं टैक्नोलॉजी है। वर्तमान जगत में न केवल ज्ञान का विस्फोट, जनसंख्या विस्फोट, गतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन, कट्टरता, असहिष्णुता आदि पनप रहे हैं। अपितु हमारे परिवार, समाज भी उसी गति से परिवर्तित हो रहे हैं। प्रचार, विचार-विमर्श तथा विचारों के आदान-प्रदान में नवीन प्रभावी साधन विकसित हो रहे हैं। इन सभी का हमारे नैतिक मूल्यों, धर्म तथा संस्कृति पर भी प्रभाव पड़ रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान आधारित विकास एवं विचार को जीवन शक्ति हमारे धर्म नैतिक एवं आध्यात्मिक आधारों से प्राप्त होनी चाहिये। जिससे शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, शिष्टाचार, शुद्ध सामाजिक आचरण, धार्मिक अधिकार एवं कर्त्तव्य आदि का विकास हो सके।

धर्म का आधार मानव कल्याण है। संकुचित दृष्टिकोण में धर्म को लोग पूजा करना, माला फेरना, नित्य श्लोकों को दोहराना, तिलक लगाना, नमाज पढ़ना, गिरजाघरों में जाकर धार्मिक विचारों को चिल्लाकर पढ़ना आदि धार्मिक क्रियाएं ही हैं।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य जो धारण करे वही धर्म है। दूसरे शब्दों में, जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे वही धार्मिक व्यक्ति है। इसी आशय को महाभारत में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गई है- ''धारणाद् धर्म इति आहु, धर्मों धारयति प्रजाः।।'' (-शान्ति पर्व महाभारत)

इसाई दृष्टिकोण के अनुसार धर्म एक ऐसा विचार अथवा ऐसी वस्तु है जो समस्त व्यक्तियों को प्रेम एवं सहानुभूति तथा पारम्परिक कर्त्तव्यों के बंधन से बांध देती है।

मुस्लिम दृष्टिकोण भी धर्म को भारतीय धर्म के समान व्यापक रूप दिया है। 'इस्लाम' के अनुसार धर्म वह मानसिक विचार है जो मनुष्यों को अच्छा व्यवहार करने की शिक्षा प्रदान करता है। 'इस्लाम' शब्द की व्युत्पत्ति 'साल्म' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है- ''शान्ति'' अथवा शान्तिपूर्वक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर लेना। दूसरे शब्दों में शान्तिपूर्वक ईश्वर के सामने अपने आपको अर्पित कर देना 'इस्लाम' का स्वरूप है।

संकीर्ण धर्म पर आधारित शिक्षा दोष पूर्ण हो सकती है

मानव एवं समाज के जीवन में धार्मिक शिक्षा संकीर्ण धर्म की पृष्ठपोषक हुई है। तब से इससे लाभ के बजाय अनेक हानियां भी हुई हैं। संकीर्ण धर्म में- अन्धविश्वास, मूर्तिपूजा, सम्प्रदायवाद, धार्मिक कट्टरता, दम्भ, व्यक्तिवाद, रहस्यवाद रूढ़िवाद, अधर्म आदि ने मानव मानव में भेद उत्पन्न करके मानव समाज में अनेक संघर्षों को भी जन्म दिया है।

इसलिये गॉधी जी ने अपनी वर्धा शिक्षा प्रणाली में धर्म को स्थान नहीं दिया। We have left our the teaching of religion from the Wardha Scheme of education because we afraid that religions as they are thought and practiced today lead to conflict rather than unity. (——— Gandhi ji)

व्यापक धर्म पर आधारित धार्मिक शिक्षा ही अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

धर्म निरपेक्षता

ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार धर्म निरपेक्षता, वह सिद्धान्त है जिसमें मानवता के हित के सन्दर्भ में नैतिकता का निर्धारण आधारित किया जाता है। इसमें ईश्वर से सम्बंधित विश्वासों को अलग रखा गया है। यह सिद्धान्त व्यक्ति के वर्तमान जीवन पर अधिक बल देता है।

चेम्बर्स शब्दकोष के अनुसार- धर्म निरपेक्षता वह विश्वास है जो राज्य, नैतिकता, शिक्षा आदि को धर्म से स्वतन्त्र करता है। वेवस्टर शब्द कोष के अनुसार धर्म निरपेक्षता वह विश्वास है जो धर्म तथा पारलौकिक बातों को राज्य के कार्यक्षेत्र में प्रवेश नहीं करने देता है। वस्तुतः धर्म निरपेक्षता धार्मिक तथा आध्यात्मिक से सम्बंधित नहीं है; यह अतार्किक का विरोधी है।

सेकुलरिज्म शब्द का प्रयोग- सर्वप्रथम जार्ज जेकब हॉलीडेक ने 19वीं शताब्दी में किया था। उन्होंने इस शब्द को लेटिन भाषा के "Saeculum" शब्द से निकाला था, जिसका अर्थ है- ''यह वर्तमान स्थिति (this present stage)''। साथ ही उन्होंने इस शब्द का प्रयोग सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की प्रणाली के सन्दर्भ में किया था। उसने इस मूल्य प्रणाली को निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित किया था-

1. मानव के भौतिक तथा सांस्कृतिक उत्थान पर बल।
2. उसके द्वारा सत्य की खोज पर बल।
3. वर्तमान युग या विश्व की उन्नति से सम्बन्ध।
4. तार्किक नैतिकता पर बल।

भारत में धर्म निरपेक्षता का अभिप्राय है- राज्य का कोई धर्म नहीं होगा और राज्य सभी धर्मों को समान मानेगा। भारत सर्व धर्म समानत्व पर बल देता है। भारत जैसे बहुधर्मों तथा बहुसंस्कृति वाले देश में लोकतन्त्र तभी सफल हो सकता है जब उसका ढांचा भी धर्म निरपेक्ष हो। साथ ही धर्म निरपेक्षता का विकास तभी हो सकता है जब उसमें लोकतान्त्रिक पद्धति हो। इसलिये सभी धर्मों से सम्बंधित चुनी हुई जानकारी अवश्य देनी चाहिये।

''धर्म के बिना नैतिकता का और नैतिकता के बिना धर्म का अस्तित्व नहीं है'' (-G Spring)

भारत जैसे बहुधर्मी धर्म-निरपेक्ष राज्य के लिये यह व्यवहारिक न होगा कि वह किसी धर्म की शिक्षा प्रदान करे। किन्तु फिर भी इस प्रकार के लोकतान्त्रिक राज्य के लिए यह आवश्यक होगा कि वह सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को प्रोत्साहित करे जिससे उसके नागरिक एक दूसरे को और अधिक अच्छी तरह समझ सकें और एक साथ शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करें।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के कर्णधारों ने भारत को एक 'लोकतन्त्रीय' देश के अतिरिक्त 'धर्म निरपेक्ष देश बनाने का भी संकल्प लिया क्योंकि एक बहुसंस्कृति तथा बहुधर्मी देश में लोकतन्त्र तभी सफल हो सकता है जब उसका ढांचा धर्म निरपेक्ष हो। धर्मनिर्पेक्षता का निर्वाह तभी हो सकता है जब उसमें धर्म लोकतन्त्रीय पद्धति हो। लोकतन्त्र की भांति धर्म निर्पेक्षता को भी बहुअर्थी धारणा के रूप में देखा जाता है।

धर्मनिर्पेक्षता का तात्पर्य धर्म की संकीर्णताओं को बढ़ने न देना है। भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है। इसका अर्थ है कि भारत में किसी भी धर्म को राजधर्म स्वीकार नहीं किया गया और न किसी धर्म को विशेष रूप से राजकीय संरक्षण प्राप्त है। शासकीय दृष्टि से सभी धर्म समान हैं। धर्म निरपेक्षता का तात्पर्य धर्म की संकीर्णताओं को बढ़ने न देना है।

भारतीय संविधान की धारा-19 में लिखा है कि 'भारतीय विद्यालयों में धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था नहीं होनी चाहिये। फिर भी भारतीय विद्यालयों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था है। इसका कारण है कि संविधान केवल संकीर्ण तथा संकुचित धार्मिक शिक्षा पर प्रतिबंध लगाता है न कि व्यापक धर्म तथा नैतिक शिक्षा पर।'

नैतिकता का अर्थ

धर्म के साथ एक शब्द और जुड़ा है वह है नैतिकता। नैतिकता समाज की व्यवस्थाओं से सम्बंधित आचार संहिता को कह सकते हैं। यह समाज के आचरण की एक सभ्यता है तथा समाज के आचरणों की सूची है। यह सूची प्रमुख रूप से समाज के धर्म द्वारा प्रभावित होती है। नैतिकता का लक्ष्य समाज के रीति-रिवाज, व्यवस्था, अनुशासन तथा आचरण की सभ्यता की स्थापना करना है। धर्म व्यक्तिगत आवश्यकता है जब कि नैतिकता एक सामाजिक आवश्यकता है। धर्म मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जबकि नैतिकता समाज की व्यवस्था सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। वास्तव में, नैतिकता स्वस्थ सामाजिक जीवन की एक आवश्यकता है। नैतिकता का सर्वोपरि लक्ष्य सामाजिक व्यवस्था की स्थापना करना है। धर्म का नैतिकता के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है जहां धर्म है। वहां नैतिकता भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

शिक्षा के दार्शनिक व सामाजिक सिद्धान्त -रामपाल सिंह, राधाबल्लभ उपाध्याय
भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें -पी.डी. पाठक
शिक्षा के सिद्धान्त -पाठक एवं त्यागी
शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार -योगेन्द्र कुमार शर्मा, मधुलिका शर्मा
धर्म और समाज -डा0 राधाकृष्णन
धर्म का तुलनात्मक अध्ययन -डा0 राधाकृष्णन

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,54-57
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 फरवरी 2016

संस्कृति एवं सभ्यता शब्द के प्रयोग में अन्तर और विकास का विश्लेषण

डॉ. हेमराज*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्कृति एवं सभ्यता शब्द के प्रयोग में अन्तर और विकास का विश्लेषण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हेमराज* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सरांश

संस्कृति और सभ्यता शब्द को एक ही समझकर एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग करना अज्ञानता का विषय है, जबकि दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। शब्दों का अर्थ वाक्यों में प्रयोग होने से स्वतः प्रतिपादित होता है। यदि शब्द का गलत प्रयोग हो रहा हो तो वह कांटे की तरह खटकता है। अर्थात् मानसिक और बौद्धिक चुभन भी करता है। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता शरीर। आत्मा सदैव अमर होती है और शरीर सदैव मृत्यु द्वारा समाप्त हो जाते हैं। संस्कृति आंतरिक है और सभ्यता बाहरी प्रसाधन। एक केन्द्र की ओर आकर्षित करता है तो दूसरा परिधि की ओर प्रगति। अतः इनकी परिभाषाओं और व्याख्याओं से विदित हो जाता है कि दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। इसके बावजूद भी एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असंभव है। क्योंकि दोनों शब्द एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और आदर्श समाज के मुख्य तत्व हैं। विश्लेषण का लक्ष्य शब्दों का अर्थ की दृष्टि से उचित प्रयोग करना है।

संस्कृति और सभ्यता का अर्थ साधरणतः एक ही मान लिया जाता है। सभ्यता संस्कृति से जन्म लेती है और विकास करती है। इन दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न-भिन्न है जिसे 18वीं और 19वीं सदी के विद्वानों ने इनकी भिन्नता की व्याख्या करने का प्रयत्न किया था जो पूर्णतः दर्शन पर आधरित था। डॉ. म.के. गाडगिल सभ्यता और संस्कृति को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''सभ्यता तो बाह्य व्यवहार की वस्तु है, परन्तु संस्कृति को नैतिकता की आवश्यकता होती है, इसलिए वह आंतरिक व्यवहार की वस्तु है। सभ्यता और संस्कृति एक ही अर्थ में प्रयोग करना अत्यंत भ्रमपूर्ण है।''[1] डॉ. गाडगिल के मत में दम है। इससे असहमत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि संस्कृति और सभ्यता की स्थितियां भिन्न होती हैं। संस्कृति आत्मा है और सभ्यता शरीर। शांति आंतरिक नैर्मल्य है तो सभ्यता बाहरी प्रसाधन। एक में शांति है और दूसरे में बाहरी चमक-दमक। संस्कृति में प्रबुद्धता और सभ्यता में उपयोगिता। एक केन्द्र की ओर आकर्षित करती है तो दूसरी परिधि की ओर प्रगति। एक में नितांत एकांतिकता है तो दूसरे में सामाजिकता। निःसन्देह संस्कृति और सभ्यता में सूक्ष्म अंतर है। इस अंतर के स्पष्टीकरण के लिए

* [सेवा निवृत्त] प्रधानाचार्य, श्रीमती ज्वाला देवी बी.एड्. कॉलेज [संघोल-ऊँचा पिण्ड] फतेहगढ़ साहिब (पंजाब) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

दोनों का अलग-अलग निम्नानुसार वर्णन किया जा रहा है। ''संस्कृति शब्द की उत्पत्ति का आधार, 'संस्कृति' या संस्कार शब्द से माना जाता है। संस्कृति शब्द से इसका अर्थ 'परिष्कृति रुप में' माना जायेगा। जबकि संस्कार शब्द का अर्थ शुद्धि की क्रिया से जाना जाएगा। इसका तात्पर्य यह हुआ है कि मनुष्य को सामाजिक बनाने में जिन तत्वों की आवश्यकता होती है वे तत्व संस्कृति ही प्रदान करती है। अतः संस्कृति ऐसी क्रिया है जो व्यक्ति में निर्मलता का संचार करती है।''[2] संस्कृति कठिन संपूर्णता है, जिसके अंतर्गत वह सभी वस्तुएं आ जाती हैं जिन पर हम विचार करते हैं, कार्यान्वित करते हैं और समाज के सदस्य के रुप उन्हें अपने पास रखते हैं। यह दोनो शब्द आपस में इतने संबंधित हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता है। ''सभ्यता का मापन संभव है जबकि संस्कृति की माप संभव नहीं है। सभ्यता को बिना परिवर्तित किए ग्रहण कर सकते हैं, परंतु संस्कृति को बिना किसी परिवर्तन के ग्रहण नहीं किया जा सकता। सभ्यता बिना प्रयास स्वयं आगे बढ़ती है, संस्कृति के साथ ऐसा नहीं होता।''[3] अर्थात् सभ्यता ही आगे बढ़ती है और विकास करती है संस्कृति नहीं; परंतु यह दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो सदैव अभिन्न हैं।

भारतीय संस्कृति में फिर नया यौवन भर देने की क्षमता है और यह निरंतरता को बनाए रखते हुए भी अमूल उथल-पुथल कर सकती है। भारत के निवासियों में यद्यपि कुछ धीमा चलने की रीति है, फिर भी यौवन का बल और जीवन शक्ति है। जिससे वे अपनी संस्कृति को बचाए रखते हैं। संस्कृति आनुवांशिकता और बाहरी प्रभावों से कभी-कभी प्रभावित होती है। परंतु आनुवांशिकता से पृथक नहीं हो सकती है। अतः संस्कृति मनुष्य के जीवन को परिष्कृत करती हुई चरित्रवान नागरिक बनाती है और आत्मा से ज्ञान एवं प्रकाश के बल पर सदैव अटल रहती है। जीवन को सशक्त और सफल बनाने में पूर्ण सहायक होती है। हृदय से संस्कृति के पालन से मनुष्य की समाज में महत्ता बढ़ती है और शांति प्रदान करती है। अतः यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संस्कृति ही जीवन और समाज का एक ऐसा सशक्त आधार है जिसके बल पर आचरण से उन्नति एवं विकास के पथ पर वर्तमान में अग्रसर होना संभव है।

सभ्यता का अर्थ साधरणतः सभी प्रकार की वस्तुओं के एकत्रित करने से जाना जाता है। इसलिए सभ्यता के अंर्तगत वे भौतिक वस्तुएं ही सम्मिलित की जा सकती हैं जो किसी साधन या माध्यम के रुप में हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हों। ''सभ्यता से हमारा तात्पर्य अपने जीवन की परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए मानव द्वारा सुनियोजित सारे संगठन और यांन्त्रिकता से है।''[4] इससे स्पष्ट होता है कि सभ्यता के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं को स्वीकार करते हैं जिन्हें प्रत्यक्ष रुप से देखा जा सकता हैं। सभ्यता के गहन अध्ययन और समझने की दृष्टि से इसे तीन भागों में बांटा जा सकता है; 1) पाषाण-युगीन सभ्यता। 2) कांस्ययुगीन सभ्यता। 3) लौहयुगीन सभ्यता।

पाषाणयुगीन सभ्यताः यह समय सृष्टि के प्रारंभ का था। आज से करोड़ों वर्ष यह काल खंड संभावित हो सका। ''मानव इस कालखंड में कपड़े नहीं पहनता था, घर बनाने के ढंग तरीके का भी पता नहीं था, खाद्य पदार्थ के लिए उसे प्रकृति पर निर्भर होना पड़ता था।''[5] इस काल की मानव सभ्यता का कोई लिखित विवरण उपलब्ध नहीं है। इस युग के लोग पढ़ना -लिखना नहीं जानते थे। उनके जीवन सम्बन्धी कुछ ऐसी वस्तुएं उपलब्ध हैं जिनसे उनके जीवन की जानकारी प्राप्त होती है, जैसे पत्थरों के औजार, हथियार, स्मारक, अवशेष और कलाकृतियां आदि।

''मनुष्य को अपने विकास के लिए जलवायु सम्बन्धी बड़े-बड़े परिवर्तनों का सामना करना पड़ा, परंतु उसने अपनी बुद्धि के सहारे अपने अस्तित्व को बनाए रखा। अपने शरीर के लिए खाल के वस्त्र बनाने में, रहने के लिए घर, तथा सुरक्षा के लिए पत्थर के हथियार बनाने में उसने लाखों वर्ष लगाए। आदि मानव के इस विकास काल को हम पुरापाषाण युग कहते हैं।''[6] पुरापाषाण युग में मानव सामुदायिक जीवन से परिचित हो चुका था। इस युग में पत्थर के औजार और हथियार बनाना उसकी विशेष उपलब्धि थी। औजार बनाने में हड्डियाँ और हाथी दांत का प्रयोग किया जाता था। ''इस युग में मानव ने चित्रकला में भी उन्नित कर ली थी। इस काल के अनेक चित्र गुफाओं में पाए जाते हैं।''[7] इनमें भागते हुए घोड़े, सांड, बारहसिंगे आदि चित्रित किए गए हैं। ''पुरापाषाण युग में मानव सौंदर्य पर विशेष ध्यान देता था। अपनी सुंदरता के लिए वह हाथी दाँत, हड्डियाँ, सीपियों एवं पत्थरों निर्मित आभूषणों का प्रयोग करता था। आभूषण-हार, कर्णफूल और दस्तरबंद आदि होते थे। भोजन के लिए वह शिकार एवं कंदमूल पर निर्भर था। आग की खोज का श्रेय भी पुरापाषाण युग के मानव को ही जाता है जो ऐगल्स के मतानुसार सभ्यता विकास के मंजिल के अन्तर्गत आता

है।''[8] सम्भव है कि आग का प्रेरणा स्रोत आसमान से बिजली का गिरना, ज्वालामुखी पर्वत के फटने अथवा पत्थरों का आपस में टकराने से रहा हो।

मध्यपाषाण कालः लगभग सात हजार ईसा पूर्व से माना जाता है। इस युग में छोटे-छोटे औंजारों का प्रयोग बड़े-बड़े औजारों के स्थान पर होने लगा था। इनका प्रयोग भाले एवं तीरों के अग्रभाग पर किया जाता था। इन छोटे-छोटे हथियारों को 'लघु अष्म' के नाम से पुकारा जाता था। इस युग में कुत्ते को पालना आरंभ कर दिया गया था, जो शिकार में भी सहायक सिद्ध होता था। मानव ने बर्फ पर तेज चलने के लिए स्लेज गाड़ी का आविष्कार कर लिया था, जिसमें पहिए नहीं होते थे। इस युग तक मनुष्य खेती करना नहीं जानता था। परंतु जंगली अनाज की फसल को काटना आरंभ कर दिया था। ''मध्य पाषाण युग के उपरांत उत्तर पाषाण युग में मानव ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की। इस युग के औजार पहले की अपेक्षा भी अधिक सुंदर और पालिश किए होते थे।''[9] अब मनुष्य ने कृषि करना सीख लिया था। अब वह भोजन एकत्रित करने की अपेक्षा कृषि के कार्य करता और साथ-साथ पशु-पालन में भी रूचि लेने लगा था। मनुष्य के जीवन में पहले से अधिक स्थिरता आ गई। उसने बस्तियों का निर्माण शुरु कर दिया और गुफाओं की अपेक्षा खेतों के समीप मिट्टी और घास की झोपड़ियां बनाकर रहना शुरु कर दिया। उत्तर पाषाण युग में मानव नग्न न रहकर रुई और पशुओं के ऊन से कपड़े बनाकर अपना तन ढांकने लग पड़ा था। उसने कताई और बुनाई का काम भी सीख लिया था। अब कच्चे खाने की अपेक्षा पक्का खाना बनाकर खाने लगा था। बर्तन बनाना और उन पर चित्रकारी करना भी सीख गया था। उसमें धीरे-धीरे धार्मिक विश्वास भी पनपने लगा था। पूजा और जादू टोने में विश्वास होने लगा था। ''इस युग में मनुष्य की मनोरंजन में रूचि को बढ़ावा मिलने लगा था। कई प्रकार के वाद्य यंत्रों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया था। सामुदायिक जीवन के क्षेत्र में बहुत अधिक विकास हो गया था। कृषि की भूमि सामूदायिक भूमि समझी जाती थी। इस युग की महान उपलब्धि पहिए का आविष्कार था।''[10] अतः पहिए के आविष्कार से बैलगाड़ियों का निर्माण संभव हो सका जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने-जाने और सामान ले जाने में आसानी हो गई।

कांस्ययुगीन सभ्यताः यह काल पहले काल से सभ्यता में अधिक उन्नत हुआ। ''इस युग में नगरों का निर्माण आरंभ हो गया था। जनता दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी और नगरों की समस्याएं सिर चढ़ने लगी। समस्याओं का समाधन राज्यों के उदय होने पर हुआ। कांस्ययुगीन सभ्यता में भिन्न-भिन्न समूह भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य करने लगे थे, जिस कारण सामाजिक बल का निर्माण होने लगा।''[11] कांस्य युग में खनिज मिट्टी और उत्तम जल स्रोतों के नियंत्रण के लिए दूर-दूर तक आक्रमण और युद्ध होते थे। इस युग में सभ्यता से श्रम विभाजन का विकास हो गया था। इस काल में कुछ लोग कृषि के अतिरिक्त शिल्पकारी और दस्तकारी का कार्य करते थे। कपड़ा उद्योग भी अपनी उन्नति के शिखर पर था। अपने ज्ञान के विकास से उन्होंने पंचांग तक का निर्माण कर लिया था। वे ज्योतिष विद्या में पूर्ण दक्ष थे। इस युग तक आते-आते मानव लिपि का विकास करके लिखने लगा था और व्यापार के प्रति भी बहुत सजग हो गया था।

लौहयुगीन सभ्यताः इस युग का समय निर्धारण 1200 ई.पू. से लेकर 600 ई. तक माना जाता है। लोहे की खोज इस युग की महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है जो सभ्यता के विकास में विशेष महत्व रखती है क्योंकि लोहा तांबे से अध्कि सस्ता और सख्त था इसलिए इस काल में कृषि क्षेत्र में एक क्रांति सी आ गई थी। युद्ध सामग्री और उद्योग धन्धें में लोहे का अधिक से अधिक प्रयोग होने लगा। इस युग में छोटे-छोटे राज्यों के स्थान पर बड़े-बड़े साम्राज्य अस्तित्व में आ गए थे और शासन प्रणाली पहले से अधिक विकसित हो गई। इस कालखंड में लेखन क्रिया के आविष्कार के साथ-साथ सभ्यता का आगमन भी हुआ। साहित्यिक महत्व बढ़ने लगा और भिन्न-भिन्न प्रकार के ग्रन्थों की रचना हुई। लौहयुगीन सभ्यता में कला एंव वास्तुकला के क्षेत्र में भी उन्नति हुई। प्रारंभिक युगों में धर्म का कोई स्पष्ट रुप नहीं था परंतु इस युग में धर्म पूर्ण रुप से विकसित होने लगा था। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सभ्यता का विकास लाखों वर्षों में से गुजरता हुआ वर्तमान रुप को प्राप्त हुआ है।

उपरोक्त विशलेषण से स्पष्ट होता है की संस्कृति और सभ्यता की धारणा भिन्न-भिन्न है और अर्थ की दृष्टि से भी इनका भाव अलग-अलग है। एक का दूसरे के स्थान पर प्रयोग करना अनर्थ एवं संकीर्णता का विषय बन जाएगा। मानव समूह मिलकर समाज बनाता है और समाज में मनुष्य द्वारा ही संस्कृति और सभ्यता धीरे-धीरे पनपती हुई विकास दिशा की ओर अग्रसर

होती है। मानव के संस्कार उसके जीवन के निर्धारित तत्व होते हैं। जबकि सामाजिक संस्कारों का अभाव मनुष्य को एकांगी बना देता है। अतः संस्कृति और सभ्यता ऐसे दो तत्व हैं जो सफल मनुष्य जीवन के आभूषण कहलाने में समर्थ हैं। अतः शब्दों का उचित प्रयोग औचित्य की दृष्टि से स्वीकृत और प्रामाणिक अवश्य होना चाहिए।

निष्कर्ष

संस्कृति और सभ्यता दो अलग-अलग शब्द हैं, जिनका अर्थ भी अलग-अलग है। वाक्यों की स्थिति और भाव से स्पष्ट हो जाता है कि कहां कौन से शब्द का प्रयोग उचित रहेगा। अज्ञानता के कारण शब्द के गलत प्रयोग से बचने की चेष्टा करनी चाहिए और विवेक का प्रयोग करते हुए उचित शब्द का प्रयोग करें, ताकि विषय वस्तु में स्पष्टता एवं अर्थ को सरलता से समझा जा सके।

संदर्भ सूची

[1]डा. म.के. गाडगिल- *हिन्दी एकाकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति,* पृष्ठ संख्या 170-71
[2]डा. मुंशीराम शर्मा- *वैदिक संस्कृति और सभ्यता,* पृष्ठ संख्या 10
[3]डा. रांगेय राघव एवं गोबिंद शर्मा- *संस्कृति और समाजशास्त्र,* भाग-1, पृष्ठ संख्या 10
[4]मैक्लवर- *समाज (सोसाइटी),* पृष्ठ संख्या 408
[5]डा. मुंशीराम शर्मा- *वैदिक संस्कृति और सभ्यता,* पृष्ठ संख्या 247
[6]अर्जुनदेव- *सभ्यता की कहानी,* भाग-1, पृष्ठ संख्या 1
[7]*वही,* पृष्ठ संख्या 1
[8]डॉ. राम विलास शर्मा- *मानव सभ्यता का विकास,* पृष्ठ संख्या 5
[9]डी.डी. के साम्वी- *प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता,* पृष्ठ संख्या 48
[10]अर्जुनदेव- *सभ्यता की कहानी,* पृष्ठ संख्या 16
[11]*वही,* पृष्ठ संख्या 18

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,58-60
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 फरवरी 2016

प्रेमचन्द की साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि

डॉ. सुजीत कुमार सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्रेमचन्द की साहित्यिक एवं सामाजिक दृष्टि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सुजीत कुमार सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रेमचन्द के समय हमारे भारतीय समाज में जगह-जगह सामाजिक चेतना का वातावरण बन रहा था। सती-प्रथा के विरूद्ध लोकमत तैयार हो चुका था और नारी के प्रति सम्मान भावना जाग रही थी; छुआछूत का भूत दम तोड़ने लगा था। राष्ट्रीयता के अंकुर भी चमकने लगे थे, कांग्रेस की स्थापना के बाद स्वाधीनता के प्रति देशवासियों की लालसा बलवती होने लगी थी। ऐसे सामाजिक वातावरण में प्रेमचन्द के साहित्यिक मानस का निर्माण हुआ था। प्रेमचन्द साहित्य की दुनिया में जिस समय प्रवेश करते हैं, उस समय हिन्दी कथा साहित्य तिलिस्म और ऐय्यारी की अंधेरी कंदराओं में भटक रहा था। उसमें कल्पना और कौतुकों का चमत्कारिक वर्णन भरा पड़ा था। स्वयं प्रेमचन्द ऐसे अद्भुत लोक में वर्षों तक विचरण करते रहे। फिर उन्होंने बंगला साहित्य पढ़ा वहाँ बंकिम चन्द्र चटर्जी और शरतचन्द्र का संवेदनशील यथार्थ चित्रण देखा। गोर्की और टालस्टाय का मनन किया और अन्य पाश्चात्य कथा साहित्य का अध्ययन किया। इसके बाद उन्होंने जो तत्व निकाला उसके परिणामस्वरूप हिन्दी कथा साहित्य में यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई तथा पहली बार वे किसान नायक बने जो दिन-रात खेतों में खून पसीना बहाकर, पूस की बर्फीली रातों में किड़किड़ाते, खेतों की रखवाली करने के बावजूद अपनी फसल की अर्थी सूदखोरों के हाथों उठते देख मन मसोस कर रह जाते हैं, वे अभागे अछूत बने जो जी तोड़ परिश्रम के बाद भी अपमान, प्रताड़ना और भूख-प्यास को गले लगाकर पेट में घुटने गड़ाए सो जाते हैं, जिन्हें पीने को साफ पानी तक नसीब नहीं होता, बाल वैधव्य की चिता और दहेज की वेदी पर छटपटाती वह नारी बनी जिसको बेकसूर होने पर भी जीते जी नरक भोगना पड़ता है। इस प्रकार प्रेमचन्द ने कथा साहित्य का पूरा कलेवर ही बदल दिया तथा सोद्देश्य साहित्य की रचना की, तभी तो डॉ0 रामविलास शर्मा जी कहते हैं कि, ''प्रेमचन्द सोद्देश्य साहित्य के समर्थक हैं। निरुद्देश्य साहित्य से उन्हें घृणा है। साहित्य को वे सामाजिक एवं मानसिक परिवर्तन का साधन समझते हैं। प्रेमचन्द के लिए साहित्य सच्चाइयों का दर्पण और जीवन की आलोचना और व्याख्या है।''[1] प्रेमचन्द भी कहा करते थे कि, ''जिस साहित्य से हमारी सुरूचि न

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममें शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जागृत हो, जो हममें सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।''[2]

प्रेमचन्द साहित्य के क्षेत्र में कुछ बेहतरीन करने या कर पाने की आकांक्षा को लेकर आए थे। लेखक उनके लिए महज कागज काला करने वाला प्राणी नहीं था। बड़ी आदर्श परिकल्पना उनकी लेखक के बारे में थी- ''वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।''[3] यही नहीं हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द ने एक नए जनवादी सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना की तथा उसे विकसित किया, पूराने सौन्दर्यशास्त्र की संकीर्ण परिभाषाओं को, जो शताब्दियों से साहित्य के मानदण्ड निर्धारित करती थी को बदल दिया। उन्होंने संकीर्ण दृष्टि का विरोध करके साहित्यकारों से एक विस्तृत और स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया। इसीलिए डॉ0 शिवकुमार मिश्र लिखते हैं, ''वह चाहते थे कि लेखक को अपनी निगाहों के दायरे में आदर्श को जरूर रखना चाहिए, ताकि रचना पाठक के मन को आलोकित करे। वे चाहते थे कि उपन्यासों में ऐसे चरित्र आएँ- जो 'पॉजीटिव' हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकाएँ, बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे, बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजयनाद करते हुए निकलें।''[4]

प्रेमचन्द यह चाहते थे कि जीवन के ऊँचे लक्ष्य और उदात्त छवि को साहित्यकार कभी भूले नहीं, क्योंकि ये लक्ष्य उन्हें कुछ बेहतर करने के लिए प्रेरित करते हैं। यही नहीं उनका ऐसा विश्वास था कि, ''बुरे आदमी को भला समझकर, उससे प्रेम और आदर का व्यवहार करके उसको अच्छा बना देने की जितनी सम्भावना है, उतनी उससे घृणा करके, उसका बहिष्कार करके नहीं। मनुष्य में जो कुछ सुन्दर है, विशाल है, आदरणीय है, आनन्दप्रद है, साहित्य उसी की मूर्ति है। उसकी गोद में उन्हें आश्रय मिलना चाहिए, जो निराश्रय हैं, जो पतित हैं, जो अनादृत हैं।''[5]

चिट्ठी पत्री (भाग दो) में उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम पत्र लिखा है, जिससे उनकी सामाजिक दृष्टि को सहज ही समझा जा सकता है। वे लिखते हैं- 'मेरी आकांक्षा कुछ नहीं है। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने-भर को मिल ही जाता है। मोटर बँगले की मुझे हविश नहीं। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य विजय ही हो। मुझे अपने दोनों लड़कों के विषय में कोई बड़ी लालसा नहीं है। यही चाहता हूँ कि वे ईमानदार, सच्चे और पक्के इरादे के हों। विलासी, धनी, खुशामदी संतान से मुझे घृणा है। मैं शान्ति से बैठना भी नहीं चाहता और स्वदेश के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहता हूँ। हाँ, रोटी-दाल, और तोला भर घी और मामूली कपड़े मयस्सर होते रहें।''[6] और सच्चाई यही है कि प्रेमचन्द जीवनपर्यन्त इसी सादगी के साथ जीते रहे। उन्होंने समाज में हो रहे बदलावों को गहराई से देखा तथा उसे अपनी लेखनी का विषय बनाया। साहित्य के माध्यम से समाज तथा देश की सेवा का लक्ष्य ही उनकी रचनाधर्मिता की बुनियाद में है।

प्रेमचन्द अपने लेखन की शुरुआती दिनों में अन्य लेखकों की तरह धार्मिक अन्ध-विश्वास, कर्मकाण्ड, पण्डे-पुरोहित, मूर्ति-पूजा, तीर्थों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि को ही अपने उपन्यासों की कथावस्तु बनाते हैं, लेकिन राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ प्रेमचन्द की चेतना भी प्रखर होती है। आरम्भ में प्रेमचन्द कांग्रेस में गरम दल के प्रवक्ता बाल-गंगाधर तिलक के उग्र राष्ट्रवाद से प्रभावित थे। बाद में जब दक्षिण अफ्रीका से वापस लौटकर गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर अपने हाथों में ले लिया तो राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप और चरित्र में भी बदलाव आया। यही नहीं गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन राजनीतिक लक्ष्यों के अलावा सामाजिक प्रश्नों से भी जुड़ा और साम्प्रदायिक एकता, स्त्री-उत्थान तथा हरिजन-उद्धार जैसे विषय भी उसके दायरे में आये। सत्याग्रह, अहिंसा, सविनय अवज्ञा जैसी बातें गाँधीजी के चलते उसकी कार्यनीति का अंग बनी। प्रेमचन्द इस दौर में न केवल वैचारिक स्तर पर गाँधीजी के प्रभाव में आए, अपने उपन्यासों तथा कहानियों में रचना के धरातल पर भी उन्होंने गाँधीजी के आदर्शों और कार्यक्रमों के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। प्रेमचन्द यह चाहते थे कि आजादी को केवल राजनीतिक आजादी तक ही सीमित न रखा जाए बल्कि उसे सामाजिक और आर्थिक आजादी से जोड़ा जाए जिसमें ज्यादा से ज्यादा लाभ उन शोषित तथा कुचलित सामान्य जनता को मिले। इसीलिए शिवकुमार मिश्र लिखते हैं कि, ''उस दौर में 'जागरण' और 'हंस' में छपी प्रेमचन्द की टिप्पणियाँ और लेख साक्ष्य हैं कि प्रेमचन्द

कितनी शिद्दत से राष्ट्रीय आन्दोलन के इस विचलन और विपथन की न केवल खिलाफत कर रहे थे, वे मांग कर रहे थे कि स्वाधीनता आन्दोलन को महज राजनीतिक आजादी तक सीमित न रखते हुए उसे भारत की जनता की आर्थिक और सामाजिक आजादी के सवालों से जोड़ा जाय। उनका मानना था कि स्वाधीनता का आन्दोलन केवल साम्राज्यवाद विरोध के मोर्चे में ही न लड़ा जाय, जैसा कि हो रहा था, वह सामंतवाद और पूँजीवाद-विरोध के मोर्चे पर भी समानान्तर लड़ा जाय।''[7]

प्रेमचन्द व्यापार पर आधारित महाजनी सभ्यता के घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि यह व्यवस्था व्यक्ति और समाज के स्वतन्त्र विकास में बाधक ही नहीं है, बल्कि उसमें विकृतियाँ और सड़न पैदा करती हैं। कला, संस्कृति और साहित्य को भी यह व्यवस्था व्यापारिक वस्तु बना देती है। इस सभ्यता में हर वस्तु खरीदी और बेची जा सकती है। इसने सामूहिक जीवन को नष्ट कर दिया है और यह व्यक्ति को अन्तर्वादी और नदी का द्वीप बनाकर उसे पूरे सामाजिक परिवेश से काट देती है। वह इस व्यवस्था के अमानवीय पक्ष से भारतीय जनता को सावधान करते हुए लिखते हैं, ''इस महाजनी सभ्यता ने दुनिया में जो नयी रीति-नीतियाँ चलायी हैं उनमें सबसे अधिक घातक और रक्त-पिपासु यही व्यवसाय वाला सिद्धान्त है। मियाँ-बीबी में बिज़नेस, बाप-बेटे में बिज़नेस, गुरु-शिष्य में बिज़नेस। सब मानवीय, आध्यात्मिक और सामाजिक नेह-नाते समाप्त।..... इस सभ्यता की आत्मा है व्यक्तिवाद, आप स्वार्थी बने, सब-कुछ अपने लिए करें।''[8] इस प्रकार प्रेमचन्द इस अमानवीय व्यवस्था के खिलाफ थे। वे स्वराज्य के लिए प्रयासरत थे। उनका मानना था कि, ''स्वराज्य मिलने पर देश में सुख और शान्ति का स्वराज्य हो जाएगा, उसी तरह जैसे कोई कैदी जेल से छूटकर सुखी होता है। उसके हाथों में हथकड़ियाँ नहीं हैं, पैरों में बेड़ियाँ नहीं है, सिर पर सिपाहियों की संगीनें नहीं हैं, वह अन्न के लिए, वस्त्र के लिए किसी का मुहताज़ नहीं है।..... स्वराज्य पाकर हम अपनी आत्मा को पा जायेंगे, हमारे धर्म का उत्थान हो जाएगा, अधर्म का अन्धकार मिट जाएगा और ज्ञान-भास्कर का उदय होगा।''[9] यही नहीं शिवरानी देवी लिखती हैं- ''उनके लिए स्वराज्य का अर्थ ओउम् की जगह गोविन्द को गद्दी पर बिठाने से नहीं, बल्कि किसानों और मज़दूरों की वास्तविक हित-साधना से है। वे निरन्तर एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ मजदूरों और किसानों का राज हो, और मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो।''[10]

अतः स्पष्ट है कि प्रेमचन्द के लिए साहित्य सच्चाइयों का दर्पण तथा जीवन की आलोचना है जो हमें आध्यात्मिक तथा मानसिक तृप्ति देती है साथ ही साथ वह हमारे सौन्दर्य-प्रेम का जागृत करती है। यही नहीं वह हमारे अन्दर सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की दृढ़ता उत्पन्न करती है। उन्होंने समाज में फैले धार्मिक अंधविश्वास, कर्मकाण्ड आदि का विरोध किया जिनके द्वारा गरीब लोगों को छला जाता है, साथ ही साथ समाज में जीतोड़ परिश्रम करने वाले किसानों तथा मजदूरों के हक की लड़ाई लड़ी तथा उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन की भावना से जोड़ा। प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता का घोर विरोध किया, तथा ऐसे स्वराज्य की कल्पना की जिसमें ज्यादा से ज्यादा लाभ उन गरीब तथा शोषित लोगों को मिले जिसके वे सही हकदार हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को एक नया यथार्थ धरातल दिया तथा साहित्यकारों को एक नवीन दृष्टि दी।

सन्दर्भ सूची

[1]रामविलास शर्मा- *प्रेमचन्द और उनका युग,* (1967), पृष्ठ संख्या 151

[2]*प्रेमचन्द : कुछ विचार,* लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2013, पृष्ठ संख्या 9

[3]वही, पृष्ठ संख्या 20

[4]शिवकुमार मिश्र- *कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प,* लोकभारती प्रकाशन संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या 28

[5]नंदकिशोर आचार्य- *प्रेमचन्द का चिन्तन (संपादन),* वाग्देवी प्रकाशन, संस्करण 2012

[6]प्रेमचन्द- *चिट्ठी पत्री (भाग-दो)* (1962), पृष्ठ संख्या 77

[7]शिवकुमार मिश्र- *कहानीकार प्रेमचन्द रचनादृष्टि और रचना शिल्प,* पृष्ठ संख्या 23

[8]नंदकिशोर आचार्य- *प्रेमचन्द का चिन्तन,* पृष्ठ संख्या 175

[9]वही, पृष्ठ संख्या 46-47

[10]शिवरानी देवी- *प्रेमचन्द घर में,* पृष्ठ संख्या 110

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,61-64
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2016

मोहन राकेश की कहानियों में हाशिए पर स्त्री

हरिश्चन्द्र यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मोहन राकेश की कहानियों में हाशिए पर स्त्री* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिश्चन्द्र यादव* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतीय समाज में जो नारी जागरण उन्नीसवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुआ था उसे बीसवीं शताब्दी में विकास मिला और शिक्षा प्राप्त कर नारी सामाजिक-राजनीतिक जीवन में आगे बढ़ी। स्वतंत्रता के आसपास भारतीय नैतिक मूल्यों में जो परिवर्तन हुआ उसने नारी को भी आन्दोलित किया। मध्यवर्गीय मानसिकता से बाहर निकलकर उसने आधुनिक युग में प्रवेश किया और स्वतंत्रता की माँग करने लगी। पर पुरुष-केन्द्रिय समाज में यह सरल कार्य नहीं है। हमारी पारम्परिक पारिवारिक इकाइयाँ टूटने लगीं और उसका अधिक प्रभाव भारतीय नारी पर देखा जा सकता है। नारी ने जो नयी शिक्षा प्राप्त की उससे इसमें नयी जागरूकता आयी और उसकी वैयक्तिक आकांक्षाएं भी सजग हुईं। इससे मानव-सम्बन्धों में एक नया तनाव उत्पन्न हुआ जिसका उल्लेख मोहन राकेश अपनी कहानियों में किये हुए हैं।

मोहन राकेश की कहानी 'हकलाल' में अनमेल विवाह का जिक्र किया गया है जिसमें पण्डित जी की उम्र चालीस के आसपास हैं। उनकी पत्नी जो आयु में काफी छोटी है, उनसे परेशान होकर घर को छोड़कर भाग जाती है जिसके बाद पण्डित जी उसके मायके जाकर डरा-धमका कर वे अपनी साली को घर ले आते हैं। इस कहानी के माध्यम से देखा जाता है कि लड़कियाँ कैसे बिकती हैं, इसका संकेत मोहन राकेश ने इस कहानी में दिया है। बौद्ध युग तक में स्त्रियों का व्यापार होता था, जिस पर यशपाल ने 'दिव्या' जैसे उपन्यासों की रचना की। 'हकलाल' कहानी से पता चलता है कि पण्डित जी ने अपनी पत्नी को सौ रुपये में खरीदा था। कहते हैं ''बड़ी बहन सौ रुपये में मिल सकती थी जी। पर यह जरा खूबसूरत थी। उम्र छोटी थी पर मैंने सोचा कि इसकी कोई बात नहीं। मुझे यह थोड़े ही पता था कि यह मेरे साथ इस तरह दगा करेगी।''[1] स्त्री के भाग जाने पर पण्डित जी ने ससुराल वालों को डराते हैं कि मुकदमा कर देंगे और इसके बाद कहते हैं कि- ''गरीब आदमी है, बहुत मिन्नतें करने लगा। मैंने भी सोचा इसे रुपयों के लिए तंग करना ठीक नहीं। बेचारा देगा कहाँ से? मैंने कहा कि यूँ कर कि जब तक वह लौटकर नहीं आती तब तक के लिए अपनी छोटी लड़की को मेरे यहाँ भेज दे। हाँ, कम से कम मेरे घर में चूल्हा

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश) भारत।भारत। E-mail : yadavharishchandra282@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

तो जलता रहे। मैं दावा नहीं करूँगा।''[2] और अपनी पत्नी की छोटी बहन को घर में ले आते हैं और इससे पता चलता है कि स्त्रियों की जैसे भारतीय समाज में कोई इच्छा नहीं-गाय-बकरी की तरह बिकती हैं, जो चाहे हाँक ले जाय।

आगे की कहानी में पण्डित जी की पत्नी घर लौट आती है। बाप उसे खूब पीटता है, ''पर वह इतनी ढीठ है कि चुपचाप मार खाती रही पर, मुँह से एक बात का जवाब तक नहीं दिया।''[3] यह है नारी की विवशता। चमत्कार यह है कि साली भी पण्डित जी के पास रह जाती है। वे कहते हैं- ''वह अब कहाँ जायेगी जी?.....उनका बाप बहुत गरीब है। उसके पास इसे खिलाने के लिए एक पैसा भी नहीं है। उसको इसका सौ, सवा सौ चाहिए सो मैं ही उसे दे दूँगा। इतने दिनों से घर में रही है सो छोड़ने को जी नहीं करता। आदमी को आदमी से मोह हो जाता है। और क्या पता कल को बड़ी बहन फिर भाग जाये। ऐसे लोगों का कोई भरोसा थोड़े ही है।''[4]

कहानी में मोहन राकेश पहाड़ों के गरीब समाज में नारियों की दयनीय स्थिति बताना चाहते हैं। यहाँ नारियाँ किसी और समाज की तरह बेची-खरीदी जाती हैं। नारी का अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है, जैसे वह केवल शरीर है।

'जानवर और जानवर' कहानी में नारी पात्र मिशन स्कूल का वास्तविक चरित्र तो बताते हैं, पर उनका व्यक्तित्व खुलने नहीं पाता। नयी मैडम अनिता विवश परिस्थितियों में काम करने आयी है। पीटर को बताती है, ''मैं अपने घर में अकेली कमाने वाली हूँ। मेरी माँ पहले बटुए सिया करती थी, पर अब उसकी आँखे बहुत कमजोर हो गयी हैं। मेरा छोटा भाई अभी पढ़ता है। उसके एम.एस-सी. करने तक मुझे नौकरी करनी है।''[5] इस कहानी के उत्तरार्ध में यही अनिता दिखाई देती है। वह गरीबी से लड़ती-झगड़ती नारी है : घर में एक छोटा कमरा, जिसमें तीन लोग रहते हैं, आधा कमरा भाई का आधे में माँ-बेटी। वह अपने परिवार से जुड़ी है - ''मैं अपनी माँ से बहुत प्यार करती हूँ। पहला वेतन मिलने पर मैं उसके लिए कुछ अच्छे-अच्छे कपड़े भेजना चाहती हूँ; उसके पास अच्छे कपड़े नहीं हैं।''[6] पीटर और जॉन अनिता के विषय में बात करते हुए उसे बहुत सीधी, अच्छी लड़की कहते हैं। पर वे यह भी जानते हैं कि इसकी भी वही दशा होनी है, जो मणि नानावती की हुई थी। पीटर अनिता के प्रति अच्छी भावनाएं रखता है और अब जॉन उसे बताता है कि आज रात पादरी ने अनिता को अपने यहाँ बुलाया था तो वह गिरजाघर भी नहीं जाता। मोहन राकेश ने संकेत से, मिशन स्कूल की घुटन-भरी जिन्दगी बताने के लिए नारी पात्रों का उपयोग किया है। इसमें उन्होंने एक प्रतीक चुना है- ''एक देसी कुत्ता-पादरी की बिस्कुट और सैडविच खाकर पाली हुई कुतिया के साथ खेलता है। पादरी उसे गोली मार देता है।''[7] कहानी संकेत करती है कि ऊपर से सभ्य दिखने वाले लोग जानवरों से भी बदतर हैं।

दूसरी कहानी में भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को निरूपित करने वाली यह कहानी अपनी ईमानदारी में अकेली है। इसके प्रकाश और बीना अलग-अलग नौकरी करते हैं। उनके जीवन में आने वाला बच्चा भी उन्हें एक सूत्र में बाँध नहीं पाता है- ''बीना समझती थी कि इस तरह जान बूझकर उसे फँसा दिया गया है और प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया है।''[8] बच्चे की वर्षगाँठ इस दम्पत्ति के जीवन की ही गाँठ बन जाती है। यही गाँठ पुनः पहाड़ी इलाके में खुलने लगती है। लेखक ने बहुत ही प्रतीकात्मक ढंग से इन दोनों के बीते हुए जीवन के तनावों और संवेदनाओं को रूपायित करते हुए वर्तमान जीवन-बिन्दु पर उभरने वाले रागात्मक स्तरों की पहचान कराई है।''[9] राग-सम्बन्धों की तरलता बिछुड़ने के समय स्फुट होते जाने का आभास देने लगती है। इसमें प्रभाव की जो सघनता है वह अलग होने की नियति से बँधी हुई है। सूक्ष्म मानव-सम्बन्धों की यह रागात्मक तरलता कहानी में प्रत्यक्षतः इस कथन से टूटती दिखाई गई है :''फिजूल की भावुकता में कुछ नहीं रखा है। बच्चे-अच्छे तो होते ही रहते हैं। सम्बन्ध-विच्छेद करके फिर से ब्याह कर लिया जाये तो घर में और बच्चे आ जायेंगे। मन में इतना ही सोच लेना होगा कि इस बच्चे के साथ कोई दुर्घटना हो गई।''[10] इसी स्थल पर भावुकता को मसलकर यथार्थ के काम को सोचकर ही लिया गया है- ''कितने इन्सान हैं जिनकी जिन्दगी कहीं न कहीं, किसी न किसी दोराहे से गलत दिशा की तरफ भटक जाती है। क्या यह उचित नहीं कि इन्सान उस रास्ते को बदलकर अपने को सही रास्ते पर ले जाए। आखिर आदमी के पास एक ही तो जिन्दगी होती है- प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी। तो क्यों आदमी एक प्रयोग की असफलता को जिन्दगी की असफलता मान ले।''[11] कहने की आवश्यकता नहीं कि यह कहानी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की कटुता, जटिलता और उससे आई अकेलेपन की स्थितियों को प्रतिरूपित करने वाली सशक्त कहानी है।

सुहागिनें कहानी भी स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली कहानी है। इसके पति-पत्नी भी पढ़े लिखे हैं। अलग-अलग रहकर नौकरी करते हैं। उनमें न कोई मनमुटाव है न एक दूसरे से कोई शिकायत फिर भी उनके प्यार का नशा उतरता जाता है। जिस सुशील के साथ 'हनीमून' के समय दुनियाँ बहुत रंगीन लगती थी, रोमाँस के सामने दुनियाँ की हर चीज हेय थी ''उसी के पत्रों में मधुर आलिंगन और चुंबन पढ़कर उसे मधुर आलिंगन और चुंबन का कुछ भी स्पर्श अनुभव नहीं होता है। उसे ऐसा लगाव था जैसे वह एक चश्में से पानी पीने के लिए झुकी हो और उसके होठ गीली रेत से छूकर रह गये हों।''[12] वह चिट्ठी का जवाब लिखती है तो वह भी उसके दफ्तर की चिट्ठियों से अलग नहीं होता। वह भी खत का अन्त मधुर आलिंगन और अनेकानेक चुंबनों से करती है। सुशील उससे अपनी बहिन के विवाह के लिए अधिकाधिक बचत करने के लिये लिखता रहता है। वह स्वयं को सबसे अकेला तथा अपने जीवन को बहुत नीरस पाती है। उसके जीवन के अभाव नौकरानी काशी की कथा से और भी अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। काशी परित्यक्ता स्त्री है और बहुत मुश्किल से अपने पाँच बच्चों के साथ रूखा-सूखा खाकर रहती है। प्रवासी पति से न कोई आर्थिक सहायता मिलती है न संवेदनापूर्ण खत। उसमें जीने की लालसा अभी मरी नहीं है। पति के आने के दिन वह अपनी मालकिन की प्रसाधन-सामग्री से अपना शृंगार करती है। पति मारपीट करता है फिर भी उसके कामेच्छा को पूर्ण करती है तथा पुनः गर्भवती हो जाती है। इस सूचना से मनोरमा का हृदय कहीं से छिल जाता है। उसके मन में भी बच्चे की कामना थी, लेकिन सुशील अभी बच्चा नहीं चाहता। सुशील का अपने परिवार को आर्थिक सहायता देने के लिए मनोरमा से नौकरी कराना, बचत का आग्रह उसे धीरे-धीरे पति से अलग करता जाता है। अतः सुहागिनें कहानी दाम्पत्य सम्बन्धों की पीठिका पर लिखी गई जटिल सम्बन्धों की कहानी है। इससे नर-नारी मानव सम्बन्धों की यंत्रणा को भोगते हुए पात्र हैं।

इस प्रकार इन प्रारंभिक कहानियों में पाते हैं कि इनकी शुरूआत भावुकता और रोमांचकता से होती है। धीरे-धीरे मोहन राकेश यथार्थ को जानते हैं और फिर अपनी प्रिय 'थीम' पर आते हैं- नारी-पुरुष-सम्बन्ध। गुमशुदा और 'अर्थ-विराम' जैसी कहानियां इसका परिचय देती हैं। 'गुमशुदा' में वे अग्निबीज है; जिसका आगे चलकर पूरा विकास हुआ, ''सब कुछ है मगर फिर भी मुझे जिन्दगी फीकी-फीकी और अर्थहीन सी लगती है। मेरी कुछ समझ में ही नहीं आता कि मैं क्यों जी रहा हूँ?''[13] यह है जीवन की रिक्तता, अर्थहीनता जिससे मोहन राकेश के मध्यवर्गीय पात्र गुजरते हैं। इन प्रारम्भिक कहानियों के बारे में कथाकार कमलेश्वर की टिप्पणी सही है कि इसमें मोहन राकेश की ज्वलन्त साहित्यिक यात्रा के 'अग्निबीज' मौजूद हैं। जहाँ तक नारी पात्रों का सम्बन्ध है, संकलन की पहली कहानी 'नन्हीं' में नन्हीं की करुण कथा है, पर 'कटी हुई पतंगें' की राजकरनी गाली देने वालों से यह कहने का साहस रखती है कि ''माँ को गाली मत दे री, नहीं तो यही पर भुरता बना डालूँगी।''[14] जिसमें मेहर जैसी विभाजन की विभीषिका में इज्जत लुटी नारियों की मनःस्थिति का चित्रण है और साथ है समदू और मेहर की प्रेम कथा। मेहर के कोमल शरीर के स्पर्श से समदू का सारा शरीर रोमांचित हो रहा था। जैसे वह चिकनाहट उसके शरीर से ढलती जा रही थी।''[15] मेहर कबाइलियों द्वारा लूटली गयी थी, इसलिए वह समदू से बचना चाहती है। वह अपनी व्यथा इन शब्दों में प्रकट करती है : ''मैं वह मेहर नहीं हूँ जिसे तू पाना चाहता है। इस जिन्दगी में अब मैं वह मेहर हो ही नहीं सकती। मैं एक गली हुई बीमार जिस्म हूँ और कुछ नहीं जिसमें अब जहर ही जहर है।''[16] 'वारिस' कहानी संकलन में मोहन राकेश अपनी आरम्भिक भावुकता से मुक्त होते हैं और नारी के प्रति उनकी दृष्टि अधिक यथार्थ जमीन पर है। अभी जिस चाँदनी और 'स्याहदाग' (एक घटना) का उदाहरण दिया गया उसमें मेहर का प्रेमी समदू अपनी प्रिया को यह जानने के बाद भी पूरी भावुकता से स्वीकार करता है कि कबाइलियों ने उसे भ्रष्ट किया है।

मोहन राकेश ने कामकाजी महिलाओं को अपने साहित्य में काफी स्थान दिया और वे उनके प्रश्नों से बखूबी परिचित हैं। नारी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहती है पर इससे समस्याओं का हल नहीं हो जाता। बल्कि कई नयी समस्याएँ पैदा होती हैं, कई तरह के तनाव जन्म लेते हैं और नारी एक दूसरी यातना से गुजरती है। समाज में सम्मान से रह पाना भी सरल नहीं होता। नारी-पुरुष सम्बन्धों की अपनी पीड़ा है। जैसे 'गुंझल' कहानी की कुन्तल कम बोलती है, पर टूटते सम्बन्धों की जिम्मेदार हैं। 'जानवर और जानवर' में मिशन स्कूल का पूरा परिवार नारियों के माध्यम से साकार हुआ है। इस प्रकार 'एक घटना' में मोहन राकेश की प्रारम्भिक नारी-सृष्टि है, तो 'वारिस' में उसका विकास।

संदर्भ सूची

[1]मोहन राकेश- *हकलाल,* पृष्ठ संख्या 153
[2]वही, पृष्ठ संख्या 153
[3]वही, पृष्ठ संख्या 153
[4]वही, पृष्ठ संख्या 128
[5]मोहन राकेश- *जानवर और जानवर,* पृष्ठ संख्या 41
[6]डॉ. श्रीमती मीना पिंपलापुरे- *मोहन राकेश का नारी संसार,* प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 82
[7]वही, पृष्ठ संख्या 83
[8]डॉ. सुषमा अग्रवाल- *कहानीकार मोहन राकेश,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 73
[9]मोहन राकेश- *वारिस एक और जिन्दगी कहानी,* पृष्ठ संख्या 16
[10]वही, पृष्ठ संख्या 27
[11]डॉ. रामदरश मिश्र- *आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि,* पृष्ठ संख्या 833
[12]डॉ. सुषमा अग्रवाल- *कहानीकार मोहन राकेश,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ संख्या 74
[13]मोहन राकेश- *चांदनी और स्याह दाग,* पृष्ठ संख्या 56
[14]मोहन राकेश- *गुमशुदा,* पृष्ठ संख्या 91
[15]मोहन राकेश- *चांदनी और स्याह दाग,* पृष्ठ संख्या 56
[16]वही, पृष्ठ संख्या 59

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,65-66
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 फरवरी 2016

शास्त्रों में किञ्चित् समानार्थक शब्दों के विभिन्नार्थ : एक संक्षिप्त अनुशीलन

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शास्त्रों में किञ्चित् समानार्थक शब्दों के विभिन्नार्थ : एक संक्षिप्त अनुशीलन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नाम माला के अनुसार खट्टे दही को मांगल्य कहते हैं। एक शिष्य ने पूछा गुरूजी, पिता जी यात्रा पर जा रहे थे तो मां ने गुड़-दही मिलाकर उन्हें खाने को दिया और कहा गुड़-दही खाने से यात्रा मंगलमय होती है, यह शगुन है। क्या इसीलिये दही को मांगल्य या मांगलिक कहा जाता है।

आचार्य बोले हाँ वत्स! 'मनुस्मृति' में मांगल्य का अर्थ शुभ, सौभाग्यशाली एवं भाग्यवान होता है। 'उत्तररामचरितम्' में पवित्र, विशद्ध और पावन के अर्थ में मांगल्य शब्द का प्रयोग किया गया है। 'एकाक्षरीकोश' में वटवृक्ष और नारियल के पेड़ को मांगल्य कहा गया है। तीर्थजल, सोने, सिन्दूर और चन्दन की लकड़ी के अर्थ में भी मांगल्य शब्द काम में लिया जाता है। मसूर की दाल के मांगल्य कहते हैं। 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' में श्रेष्ठता और सर्वोत्तमता को प्रकट करने के लिये मचर्चिका शब्द काम में लिया गया है। इस शब्द का प्रयोग संज्ञा के अन्त में किया जाता है। 'गोमर्चिका शब्द इसका उदाहरण है जिसका अर्थ है- एक बढ़िया गाय का बैल।

आचार्य ने बताया- 'ब्रह्माण्डपुराण' के अनुसार छः शक्ति देवियों में से एक का नाम 'मज्जा' है। एक नरक को भी 'मज्जा' कहा गया है। मांस-हड्डियों के बीच के रस को भी 'मज्जा' कहा गया है। पौधों के रस को भी 'मज्जा' कहा गया है। सिंहासन, शैय्या, आसन और व्यासपीठ के लिये मंच शब्द का प्रयोग होता है। कुर्सी, कठोंती और क्षाली को 'मंचिका' कहते हैं। 'कुमारसम्भवम्' में कोपल, अंकुर और फल के गुच्छे के लिये 'मंजरी' शब्द का प्रयोग किया जाात है। गीतगोविन्द के अनुसार पैर के आभूषण को 'मंजरी' कहा गया है। नूपुर के लिये भी 'मंजरी' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'मातंगलीला' के अनुसार यह स्थूणा जिसे रई की रस्सी लपेटी जाती है वह भी 'मंजरी' है। 'भामिनी विलास' और 'अमरकोश' के अनुसार प्रिय, सुन्दर, मनोहर, मधुर, सुखकर, रूचिकर और आकर्षक के लिये 'मंजु' अथवा 'मंजुल' शब्द का प्रयोग होता है।

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन महिला महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'कृष्ण' का एक विशेषण 'मंजुकेशी' है। राजहंस को 'मंजुगमन' कहा है क्योंकि हंस की चाल को सुन्दर माना जाता है। इन्द्र की पत्नी शची का नाम 'मंजु' है। सुन्दर स्त्री एवं दुर्गा के विशेषण के लिये भी 'मंजु' शब्द काम में लिया गया है। ब्रह्मा को 'मंजुद्राण' कहते हैं। तोते को 'मंजुपाठक' कहा गया है। विद्यालय एवं महाविद्यालय के लिये म0 शब्द का प्रयोग होता है। प्राचीन गुरूकूल परम्परा में मंदिर और म0 ही शिक्षालय होते थे। सन्यासी के आश्रम को भी म0 कहा गया है।

'वायुपुराण' में चक्रवर्ती राजाओं के चौदह रत्नों में से एक का नाम 'मणि' है। पाताल लोक के नागों के आभूषण को भी 'मणि' कहा गया है। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार वह जल पात्र जिसमें मछली रखी जाती है उसे 'मणिक' कहते हैं। कलाई को 'मणिबंध' कहा है। 'हीरे' का नाम 'मणिराज' है। 'नीलकण्ठ' को मणिकंठ कहते हैं। काशी के पांच प्रमुख तीर्थों में से गंगातट पर स्थित एक तीर्थ का नाम 'मणिकर्णिका' है। मान्यता है कि यहाँ स्नान करने से सारी इच्छायें पूर्ण हो जाती है और शवदाह करने से जीव को मोक्ष प्राप्त होता है। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार यहाँ पर पार्वती की मणिजटित कर्णिका गिर गई थी, इसीलिये इसे मणिकर्णिका घाट कहा जाात है। 'स्कन्द पुराण' एवं 'काशीखण्ड' में इसका वर्णन मिलता है। अमृत सागर के एक टापू का नाम 'मणिद्वीप' है। सहदेव के शंख का नाम 'मणिपुर' था। नाभि और रत्नजटित चोली को भी 'मणिपुर' कहते हैं। कलिंग देश का एक नगर 'मणिपुर' है। 'रघुवंश' में शेषनाग के महत्व को मणिकांत कहा गया है। इस महल की दीवारें रत्नों से बनी हुई हैं। रत्नजटित सीढ़ियों को 'मणिसोपान' और रत्नों से जड़ित खम्भों को 'मणिस्तम्भ' कहा गया है। 'कामसूत्र' के अनुसार एक स्पष्ट *सीत्कार* को *मणित* कहा है। 'शिशुपालबधम्' में इसका उल्लेख मिलता है। फुलके या पतली रोटी को 'मण्डल' कहा जाता है।

'तर्कशास्त्र' के अनुसार अपने मत के पक्ष में दिये गये तर्क को मण्डन कहते हैं। कालिदास और भर्तृहरि ने सजावट के लिये 'मण्डन' शब्द काम में लिखा है। सजाने कि क्रिया को 'मण्डन' विधि कहते हैं। भारतीय दर्शन शास्त्र के एक प्रसिद्ध आचार्य का नाम 'मण्डनमिश्र' था। मण्डनमिश्र ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में हराया था। रघुवंश में लतागृह और शुभ अवसरों पर बनाये गये अस्थाई निवास को 'मण्डप' कहा है। देवालय की प्रतिष्ठा को 'मण्डप' प्रतिष्ठा कहा जाता है। 27 प्रकार के मण्डप माने जाते हैं- पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनंदन, कौशल्य, वुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिंजय, यज्ञभद्र, विशाल सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपंच, नंदन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतार्धिक, सिंह, श्यामभद्र और सुभद्र। इन मण्डपों के अलग अलग लक्षण बताये गये है। जिस मण्डप में 64 स्तम्भ हैं उसे पुष्पक, 62 स्तम्भ वाले मण्डप को पुष्पभद्र और जिसमें 60 स्तम्भ हों उसे सुव्रत मण्डप कहते हैं।

स्रोत

मनुस्मृति
उत्तररामचरितम्
एकाक्षरीकोश
लघुसिद्धान्त कौमुदी
ब्रह्माण्डपुराण
कुमारसम्भवम्
वायुपुराण
मत्स्य पुराण
स्कन्द पुराण
शिशुपालबधम्
कामसूत्र
तर्कशास्त्र

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,67-72
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 11 फरवरी 2016

औरत "चुप" है, तभी "महान" है : सुजाता[1]

आशुतोष वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *औरत "चुप" है, तभी "महान" है : सुजाता*[1] शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *आशुतोष वर्मा* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

कुदरत ने सारे इन्सानों को एक समान बनाया, लेकिन इन्सानों ने जात-पात की इतनी ऊँची दीवारें खड़ी कर ली हैं कि उन्हें लांघना खुद उनके बस की बात नहीं है लेकिन समय-समय पर इन्सानियत की मिसालों से ये दीवारें दरकने लगती हैं। 1959 में विमलराय ने जात-पात की सार्थकता को जाति के लोगों की अमानवीय सोच और अछूत कन्या की विवशता को बड़े ही मानवीय और भावात्मक रूप से प्रस्तुत कर सामाजिक समानता का संदेश दिया था।[2]

बताना मुश्किल है कि 'सुजाता' विमलराय की फिल्म है अथवा नूतन की। परिकल्पना विमलराय की है तो उसे साकार किया है नूतन ने। इस फिल्म को अगर सैल्यूलाइड पर लिखी एक कविता की संज्ञा दी जाए तो यह अतिशयोक्ति न होगी। 'सुजाता' विमलराय की अन्तिम फिल्मों में से एक थी। इसके बाद उन्होंने मात्र दो और फिल्में 'परख' और 'बन्दिनी' बनाई। 'बन्दिनी' हिन्दी फिल्मों का मील का पत्थर है लेकिन अभी सुजाता की बात।

सुजाता की कहानी अशोक कुमार और देविका रानी पर फिल्माई गई अछूत कन्या से मिलती-जुलती होते हुए भी उसका ट्रीटमेंट और अन्त बहुत अलग है। स्वतंत्रता मिले अभी एक दशक से दो साल ऊपर हुए थे। लोगों पर गाँधी और उनके अछूतोद्धार का प्रभाव था। लोगों में उत्साह और कुछ कर गुजरने का जज्बा था। सपने अभी टूटने शुरू नहीं हुए थे। आज की तरह सपने टूटे नहीं थे। पता नहीं था कि हम प्रगति कर रहे हैं अथवा पीछे जा रहे हैं। आज यदि विजातीय युवा शादी कर लेते हैं तो पंचायत बिठाकर उनके घर वाले ही उन्हें फंदे में झुला देते हैं। बिमलराय सादगी और सच्चाई की प्रतिमूर्ति थे। पढ़े-लिखे और कई बौद्धिक लोग भी जाति प्रथा से जकड़े हुए हैं। वे निम्न जाति और उच्च जाति के युवाओं के प्रेम या विवाह की बात नहीं सोच पाते हैं। नहीं सोच सकते हैं परन्तु बिमलराय ने साठ के दशक में न केवल उनका प्रेम प्रदर्शित किया वरन् पूरे परिवार की सम्मति से उनका विवाह करना भी दिखाया।

मातृहीन बालक पंत को प्रकृति में सुकून मिलता था। ममता की प्यासी सुजाता भी प्रकृति के सानिध्य में अपने मन की शान्ति खोजती है। प्रकृति प्रेम से इस फिल्म का खास नाता है। फिल्म की कॉस्टिंग एक फूल के इर्द-गिर्द दिखलाई गई है। एक

* शोध छात्र, मा. च. रा. प. स. वि. भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऐसा फूल जिस पर किसी का ध्यान न जाये। यह गुलाब या चमेली का फूल नहीं है, यह एक जंगली फूल है जिसे बाहरी चमक-दमक की जरूरत ही नहीं है। जो आत्मालोक से दीप्त है। निर्देशक पूरी फिल्म की थीम शुरू में दर्शकों के हाथ में थमा देता है। फिल्म के भीतर भी प्रकृति का सुन्दर और संवेदनशील फिल्मांकन किया गया है। जब नायक (सुनील दत्त) नायिका को पीछे से आकर पुकारता है तो लजीली अपने आप में सिमटती सुजाता की भावनाओं को दर्शाने के लिए छुईमुई (लाजवंती) की पत्तियों को सिकुड़ते दिखाया गया है। प्रकाश और छाया का श्वेत-श्याम का ऐसा अनूठा प्रयोग विरले ही देखने को मिलता है और जब फोन पर नायक गाता है, 'जलते हैं जिसके लिये।[3] सुजाता के चेहरे का भाव और उसकी आँखों से ढलते आँसू उसके हृदय की समस्त पीड़ा, उसको मिली उपेक्षा, उसकी बेबसी सब निःशब्द बयान कर देते हैं। उन आँसुओं में भीगा दर्शक सुजाता के प्रेम में सराबोर हो जाता है।

1959 में बिमलराय ने यह फिल्म बनाई थी। उस समय तक वे पहला आदमी, नौकरी, दो बीघा जमीन, परिणीता, बिराज बहू, देवदास, यहूदी, मधुमती आदि कई नामी फिल्में बनाकर फिल्म जगत में अपनी मजबूत पहचान बना चुके थे। इसमें पहला आदमी और नौकरी को छोड़कर सब हिट फिल्में थीं। ये फिल्में आज भी किसी निर्देशक की ईर्ष्या और चुनौती का कारण बन सकती हैं।

सुजाता फिल्म की कहानी में उतनी विशिष्टता नहीं है जितनी विशिष्टता उसके फिल्मांकन में है। उसके ट्रीटमेंट में है। यह बिमलराय का कमाल है कि उन्होंने एक सामान्य सी कहानी को एक ऊँचाई प्रदान की है। कहानी कुछ यूँ है, प्लेग के दौरान एक अछूत कुंवारी माँ मरने से पूर्व अपनी बच्ची एक ब्राह्मण परिवार इंजीनियर उपेन्द्रनाथ चौधरी (तरूण बोस) तथा उसकी पत्नी चारू (सुलोचना) के दरवाजे पर छोड़ जाती है। यह परिवार धनी परन्तु सहृदय है और अपनी बच्ची रमा (शशिकला) के साथ इस अनाथ अछूत बच्ची सुजाता का पालन करता है। सुजाता का शाब्दिक अर्थ अच्छी जाति या अच्छा जन्म है।

दोनों बच्चियाँ समवयस्क हैं और दोनों में बहनापा है। सगी बच्ची खिलंदड़ी है। पियानो बजाना उसका प्रिय शगल है। सुजाता को वह अपनी बड़ी बहन मानती है और उससे वैसा ही स्वाभाविक व्यवहार भी करती है। जबकि पालित बच्ची सुजाता गुमसुम रहकर दिन-रात काम करती है। परिवार से उसे प्यार मिलता है, पर वह अपनी स्थिति जानती है। उसे प्रेम है प्रकृति से, फूल पत्तों से। परिवार उसे कई बार अनाथालय भेजना चाहकर भी नहीं भेज पाता है। सुजाता अपने व्यवहार से उनका मन जीत लेती है पर माँ के मुँह से बेटी शब्द सुनने के लिए तरसती है। वे उसका परिचय सदा 'बेटी जैसी' कहकर दिया करती थीं और सुजाता के मन को यह परिचय कचोटता था।

असल दिक्कत तब आती है जब रमा का विवाह तय होता है। बहुत दिनों से रिश्तेदारी के एक ब्राह्मण परिवार में उसके विवाह की बात चल रही है। वे लोग स्वयं को प्रगतिवादी मानते हैं। उन्हें सुजाता से कोई शिकायत नहीं है। बस वे लोग यही चाहते हैं कि उसका विवाह रमा से पहले कर दिया जाये ताकि रमा के विवाह के वक्त वह दिखाई न दे और उन लोगों को समाज के सामने किसी अप्रिय स्थिति का सामना न करना पड़े। इस कारण चारू को सुजाता अपनी बेटी के विवाह में बाधा के रूप में नजर आने लगती है।

पर बात यहीं समाप्त नहीं होती है। रमा को देखने आया अधीर (सुनील दत्त) सुजाता को चाहने लगता है, अधीर अपने परिवार के सब सदस्यों की इच्छा के विपरीत सुजाता से विवाह का निश्चय करता है। वह प्रगतिशील है, अधीर नायक है लेकिन यह नायिका प्रधान फिल्म है। यह सुनील दत्त के अभिनय और व्यक्तित्व का कमाल है कि उन्होंने कहीं भी नूतन पर हावी होने का प्रयास नहीं किया है और अंडरप्ले करते हुए बेहतरीन शॉट्स दिए हैं। फिल्म का अन्त नाटकीय है। चारू का हृदय परिवर्तन होता है जब उसे सुजाता अपना रक्त देकर बचाती है और चारू खुशी-खुशी सुजाता की शादी अधीर से करने को राजी हो जाती है।[4]

बिमलराय ने इससे पहले मधुमती जैसी सफल फिल्म बनाई थी। उसका विषय हल्का-फुल्का था। राय स्वभाव से दयालु थे। सामाजिक अत्याचार और अन्याय को स्वीकार नहीं कर पाते थे इसलिए जब उन्होंने सुजाता बनाई तो पूरे मन से बनाई। नतीजा यह हुआ कि अछूत समस्या पर सुजाता जैसी संवेदनशील फिल्म अब तक दूसरी नहीं बनी है। उन्होंने एक ब्राह्मण और एक अछूत के विवाह सम्बन्ध को दिखाया है क्योंकि वे इसमें विश्वास करते थे। उन्हें यह असम्भव नहीं लगता था। यह मात्र कल्पना न थी।

फिल्म में उन्होंने दिखाने की चेष्टा की है कि जन्म से जाति नहीं होती वरन् व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, जैसा उसका लालन-पालन होता है, वही उसकी जाति हो जाती है। जब एक ब्राह्मण का बच्चा शूद्र परिवार में पलने पर शूद्र बन जाता है तो उच्च जाति के परिवार में पलकर निम्न जाति का बच्चा निम्न कैसे रह जायेगा। इतना ही नहीं उच्च और निम्न जाति सब लोगों में एक जैसा रक्त दौड़ता है। यही बात अभी कुछ दिन पहले एक अन्य फिल्म में बहुत क्रूर तरीके से दिखाई गई थी, जिसमें अंगुली कुचलकर दिखाया गया था कि सबका रक्त लाल होता है। श्वेत-श्याम रंगों की छायाकारी और सादगी मनमोह लेती है। न आज के जमाने की तड़क-भड़क भरी सेट-सज्जा, न मेकअप का कमाल। सादगी का अपना ग्लेमर होता है और यही ग्लेमर इस फिल्म में है और भरपूर है। नूतन ने कई फिल्मों में बहुत अच्छा अभिनय किया है। सुजाता में भी उन्होंने इस आधिकारिक तरीके से एक अछूत, उदास, अकेली और मन से दुःखी लड़की की भूमिका अदा की है कि उसका दुःख, उसके मन की कचोट सीधे दर्शक के मन में उतर जाती है। नूतन की एक नजर इतना कुछ कह जाती है जिसे कहने के लिए शायद किसी अन्य अदाकारा को लम्बे-लम्बे संवादों की आवश्यकता होगी। इस फिल्म में उनके संवाद बहुत कम हैं। हाँ, आँखों से वो बराबर दर्शकों से संवाद जारी रखती हैं और बखूबी अपनी बात कह जाती हैं।

इस फिल्म की मुख्य संवेदना मानवीय करूणा है, जिसे अस्पृश्यता की पृष्ठभूमि पर उभारा गया है। इसी के समानान्तर अनेक प्रभावशाली कन्ट्रास्टों की रचना की गई है।

सुजाता फिल्म में यह कन्ट्रास्ट कहीं-कहीं सीधे, तो कहीं-कहीं व्यंग्य के स्तर पर बहुत सटीक तरीके से व्यक्त हुआ है। इसकी शुरूआत फिल्म के शीर्षक 'सुजाता' से हो जाती है। 'सुजाता' का अर्थ है- 'शुभ जाति में उत्पन्न'। जबकि वह अछूत है। अर्थात् जाति नीच, किन्तु नाम सुजाता। इस शीर्षक के कन्ट्रास्ट में ही एक जबरदस्त सामाजिक व्यंग्य और संदेश निहित है।

इस पूरे कथानक के माहौल में सबसे अधिक कन्ट्रास्ट धर्म के सन्दर्भ में आए हैं। वह इसलिए क्योंकि जाति का सम्बन्ध कर्म से नहीं, बल्कि धर्म से माना गया है। फिल्म के संवादों में व्यक्त हुए कुछ रूचिकर कन्ट्रास्ट कुछ इस प्रकार हैं-

छुआछूत की घोर समर्थक धार्मिक प्रवृत्तियों वाली बुआजी अपने नाती अधीर की शिकायत अपने भतीजे उपेन्द्र चौधरी से करती हुई कहती हैं-

''एम0ए0 पढ़ चुका है, फिर भी उसकी पढ़ाई पूरी नहीं होती है।''[5] इसके उत्तर में प्रगतिशील विचारों वाले उपेन्द्र कहते हैं, ''पढ़ाई भी कभी पूरी होती है, बुआ।''[6]

इस उत्तर में बुआ की मान्यताओं के प्रति एक तीखा व्यंग्य निहित है, जो इस भाव को व्यक्त करता है कि बुआ को भी अभी बहुत सीखने की जरूरत है।

बुआ एक विधुर किन्तु पैसे वाले अधेड़ व्यक्ति से सुजाता का रिश्ता पक्का कर देती है। उपेन्द्र को इस बात की सूचना देती हुई वे कहती हैं, ''सुजाता का ब्याह पक्का हो गया है। वह भी नीच जाति का है। अच्छा, मैं ठाकुरजी की आरती करने जाती हूँ।''[7]

इस संवाद में 'नीच जाति' और 'ठाकुर जी की आरती' में एक गहरा संवेदनशील व्यंग्य है, जो धर्म के आडम्बर की ओर संकेत करता है। इनता ही नहीं बल्कि 'ठाकुर जी' शब्द भी जातिवाचक है, जो नीच शब्द के विरोध में रखा गया है। यदि 'ठाकुर जी' के स्थान पर 'भगवान जी' कहा जाये, तो व्यंग्य की धार कुन्द हो जायेगी।[8]

यह स्वतंत्रता के बाद बनी पहली महत्वपूर्ण फिल्म थी जिसमें अछूत समस्या को उठाया गया था। अधीर चौधरी का दूर का रिश्तेदार है, वह उनकी दूर की बुआ का भतीजा है। जब रमा की माँ को अधीर के प्रेम का पता चलता है तो वे सारा दोष सुजाता के माथे पर लगाती हैं। सुजाता चारू को बहुत मान देती है, उनका बहुत आदर करती है। जब वह देखती है कि उनके कारण वे दुखी हैं तो वह आत्महत्या का मन बनाती है। यह जमाना गाँधी से बहुत ज्यादा प्रभावित था। फिल्म दिखाती है कि सुजाता मरने के लिए नदी के किनारे पहुँचती है तो उसकी दृष्टि घाट पर गाँधी की प्रतिमा और उसके नीचे लिखे शब्दों पर पड़ती है। वहाँ लिखा था, 'आत्महत्या करना पाप है।' सुजाता को इससे ज्ञान मिलता है और वह आत्महत्या नहीं करती है। इसी तरह का एक वाक्य उसके मन को ऊँचा उठाने के लिए अधीर, सुजाता से कहता है 'आत्मनिन्दा आत्महत्या से भी बड़ा पाप है।'[9]

आत्महत्या के बाद एक सवाल हमेशा परेशान करता है कि मरने वाले ने यह कदम उठाकर किसे सजा दी? माँ हो या बाप, भाई हो या बहन, महीना दो महीना रोने के बाद सब शांत हो जाते हैं। हर साल की 20 जनवरी को उसके नाम पर हवन किया जायेगा और जिन्दगी अपनी रफ्तार से चलती रहेगी। आत्महत्या करने वाला सिर्फ अपने को सजा देता है। अपने सुनहरे भविष्य का अपने हाथों गला घोंटता है। इसके अलावा कहीं एक पत्ता भी नहीं हिलता।

जब भी बीस-बाइस साल के युवा लड़के-लड़कियाँ इस तरह का कदम उठाते हैं, क्या वे कभी यह नहीं सोचते कि अभी तो यह रास्ते की शुरूआत भर है, अंत नहीं। हो सकता है, भविष्य उनके लिए अपनी झोली में कुछ अच्छे दिन भी समेटे हो। यह जिन्दगी तो सिर्फ एकबार मिलती है, इसे अपनी शर्तों पर लड़कर जीने में ही शान है। मौत का रास्ता तो बहुत आसान है।[10]

इसी तरह जब सीढ़ियों से गिरने पर चारू अस्पताल पहुँचती है तो उसे रक्त की आवश्यकता है और उसका रक्त केवल सुजाता से मिलता है। सुजाता का रक्त पाकर उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है और वे सुजाता को न केवल माफ कर देती हैं वरन् अधीर से उसकी शादी भी करवाती हैं। यह फिल्म जब बनी थी, लोगों में असंतोष पनपना प्रारम्भ नहीं हुआ था। लोगों के मन में आशा थी कि सामाजिक न्याय मिलेगा। शायद इसलिए निर्देशक सुजाता से कहीं भी विद्रोह नहीं करवाता है। एक और बात है सुजाता को वे लोग प्यार करते थे और वह स्वावलम्बी नहीं थी; उन लोगों की आश्रित थी इसलिए भी विद्रोह का सवाल नहीं उठता है। वह विद्रोह न करके गाँधी की शरण में जाती है।

अधीर सुजाता से कहता है कि वह उपेंद्र बाबू की बेटी है और रहेगी।[11] अधीर उपेंद्र और उपेंद्र की बेटी रमा, सुजाता के पक्ष में हैं। पर परिवार की स्त्रियाँ उसके लिए सहृदय नहीं हैं। वे बराबर उसे याद दिलाती हैं कि वह उनमें से एक नहीं है। रमा नई पीढ़ी की है। उसकी बात अलग है। वह बचपन से सुजाता को अपनी बहन मानकर प्यार करती आई है। उसे सुजाता और अधीर के प्रेम का पता चलता है तो वह इसका बुरा नहीं मानती है, बल्कि खुश है। पुरानी पीढ़ी के विचारों में बाद में परिवर्तन आता है। यहाँ तक कि अधीर की दादी माँ भी बदलती हैं।

आज भी जब हम एक आदर्श 'औरत' की बात कहते हैं, तो पिछली सदी की औरत का उदाहरण देते हैं- जिसने एक से बढ़कर एक भारतरत्न और सपूत पैदा किए। वह जो एक आदर्श माँ थी, एक आदर्श पत्नी थी, जिसने अपने 'पति' और 'बच्चों' के सामने अपनी तकलीफ, यहाँ तक कि उसने अपने होने को भी नजरअंदाज किया। आज भी जब मैट्रीमोनियल कॉलम में एक अपने फॉरेन रिटर्न्ड भारतीय लड़का इश्तहार देता है कि उसे पढ़ी-लिखी, पर 'घरेलू कन्या' चाहिए, जो उसका घर और उसके परिवार यानी माँ-बाप और होने वाले बच्चों की बखूबी देखभाल कर सके तो हैरानी नहीं होती, क्योंकि आज भी पत्नी के रूप में बंधुआ मजदूर खरीदने वाले लड़कों के लिए आया रखना ज्यादा मंहगा साबित होगा। आज भी ऐसे लड़के थोक में मौजूद हैं जो अपनी पत्नी में खालिस सोहलवीं सदी का 'समर्पण' और 'त्याग' पाना चाहते हैं।

जिस तरह रूपकंवर के भीतर की औरत की चीखों को नजरअंदाज कर, जिंदा जलाकर हमने उसे सती के ऊँचे आसन पर बिठाया, उसी तरह पिछली सदी की औरत के सामाजिक भय के कारण निबाहते चले जाने की मजबूरी, सहते चले जाने की विवशता और 'नो ऑल्टरनेटिव' (विकल्पहीनता) की स्थिति को समर्पण और त्याग के महामंडित फ्रेम में जड़कर हमने एक आदर्श औरत की परिकल्पना गढ़ ली। इसी आदर्श औरत का सर्वप्रथम और सर्वोपरि गुण माना गया- कम बोलना, मीठा बोलना और जहाँ तक सम्भव हो न बोलना। हमारी माँ, दादी या नानी की इस चुप्पी ने हमारी पीढ़ी का सबसे ज्यादा नुकसान किया है। 'चुप्पी' को हम वफादारी का पर्याय मानते हैं। आज भी मुम्बई शहर में मध्यवर्ग, निम्न-मध्यवर्ग या छोटे कस्बों से आई लड़की या औरत विरासत में इस चुप्पी के ही संस्कार लेकर आती है।[12]

गीत हिन्दी फिल्मों का प्राण होते हैं, यही उसका प्राण हर भी लेते हैं। सुजाता के गीत उस पर थोपे हुए न होकर उसके अंग हैं और कहानी की भाव प्रवणता और संवेदनशीलता को निखार आगे बढ़ते हैं।

कई हिन्दी फिल्मों में लोरियाँ हैं। सुजाता की शुरूआती लोरी 'नन्हीं कली सोने चली'[13] का फिल्मांकन बहुत अर्थपूर्ण है। चारू अपनी बेटी को लोरी गाकर, थपकी देकर सुला रही है और दूसरे कमरे में उसी की बेटी की उम्र की एक और बच्ची बिस्तर पर अकेली पड़ी हुई है। बिना कहे दोनों लड़कियों के प्रति चारू का रूख स्पष्ट हो जाता है। मगर बच्ची कितनी मासूम है। वह अनजाने में अपने पास पहुँची उस लोरी के स्वर से खुद को सम्मोहित पाती है और धीरे-धीरे नींद की गोद

में चली जाती है। हाँ, चारू के मन की कोमलता का पता भी यह गीत देता है। वह अपनी लड़की को सुलाने के बाद सुजाता को भी कपड़ा ओढ़ाती है। उसे उसकी चिन्ता है, पर अपनी बेटी के बाद। अपनी बेटी उसकी प्राथमिकता है। आगे चलकर हम देखते हैं कि चारू के मन की यह दशा कई बार दिखती है। वह हृदय की बुरी नहीं है, पर अपनी बच्ची की कीमत पर सुजाता को नहीं अपना सकती है। उसमें ममता की कमी नहीं है। यदि ऐसा होता तो सुजाता कब की अनाथालय पहुँच चुकी होती।

गीता दत्त की सुरीली आवाज ने इस लोरी को मधुरता दी है। 'सुन मेरे बन्धु रे, सुन मेरे मितवा, सुन मेरे साथी रे'[13] गीत के बोल जितने सार्थक हैं, उसका फिल्मांकन उतने ही सुकोमल तरीके से हुआ है। नदी बह रही है। हल्की-हल्की लहरें किनारों को छू रही हैं। नदी के बहाव को अनुभव किया जा सकता है। किनारे पर नायक नायिका चुप बैठे हैं; क्या बोलें? कैसे बोलें? जैसे वे चुप हैं, उनका प्रेम वैसा ही चुपचुप है, पर उनके प्यार को वाणी देता है एक मांझी, जो दूर कहीं से गाता जा रहा है। नायिका पूरी फिल्म में चुप है फिर अपने प्रेम का यह संकोची लड़की कैसे इजहार करे? उसके मन की बात कहती है, एक मांझी। प्रेमिका का समूचा अस्तित्व अपने प्रेमी के लिए उत्सर्ग है, पर सबकुछ मौन में समर्पित है। मौन की अपनी मुखर भाषा में एस0डी0 बर्मन के संगीत ने इस मांझी को अमर कर दिया। इतना ही नहीं 'सुन मेरे बन्धु रे'[14] गीत की तान स्वयं एस0डी0 बर्मन ने दी है और उनकी जादू भरी आवाज का जादू यहाँ खूब चला है। तलत महमूद ने तो कमाल ही कर दिया। यह हिन्दी फिल्मों में गायक के रूप में एस0डी0 बर्मन का सफल प्रवेश था। आशा भोंसले की आवाज 'काली घटा' घिर-घिर आई है और नायिका के जिया की बात दर्शकों के दिल में उतार देती है। आशा ने ही जन्मदिन की मुबारकबाद का गीत 'तुम जियो हजारों साल, साल के दिन हों पचास हजार'[15] गाया है जबकि काफी समय तक यह गीता दत्त के नाम से बजता रहा। आशा तथा गीता दोनों की आवाज में गाया मस्त बेफ्रिक गीत 'बचपन के दिन भी क्या दिन थे'[16] बहुत दिन तक मन में गूंजता है और तो और बिमलराय ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के डांस ड्रामा 'चंडालिका' का भी इस फिल्म में बहुत खूबसूरत उपयोग किया है।

पूरी फिल्म में प्रतीकों-संकेतों का प्रभावशाली उपयोग किया गया है। जैसे नदी की मंद-मंद लहरें, हवा चलना, फूलों का खिलना। जब सुजाता की आशाएँ मर जाती हैं, उसका कमरे की लाइट का स्विच बन्द करना। शशिकला जो आज भी सक्रिय हैं, एक खलनायिका के रूप में जानी जाती हैं परन्तु सुजाता में उन्होंने एक बहुत प्यारी लड़की की बहुत स्वाभाविक भूमिका की है जो अपनी बहन को प्यार करती है। उसे दीदी कहती है और अपनी इस संकोची शर्मीली दीदी के लिए आड़े समय में उसकी आड़ बनकर खड़ी हो जाती है। वह अधीर की दीदी से सुजाता का बचाव करती है। अधीर, जिससे सब उसकी शादी की बात कर रहे हैं। रमा जानती है कि वह सुजाता से प्यार करता है और इस बात से वह दुःखी नहीं है, न ही उसे ईर्ष्या है वरन् वह उन दोनों के लिए खुश है। इस उदास फिल्म में रमा खुशनुमा हवा का झोंका है। वह ठीक वैसे ही व्यवहार करती है जैसा कि एक बहन, एक छोटी बहन बड़ी बहन के साथ करेगी। नटखट, प्यारी, बेफिक्र परन्तु जरूरत होने पर अपनी बहन के बचाव के लिए उठ खड़ी होने वाली।[17]

'अछूत कन्या' के ठीक 23 साल बाद अछूतोद्धार पर 'सुजाता' जैसी सशक्त फिल्म आई। 'अछूत कन्या' में नायिका को आत्म बलिदान करना पड़ता है जबकि 'सुजाता' सुखद अन्त के साथ समाप्त होती है। 'सुजाता' का सुखद अन्त हमें सोंचने के लिए प्रेरित करता है कि जातिभेद के बन्धन समय के साथ शिथिल हुए हैं जिससे हमारे फिल्मकार और कलाकारों का भी किंचित योगदान है, जिन्होंने अछूत होने के दर्द को इतनी गहरी संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया वह समाज को अपनी सोच बदलने के लिए प्रेरित कर सके।[18]

बिमलराय ने छुआछूत की इस फिल्म के माध्यम से लोगों के हृदय को परिवर्तित करने का काम किया है। प्रत्येक इन्सान को जीवन जीने का अधिकार है। वह भी स्वतंत्रतापूर्वक। छुआछूत तो एक बीमारी है। अपने अधिकारों के माध्यम से एवं जागरूकता से इसे कम किया जा सकता है। मानवाधिकारों का सरोकार करती यह फिल्म छुआछूत तथा अछूत प्रथा को अस्वीकार करती है।

सन्दर्भ सूची

[1]*मुख्य कलाकार : नूतन, सुनील दत्त, ललिता पवार,* निर्देशक : बिमलराय
[2]समीम खान- *सिनेमा में नारी,* ग्रन्थ अकादमी, न्यू दिल्ली (2014), पृष्ठ संख्या 51
[3]*मूल फिल्म सुजाता से*
[4]प्रहलाद अग्रवाल- *हिन्दी सिनेमा, आदि से अनन्त,* साहित्य भण्डार, इलाहाबाद (2014), पृष्ठ संख्या 64-65
[5]*मूल फिल्म सुजाता से*
[6]*मूल फिल्म सुजाता से*
[7]*मूल फिल्म सुजाता से*
[8]विजय अग्रवाल- *सिनेमा की संवेदना,* प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली (1995), पृष्ठ संख्या 43-44
[9]*मूल फिल्म सुजाता से*
[10]सुधा अरोड़ा- *आम औरत जिन्दा सवाल,* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली (2009), पृष्ठ संख्या 89
[11]*मूल फिल्म सुजाता से*
[12]सुधा अरोड़ा- *आम औरत जिन्दा सवाल,* सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली (2009), पृष्ठ संख्या 46
[13]*मूल फिल्म सुजाता से*
[14]*मूल फिल्म सुजाता से*
[15]*मूल फिल्म सुजाता से*
[16]*मूल फिल्म सुजाता से*
[17]प्रहलाद अग्रवाल- *हिन्दी सिनेमा, आदि से अनन्त,* साहित्य भण्डार, इलाहाबाद (2014), पृष्ठ संख्या 67
[18]समीम खान- *सिनेमा में नारी,* ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली (2014), पृष्ठ संख्या 52

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,77-82
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 जनवरी 2016

शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन : चुनौतियाँ एवं समस्याएँ

ज्योति गुप्ता*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शिक्षा के अधिकार का क्रियान्वयन : चुनौतियाँ एवं समस्याएँ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज्योति गुप्ता* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी भी समाज की समृद्धि और विकास उस समाज विशेष के सदस्यों की समृद्धि और विकास से जुड़ा होता है और व्यक्ति विशेष का विकास उसके आचरण, विचार और तृप्ति से होता है। किसी व्यक्ति के विकास और उसके वैचारिक उत्थान के लिए उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्राथमिक होती है, क्योंकि जब तक मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी नहीं होंगी तब तक वह सुरक्षा, भविष्य के लिए संसाधन संरक्षण, सामाजिक प्रतिष्ठा की आवश्यकताओं के बारे में नहीं सोच सकता। मनुष्य की मौलिक आवश्यकताओं में से भोजन, कपड़ा और आवास के साथ-साथ शिक्षा और अवसर को भी रखना आवश्यक है, क्योंकि इनकी पूर्ति के बिना किसी और आवश्यकता की पूर्ति नहीं की जा सकती। गाँधी जी का भी मानना है कि शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य का सर्वांगीण विकास सम्भव है। उनका कहना है कि शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के उच्चतम विकास से है अर्थात् शिक्षा मनुष्य के निर्माण की प्रक्रिया है, उसके ज्ञान एवं कला-कौशल में वृद्धि की प्रक्रिया है, उसके आचार, विचार और व्यवहार को उचित दिशा प्रदान करने की प्रक्रिया है।

यूनेस्को (2001) की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि 'विश्व के विकास की कार्य सूची में सभी विषयों जैसे निर्धनता उन्मूलन, स्वास्थ्य संरक्षण, तकनीकी जानकारी का आदान-प्रदान, पर्यावरण का रक्षण, लिंगभेद समापन, प्रजातांत्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करना तथा शासन-प्रशासन में सुधार, सबके लिए न्याय सुलभता, शिक्षा के माध्यम से इन सभी विषयों को एकात्मक भाव से देखा जाना चाहिए (UNESCO 2001); अर्थात् इसके द्वारा बहुआयामी, वैश्विक, राष्ट्रीय तथा सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। वहीं अमर्त्य सेन का भी मानना है कि आधारभूत शिक्षा सिर्फ कौशल विकास के प्रशिक्षण की व्यवस्था ही नहीं है, यह वैश्विक वैभिन्य तथा समृद्धि की स्वीकृति भी है तथा स्वतंत्रता, तार्किकता व मैत्रीभाव के महत्व की सराहना भी है (Sen 2003)।

* राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ. प्र.) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शिक्षा के अधिकार को अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में स्वीकार किया गया है। जोम्तीयन कान्फ्रेंस (थाइलैण्ड) 1990 द्वारा सबको शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल) की घोषणा के बाद लगातार इस पर दबाव रहा है कि सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। इसके पश्चात् वर्ष 2000 में डकर में वर्ल्ड एजुकेशन फोरम आयोजित हुआ और ई0एफ0ए0 (एजुकेशन फॉर ऑल) 2015 पर सहमति बनी जिसमें यह सुनिश्चित किया गया कि 2015 तक सभी बच्चों (खासकर लड़कियों) को अनिवार्य, निःशुल्क एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराई जाए।

भारत में वर्ष 2009 में बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अधिकार सम्बन्धी कानून बनाया गया तथा अप्रैल 2010 में इसे लागू किया गया। लेकिन भारत में शिक्षा के अधिकार की जरूरत लंबे समय से महसूस की जाती रही है। स्वतंत्रता से पूर्व ज्योतिबा फूले, बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी तथा भीमराव अम्बेडकर आदि ने अनिवार्य, निःशुल्क, सृजात्मक तथा सार्वभौमिक शिक्षा के लिए आयास किया। इसके पश्चात् भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15(4), अनुच्छेद 29(1), अनुच्छेद 29(2), अनुच्छेद 30(1), अनुच्छेद 45 द्वारा भी शिक्षा को आवश्यक मानते हुए इसे अनिवार्य व निःशुल्क बनाने का प्रयास किया गया है। 1964-66 में कोठारी आयोग की सिफारिशों में भी प्राथमिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 1986 में राष्ट्रीय नीति के अन्तर्गत अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी जिसके तहत ओ0बी0बी0 (आपरेशन ब्लैक बोर्ड) योजना का निर्माण किया गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 1994 में डी0पी0ई0पी0 (डिस्ट्रीक्ट आइमरी एजुकेशन प्रोग्राम) तथा नवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 'सर्व शिक्षा अभियान' चलाया गया। 2002 में छियासीवाँ संवैधानिक संशोधन द्वारा अनुच्छेद 21ए सम्मिलित कर शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया तथा कहा गया कि राज्य सरकार 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान कराएगी। इसी क्रम में शिक्षा को मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत सम्मिलित किए जाने वाली संवैधानिक व्यवस्था के रूप में बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 संसद द्वारा पारित किया गया तथा अप्रैल 2010 में इसे लागू किया गया। इसके तहत 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को गैर विभेदयुक्त, निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा (Government of India 2009, 3) के साथ-साथ जरूरी संसाधनों की उपलब्धता की गारंटी का भी प्रावधान है। कानून लागू होने के 5 वर्ष के अन्दर शिक्षकों की नियुक्ति को पूरा करने समेत आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता को क्रियान्वित करने को प्रतिबद्ध है। सभी सरकारी सहायता प्राप्त, गैर वित्त पोषित विद्यालय, विशिष्ट श्रेणी जैसे केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय आदि को भी निर्देशित किया गया है कि कक्षा-1 में प्रवेश के लिए 25 फीसदी सीट आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के आस-पड़ोस के बच्चों के लिए आरक्षित रखा जाएगा और उन्हें अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा मुहैया करायेगा। सभी सरकारी स्कूल में विद्यालय प्रबंध समिति (Government of India 2009, 7) होगी जिसके 75 प्रतिशत सदस्य बच्चे के माता-पिता या अभिभावक होंगे तथा इसका 50 प्रतिशत महिलाएँ होंगी। सभी राज्यों में शिक्षा अधिकार कानून के क्रियान्वयन की निगरानी की जिम्मेदारी राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग की होगी (Government of India 2009, 9-10)।

इस कानून के लागू होते ही उन करोड़ों बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के सपने को पूरा करने का मार्ग प्रशस्त हुआ जो अभी तक सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारणों से शिक्षा से वंचित रह गए थे। साथ ही भारत बुनियादी शिक्षा को संवैधानिक अधिकार बनाने वाला विश्व का 135वाँ देश भी बन गया। UNESCO की Education for All, Global Monitoring Report (2010) के अनुसार, बुनियादी शिक्षा को संवैधानिक अधिकार बनाने वाले देशों की सूची में चिली 15 वर्ष की अवधि के लिए निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते हुए सर्वोच्च स्थान पर है। यह 6 से 21 आयु वर्ग के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करता है। ब्रिटेन व न्यूजीलैण्ड में 11 वर्ष की अवधि के लिए, जापान, फिनलैण्ड, रूस, स्वीडेन में 9 वर्ष की अवधि के लिए तथा स्पेन, फ्रांस, नार्वे व कनाडा में 10 वर्षों की अवधि के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाती है जबकि भारत में 8 वर्ष की अवधि के लिए ही निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है। भारत को आयुवर्ग की सीमा में वृद्धि करने हेतु विचार करने की आवश्यकता है (The Hindu 2010)।

जब कभी किसी कानून की सफलता या असफलता की जाँच की जाती है तो इसके लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि इसके जमीनी प्रभाव का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए। 'शिक्षा का अधिकार' कानून ने अनेक वादे किए, किन्तु उन्हें पूरा करने में कई प्रकार की चुनौतियाँ एवं समस्याएँ हैं जिसमें लड़कियों में साक्षरता का निम्न स्तर, शिक्षकों की कमी, विद्यालयों की

कमी, बच्चों के विद्यालय छोड़ने की समस्या, वित्तीय चुनौतियाँ, आधारभूत संरचना की समस्या, बाल मजदूरों को स्कूल भेजने तथा सरकारी विद्यालयों की गुणवत्ता की समस्या आदि है। सर्वेक्षणों में पाया गया है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में मूलभूत सुविधाओं की अपार कमी है। ज्यादातर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में छात्र जमीन पर बैठते हैं, मिड डे मिल तैयार करने के लिए पृथक रसोईं, प्रधानाचार्य के लिए पृथक कार्यालय तथा लड़कियों के लिए पृथक शौचालय नहीं है। कई विद्यालयों में पेयजल की सुविधा तथा खेल का मैदान तक नहीं है। साथ ही शिक्षक-छात्र अनुपात 1:30 से अधिक है। वर्तमान परिदृश्य से यह आभास होता है कि इन विद्यालयों को आवश्यक आधारभूत संरचना प्रदान करना एक विशाल चुनौती है। अभिभावक अपने बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के लिए निजी विद्यालयों को वरीयता देते हैं क्योंकि निजी विद्यालय बेहतर आधारभूत संरचना, योग्य शिक्षक एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करते हैं तथा निजी विद्यालयों का वातावरण बच्चों में आत्मविश्वास पैदा करने में मदद करता है।

इस कानून में यह भी कहा गया है कि किसी भी छात्र को 14 वर्ष की उम्र तक अनुत्तीर्ण नहीं किया जायेगा। प्रथम (PRATHAM), एक समुदाय आधारित संगठन, द्वारा 'शिक्षा की स्थिति' पर प्रकाशित एक रिपोर्ट में यह सामने आया कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के कक्षा V के आधे से अधिक छात्र कक्षा II की पाठ्यपुस्तक नहीं पढ़ सकते (Uma 2013, 58)। इससे यह प्रदर्शित होता है कि इस कानून द्वारा गुणवत्ता के मुद्दे से समझौता किया जाता है। इससे कई गम्भीर सवाल उत्पन्न होते हैं, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। क्या कोई भी राज्य अपनी स्कूली और उच्च शिक्षा को दुरुस्त किए बिना लाखों नौजवानों को रोजगार के साधन दिला सकता है? जब बिना पढ़े डिग्रियाँ बटोरने वाले ग्रामीण व कस्बाई नौजवानों को नौकरियाँ नहीं मिलेंगी तो क्या वे अराजकता, अपराध व हिंसक गतिविधियों में संलग्न नहीं होंगे?

डी0आई0एस0ई0 (District Information System for Education) द्वारा प्रदत्त आँकड़ों के अनुसार, भारत में कुल प्राथमिक विद्यालयों में 80.51 प्रतिशत सरकार द्वारा संचालित तथा 19.49 प्रतिशत प्राइवेट विद्यालय हैं। वर्ष 2010 में कक्षा 1-5 में हुए कुल प्रवेशों में 72.13 प्रतिशत सरकारी विद्यालय तथा 27.87 निजी विद्यालय में हुए एवं कक्षा 6-8 में हुए कुल प्रवेशों में 63.10 प्रतिशत सरकारी विद्यालय तथा 36.90 प्रतिशत निजी विद्यालय में हुए। इस प्रकार कक्षा 1-8 में 69.61 प्रतिशत बच्चे सरकारी विद्यालय में तथा 30.38 प्रतिशत निजी विद्यालयों में प्रवेश लेते हैं (Ramakant Rai 2012)। हालांकि सरकारी विद्यालयों में बच्चों की संख्या अधिक है, लेकिन इनकी गिरती हुई लोकप्रियता और निजी विद्यालयों की वृद्धि देश की बिगड़ती शिक्षा व्यवस्था के लिए पूर्व चेतावनी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह परिस्थिति क्यों उत्पन्न हुई ? केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार, वर्ष 2010-2011 (Government of India 2011) में, पूरे देश में प्राथमिक विद्यालयों में 907,951 शिक्षकों में पद रिक्त हैं। मंत्रालय के अनुसार 45.76 प्रतिशत प्राइमरी विद्यालयों में शिक्षक-छात्र अनुपात 1:30 से अधिक है। इसी तरह 34.34 प्रतिशत उच्च प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक-छात्र अनुपात 1:35 से अधिक है। दूसरी चिन्ताजनक बात यह है कि लगभग 1,17,000 स्कूलों में सिर्फ एक ही शिक्षक है। इसके साथ-साथ अधिकतर राज्यों में लगभग 25 प्रतिशत शिक्षक पैरा-शिक्षक (शिक्षामित्र) हैं।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की उपलब्धता भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित है। भारत में जहाँ विश्व के 19 प्रतिशत बच्चे रहते हैं वहीं विश्व के एक तिहाई निरक्षर लोग भी भारत में ही हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारत में साक्षरता का स्तर नहीं बढ़ा है। यदि हम 2011 के आँकड़ो को देखें तो सात वर्ष के ऊपर के 74.04 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं। पुरुष साक्षरता स्तर 82.12 प्रतिशत तक पहुँच गया है जबकि स्त्री साक्षरता स्तर 65.46 प्रतिशत तक पहुँच गई है (Government of India 2011a)। इस प्रकार महिला साक्षरता स्तर पुरुष साक्षरता स्तर से काफी कम है। सम्भवतः महिलाओं में शिक्षा की कमी उनके शोषण की मूल वजह है तथा इसके लिए कई सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं भौगोलिक कारक जिम्मेदार हैं, जैसे- ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में लड़कियों के स्कूल छोड़ने की दर ज्यादा होती है। इन क्षेत्रों में लड़कियाँ अकसर अपने छोटे भाई-बहनों की दूसरी माँ की भूमिका निभाती हैं इसलिए उन्हें परिवारवालों द्वारा स्कूल जाने के लिए हतोत्साहित किया जाता है। बाल-विवाह तथा गरीबी की वजह से भी लड़कियों की शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किशोर लड़कियों को विद्यालयों में रजोधर्म के प्रबन्ध की सुविधा की भी आवश्यकता होती है जिसके लिए शुद्ध जल, स्वच्छता

एवं पृथक शौचालय की आवश्यकता होती है। यदि वे रजोधर्म के दौरान स्वच्छता एवं सफाई करने में अक्षम होती हैं तो उन्हें घर पर ही रुकना पड़ता है जिसकी वजह से उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और कई लड़कियाँ स्थायी तौर पर विद्यालय छोड़ देती हैं जिससे बाल-विवाह, शीघ्र मातृत्व, गरीबी तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को बढ़ावा मिलता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा लड़कियों को गुणात्मक जीवन जीने के लिए तैयार करती है जिससे उनके आर्थिक अवसर, आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा वे अपने सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों को समझने के योग्य बनती हैं।

इस कानून के तहत निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीट आर्थिक रुप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षित किए जाने का प्रावधान है लेकिन भिन्न आर्थिक एवं सामाजिक वर्ग के लोगों को एक मंच पर लाना एक कठिन कार्य है। कई शहरों में गरीब वर्ग के लोग अपने बच्चों को निजी विद्यालयों में न भेजकर सरकारी विद्यालय में भेजना पसन्द करते हैं क्योंकि कमजोर वर्ग का प्रमाणपत्र बनवाना उनके लिए कठिन कार्य है, साथ ही वे अपने बच्चों को इतने वृहद आर्थिक रुप से भिन्न वातावरण में रखने में असहज महसूस करते हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी महसूस होता है कि निजी विद्यालयों के शिक्षक एवं प्रधानाचार्य उनके बच्चों को अपने विद्यालय में दाखिला नहीं देना चाहते हैं। यदि दाखिला देने को बाध्य हो भी जाएं तो शिक्षकों एवं सह-पाठियों द्वारा उन्हें उचित स्नेह एवं सम्मान नहीं दिया जाता। इसलिए मानसिक दबाव एवं यंत्रणा से बचने के लिए गरीब वर्ग के लोग सरकारी विद्यालय को वरीयता देते हैं। शिक्षकों के लिए भी उन्हें एक साथ रखकर उनमें संतुलन बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

आज देश में कम से कम 26 करोड़ बच्चों की उम्र स्कूल जाने की है। यदि सरकारी आँकड़े देखे तो 18 करोड़ बच्चे ही स्कूल जाते हैं एवं 8 करोड़ बच्चे अभी भी स्कूल से बाहर हैं (Rai 2012)। हालांकि अप्रैल 2010 में शिक्षा का अधिकार लागू कर दिया गया तथा केन्द्र द्वारा सभी राज्यों को इसे लागू करने को कहा गया है लेकिन इसके प्रभाव को अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है। राज्यों द्वारा इस एक्ट को लागू करने के पीछे सबसे बड़ी बाधा कोष की कमी है।

केन्द्र ने शिक्षा का अधिकार कानून के कार्यान्वयन के लिए 231,000 करोड़ वार्षिक बजट का आकलन किया। Expenditure Finance Committee ने इसे केन्द्र-राज्य में 68:32 के अनुपात में जारी करने की सहमति दी। इसे मंत्रिमंडल द्वारा भी स्वीकृति प्रदान कर दी गई। सम्पूर्ण धनराशि में से 24000 करोड़ रूपये वित्त मंत्रालय तथा शेष 207,000 करोड़ केन्द्र एवं राज्य से आना तय हुआ। इससे राज्यों का अतिरिक्त भार से बचाव होगा (Rai 2012)।

तब क्यों राज्य कोष को एक बाधा के रूप में बताते हैं? यह देखा गया है कि उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा बिहार जैसे हिन्दी भाषी राज्य शिक्षा का अधिकार को कार्यान्वित करने के प्रति सबसे अधिक अनुत्साहित हैं, इस तथ्य के बावजूद कि 67 प्रतिशत विद्यालय से बाहर बच्चे इन्हीं राज्यों से हैं। वास्तव में उत्तर प्रदेश ने तो यहाँ तक दावा कर दिया है कि केन्द्र द्वारा दिया गया धन ही इस कानून को कार्यान्वित करने में उपयोग किया जायेगा। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उत्तर प्रदेश का इस एक्ट को लागू करने में किसी भी प्रकार का अंशदान करने का कोई इरादा नहीं है तथा यह पूरी तरह से केन्द्र पर निर्भर है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि आज देश में 18 करोड़ बच्चे विद्यालय में हैं। लेकिन सैकड़ों हजारों विद्यालय से बाहर बच्चे बाल मजदूरी एवं घरेलू कार्यों में संलग्न हैं। वास्तव में विद्यालय में पंजीकृत बच्चों में से 46 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने से पहले ही विद्यालय छोड़ देते हैं और उनमें अधिकतर लड़कियाँ होती हैं। इनके विद्यालय छोड़ने की वजह बाल मजदूरी एवं घरेलू कार्यों में संलग्नता के साथ-साथ आर्थिक संकट, जागरूकता का अभाव, शिक्षकों का व्यवहार, जातिगत भेदभाव तथा प्रोत्साहन में कमी आदि है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार, दुनिया भर में 16.8 करोड़ बाल श्रमिक हैं और सिर्फ भारत में ही 6 करोड़ बाल श्रमिक हैं।

इस कानून को लागू करने में एक अन्य समस्या विभिन्न एजेन्सियों के मध्य समन्वय की कमी का होना भी है। जब हम किसी बच्चे को सड़क के किनारे, रेस्टूरेन्ट, लोगों को घरों में या चाय की दुकान पर काम करते हुए देखते हैं तो ऐसा लगता है कि हम इन बच्चों को उठायें और विद्यालय में डाल दें। लेकिन यह जितना सरल जान पड़ता है उतना है नहीं। क्योंकि बच्चों को मजदूरी करने से रोकना तथा उसके मालिक को सजा देना श्रम मंत्रालय तथा पुलिस का कार्य है। बच्चों को विद्यालय भेजने तथा उन्हें शिक्षा दिलाने का उत्तरदायित्व मानव संसाधन विकास मंत्रालय का है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार के क्रियान्वयन

की निगरानी करने का उत्तरदायित्व सभी राज्यों के बाल अधिकार संरक्षण आयोग का है जो महिला एवं बाल विकास विभाग के अन्तर्गत आता है। सभी बच्चों को शिक्षा दिलाने के वृहद उधेश्य के लिए इन सभी एजेन्सियों के मध्य समन्वय होना आवश्यक है।

इस प्रकार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देश के हर बच्चे तक पहुँचाने के लिए राज्यों को शिक्षकों की भर्ती के लिए कदम उठाना चाहिए तथा शिक्षा मित्रों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। सरकारी विद्यालयों को इस प्रकार सुसज्जित करना चाहिए कि छात्रों के पास निजी विद्यालयों में जाने का एकमात्र विकल्प न हो। विद्यालय प्रबंधन समिति को सामुदायिक स्तर पर पंचायतों में जागरूकता फैलाने की जिम्मेदारी स्वयं अपने ऊपर लेनी चाहिए, जिससे लोग अपने बच्चे को विद्यालय में भेजने के लिए प्रोत्साहित हों। शिक्षा का अधिकार के प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय, श्रम मंत्रालय, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, पंचायत राज मंत्रालय तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय को एक साथ मिलकर काम करना चाहिए। एक Umbrella Body होनी चाहिए जिसमें ये सभी अभिकरण एक सामान्य उधेश्य के लिए मिलकर कार्य करें। हमारी स्कूली शिक्षा को भ्रष्ट नौकरशाही व राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करके ऐसे स्वायत्तशासी निकायों को सौंपने की जरूरत है, जो समर्पित शिक्षाविदों द्वारा संचालित किए जाएँ। स्कूली शिक्षा में गुणात्मक सुधार सिर्फ सांगठनिक परिवर्तनों से संभव नहीं होगा। हिंदी भाषी राज्यों में स्कूली शिक्षा में भारी वित्तीय निवेश की जरूरत है, ताकि जरूरी बुनियादी आधुनिक सुविधाएँ हर स्कूल को उपलब्ध हों। सूचना प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रयोग द्वारा पठन-पाठन की गुणवत्ता में पर्याप्त सुधार किए जा सकते हैं। शिक्षकों व विद्यार्थियों को लैपटॉप, टेबलेट देकर उस पारंपरिक शिक्षण प्रणाली को तिलांजलि दी जा सकती है, जो बच्चों को रट्टू तोता बनाती है। सूचना प्रौद्योगिकी महंगी जरूर है, किन्तु इन राज्यों के बच्चों को अन्य राज्यों के बच्चों के समकक्ष बनाने के लिए यह जरूरी है।

यद्यपि जमीनी स्तर पर इस क्षेत्र में कुछ चुनौतियाँ दिखाई देती हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी उदाहरण देखने को मिलते है जिसमें बच्चे जिनका कभी नामांकन नहीं हुआ था या ड्राप आउट थे, विभिन्न नागर समाज संगठनों, समुदाय आधारित संगठनों, शिक्षा आधारित संगठनों एवं संसदीय फोरम आदि की संजीदा प्रयासों से पुनः शिक्षा से जुड़ गए। इनके सफल प्रयासों से बच्चों का स्कूल में नामांकन भी बढ़ा है। अधिकतर बच्चों को वापस स्कूल से जोड़नें में अभिभावकों के बीच शिक्षा अधिकार कानून की जानकारी और जागरूकता का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। अनिवार्य शिक्षा के तहत 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के निःशुल्क नामांकन के लिए शासन की ओर से ''स्कूल चलो अभियान'' चलाया जाता है। इसके तहत प्राइमरी के अध्यापक व शिक्षा मित्र घर-घर जाकर स्कूल न जाने वाले बच्चों के अभिभावकों से मिलते है तथा उन्हें शिक्षा के अधिकार कानून के तहत चलाई जा रही योजनाओं जैसे- मुफ्त शिक्षा एवं आवश्यक सामग्री, छात्रवृत्ति, मिड डे मिल आदि के विषय में जानकारी प्रदान करते है जिससे बच्चों का स्कूल मे नामांकन बढ़ा है। भारत में ''नेशनल कोएलीशन फॉर एजूकेशन'' शिक्षा के अधिकार पर कार्यरत विभिन्न संघों का एक समन्वय है जिसमें शिक्षा के अधिकार पर संसदीय फोरम, अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ, अखिल भारतीय शिक्षक संगठनों का फोरम, अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षक संघ, आल इंडिया एसोसिएशन फॉर क्रिस्चियन हायर एजूकेशन, वर्ल्ड विजन इंडिया एवं पीपल्स कैम्पेन फॉर कॉमन स्कूल सिस्टम आदि है। यह नागरिक संगठनों तथा विभिन्न हितभागियों की साझेदारी के जरिए शिक्षा के अधिकार की पैरोकारी करता है जो सभी को समान रूप से बाल मैत्री परिवेश में बिना किसी भेदभाव के प्राप्त करने का न्यायपूर्ण हक है। लेकिन अभी भी इस दिशा में विशेष प्रयास करने की आवश्यकता है ताकि सबके लिए शिक्षा के लक्ष्य को समयबद्ध तरीके से प्राप्त किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

Government of India (2009); RTE Act. New Delhi: Ministry of Law and Justice. http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/rte.pdf (Accessed 24 July 2014)

Government of India (2011); Annual Report 2010-11. New Delhi: Department of school Education and literacy, Ministry of Human Resource Development.

Government of India (2011a); Census of India 2011. New Delhi: Ministry of Home Affairs.

KUMAR, VIJAY (2013); *Right to Education Act 2009: Its Implementation as to Social Development in India.* Delhi: Akansha Publishing House.

MONDAL, AJIT (2012); *Right to Education.* New Delhi: A P H Publishing Corporation.

MALHOTRA, R. (2011); *Right to Education: Free and Compulsory Education for All.* New Delhi: D P S Publishing House.

NARAYANA, P. S. (2012*); The Right of Children of Free and Compulsory Education Act 2009 along with Rules and Allied Laws*. Mumbai: M & J Servises.

RAI, RAMAKANT (2012); '*Challenges in Implementing the RTE Act*.' http://infochangeindia.org/education/backgrounders/challenges-in-implementing-the-rte-act.html (Accessed 2 June 2014).

RAY, CHANDANA (2013); *Right to Education*. New Delhi: Luxmi Publishers.

SEN, AMARTYA (2003); *'The Importanct of Basic Education.'* Commonwealth, Education Conference, Edinburgh, October 28.

SPRING, JOEL (2014); *Globalization and Educational Rights: An Intercivilizational Analysis (Sociocultural, Political and Historical Studies in Education)*. London: Routledge.

SPRING, JOEL (2000); *The Universal Right to Education: Justification, Definition and Guidelines (Sociocultural, Political and Historical Studies in Education)*. London: Routledge.

SHARMA, MOON CHAND (2013); *Right to Education: Imperative for Progress.* Delhi: Universal Law Publishing.

The Hindu (2010); *'India joins list of 135 countries in making education a right.'* April 2.

Times of India (2012); 'Shortage of Teachers Cripples Right to Education.' April 10.

TYAGI, B. R. (2012); *Right to Education: Justification, Definition and Guidelines.* Delhi: D K Publishers Distributors.

UNESCO. (2001); 'Monitoring Report on Education for All.' http://www.unesco.org/education/efa/monitoring/monitoring_rep_contents.shtml (Accessed 2 April 2014).

UMA (2013); *'Right to Education (RTE): A Critical Appraisal.'* IOSR Journal of Humanities and Social Science (JHSS) 6(4): 55-60.

YADAV, R. P. (2013); *Right to Education.* Delhi: D K Publishers Distributors.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,83-90
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 फरवरी 2016

भारत में उच्चशिक्षा की दशा एवं दिशा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रदीप कुमार भिमटे*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में उच्चशिक्षा की दशा एवं दिशा का विश्लेषणात्मक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रदीप कुमार भिमटे* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। लोकतंत्र की सफलता के लिए राष्ट्र के नागरिकों को शिक्षित ही नहीं उच्च शिक्षित होना भी आवश्यक है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक उन्नति के लिए शिक्षा व्यवस्था का अहम योगदान है। जिस प्रकार अच्छी शिक्षा व्यवस्था राष्ट्र के लिए आधारभूत स्तम्भ होती है उसी प्रकार उच्च-शिक्षा से भी उस राष्ट्र की प्रगति का मापदण्ड तय होता है। उच्च शिक्षा जीवन के प्रत्येक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं; एवं व्यक्ति के अच्छे जीवन जीने के लिऐ उसका मार्ग प्रशस्त करती हैं। उच्च शिक्षा की स्थिति उसके शिक्षकों, प्राध्यापकों एवं बुद्धिजीवी वर्ग के उपर बहुत कुछ निर्भर करती हैं यदि बुद्धिजीवी वर्ग समाज एवं देश के बारे में सदैव सकारात्मक चिन्तन के साथ कार्य करेगा तो निश्चित ही उस राष्ट्र की प्रगति होती रहेगी एवं राष्ट्र नित नए ऊँचाइयों को प्राप्त करते रहेगा। इस संदर्भ में डॉ. बाबा साहेब भीमराव आम्बेडकर का कथन आज भी और अधिक प्रासंगिक हैं। जिसमें उन्होंने कहा था, ''बुद्धिजीवी वर्ग वह हैं जो दूरदर्शी होता हैं, सलाह दे सकता हैं और नेतृत्व दान कर सकता हैं। किसी भी देश की अधिकांश जनता क्रियाशील एवं विचारशील जीवन व्यतीत नहीं करती हैं ऐसे लोग प्रायः बुद्धिजीवी वर्ग का अनुकरण और अनुगमन करते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि किसी भी देश का सम्पूर्ण भविष्य उसके बुद्धिजीवी वर्ग पर निर्भर होता है। यदि बुद्धिजीवी वर्ग ईमानदार, स्वतन्त्र और निष्पक्ष हैं तो उस पर यह भरोसा किया जा सकता हैं; कि वह संकट की घड़ी में वह पहल करेगा और उचित नेतृत्व करेगा। यह ठीक हैं कि प्रज्ञा अपने आप में कोई गुण नहीं हैं। यह केवल साधन हैं और साधन का प्रयोग उस लक्ष्य पर निर्भर हैं, जिसे एक बुद्धिमान व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता हैं। बुद्धिमान व्यक्ति भला हो सकता हैं, लेकिन साथ ही वह दुष्ट भी हो सकता हैं। उसी प्रकार बुद्धिजीवी वर्ग उच्च विचारो वाले व्यक्तियों

* सहा. प्राध्यापक, राजनीतिविज्ञान विभाग, स्वामी विवेकानन्द शासकीय महाविद्यालय (लखनादौन) सिवनी (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का एक दल हो सकता है, जो सहायता करने के लिए तैयार रहता हैं, और पदभ्रष्ट लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए तैयार रहता हैं। (डॉ. बी0 आर0 अम्बेडकर, जाति प्रथा उन्मूलन से)

वे आगे कहते है कि शिक्षा के प्रसार में जातिगत, भौगोलिक व आर्थिक असमानताए बाधक ना बन सके इसके लिये संविधान व नीति निर्देशक तत्वों में ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए। भारत में शिक्षा का अधिकार का क्रियान्वयन भी इसी का परिणाम हैं उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य लोगों में नैतिकता एवं जनकल्याण की भावना विकसित करना होना चाहिए शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जो बौद्धिक विकास के साथ-साथ चरित्र निर्माण में योगदान देती हैं चरित्र निर्माण के सम्बंध में उनका मत था कि विधा, प्रज्ञा, शील, करूणा व मित्रता का समावेश होने से श्रेष्ठ चरित्र निर्माण होगा चरित्र निर्माण का दायित्व शिक्षक का हैं। श्रेष्ठ अध्यापक ही अध्ययन अध्यापन के साथ अपनी इस भूमिका का निर्वाह कर सकता हैं। शिक्षकों के सम्बंध में वे कहते थे अध्ययन और अध्यापन के साथ-साथ अनुसंधान भी इतना ही प्रासांगिक हैं। विद्वान होने के साथ-साथ विषय को रोचक बनाने की कला व उत्साह भी शिक्षक में होना चाहिए। भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना के बाद यह आशा की जा रही थी कि उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में हम आजादी के पश्चात एक नई पहचान बनाएगे एवं नई ऊँचाइयों को प्राप्त करेंगे। इसी के तहत अभी तक तीन आयोग तथा कई समितियॉ नियुक्त हो चुकी है; फिर भी आज हम दुनिया 200 के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की सूची में भारत का एक भी विश्वविद्यालय या संस्थान अपनी जगह नहीं बना पाया हैं। जबकि विश्वविद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि काफी हुई हैं। किन्तु गुणात्मक विकास में हम काफी पीछे रह गये हैं इसका कारण प्रारंभ से ही उच्च शिक्षा के प्रति उदासीन रवैया तथा अनियोजित विकास रहा हैं। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिरते गया एवं छात्रों में ज्ञानार्जन की अभिलाषा नष्ट होते गई और आज विश्वविद्यालय केवल उपाधि प्रदान करने वाले संस्थान बन गए हैं। विश्वविद्यालयों की सोद्देश्य शिक्षा ही राष्ट्र का वैभव एवं उसकी रीढ़ है। तथा उनके निवासियों की बौद्धिक, आध्यात्मिक श्रेष्ठता की निर्धारक शाक्ति हैं। सन् 1947 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में दीक्षान्त भाषण देते हुए जवाहरलाल नेहरू ने विश्वविद्यालय के मूल उद्देश्यों राष्ट्र जीवन में उसकी भूमिका को रेखांकित किया हैं। विश्वविद्यालय का आस्तिव मानववाद के लिए, सहिष्णुता और विवेक के लिये विचारगत साहस तथा सत्य की खोज के लिए होता हैं। उसका लक्ष्य यह होता हैं कि मानव जाति और भी उच्चतर उदेदश्यों की ओर कदम बढ़ाये राष्ट्र और जनता का श्रेय इसी में है, कि विश्वविद्यालय अपने आस्तित्व का समुचित निर्वाह करते रहे।''

भारत की शैक्षिक स्थिति

(i) हिन्दू धर्म का शिक्षा के सम्बंध में दृष्टिकोण; पहले भारत में सार्वजनिक स्वरूप की शिक्षा नहीं थी। शिक्षा का सम्बंध धर्म से जोड़ा गया था। भारतीय समाज पर हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था का विशेष प्रभाव था। आज भी वर्ण एवं जाति व्यवस्था का भारतीय समाज पर बहुत बड़ा प्रभाव दिखाई देता है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार ब्राम्हाण वर्ण श्रेष्ठ माना गया था। हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था ने अध्ययन एवं अध्यापन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही दिया हुआ था। ब्राह्मण के अलावा अन्य किसी को भी अध्ययन-अध्यापन का अधिकार नहीं था धार्मिक शिक्षा केवल ब्राह्मण ही पा सकते थे। वेद, उपनिषद आदि ग्रथों का अध्ययन करने का अधिकार भी केवल ब्राह्मण को ही विशेष महत्वपूर्ण बात यह हैं कि हिन्दू ग्रन्थ संस्कृत भाषा में होते थे संस्कृत भाषा को देवभाषा माना जाता था। संस्कृत आम लोगों की भाषा नहीं थी इसलिए संस्कृत भाषा अन्य वर्ण एवं जाति के लोगों को नहीं आती थी। अन्य लोगों को संस्कृत भाषा सीखने का अधिकार नहीं था। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में ब्राह्मण लोगों का ही लगातार वर्चस्व एवं एकाधिकार रहा क्षत्रिय तथा वैश्य को तो शिक्षा का अधिकार था लेकिन इन वर्ण के लोगों को भी केवल व्यवहारिक शिक्षा दी जाती थी शूद्र अतिशूद्र तथा नारी को किसी भी प्रकार की शिक्षा लेने का अधिकार नहीं था। उनकी शिक्षा पर धार्मिक प्रतिबंध लगे थे अतः बहुसख्यक लोगों को शिक्षा से वंचित रखा गया था शूद्र, अतिशूद्र तथा नारी सैकड़ों सालों तक अज्ञानता के गर्त में रही एवं किसी भी प्रकार का ज्ञान अर्जित नहीं कर पाए, जब बहुसंख्यक समाज ही ज्ञान के दीपक से दूर रहेगा तब उस समाज का कैसे सम्पूर्ण विकास हो सकता हैं। केवल कुछ मुट्ठी भर लोगों को शिक्षा का अधिकार होने से समाज का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता ऐसे ही व्यवस्था से गैर ब्राह्मण लोगों का अत्यधिक शोषण होते रहा।

(ii) बुद्ध की शिक्षा; गौतम बुद्ध के विचारों के कारण ईसा पूर्व छठी सदी से शिक्षा का अधिकार सभी को मिला था जब तक बुद्ध धम्म भारत में था, तब तक सभी को शिक्षा लेने का अधिकार था, क्योंकि वर्ण तथा जाति-व्यवस्था का बुद्ध ने विरोध किया था सभी मनुष्य समान है, यह महत्वपूर्ण विचार बुद्ध धम्म के कारण भारतीय समाज में व्याप्त था। भारत में शिक्षा का विकास बौद्धकाल में ही हुआ तक्षशिला, नालंदा आदि विश्वविद्यालयों का बौद्धकाल में ही उदय हुआ आज भी इन विश्वविद्यालयों के अवशेष देखने को मिलते हैं। भारत से बुद्ध धम्म समाप्त होने के पश्चात कालांतर सभी विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया बौद्ध धम्म पतन के पश्चात फिर से शिक्षा केवल ब्राह्मणों तक ही सीमित हो गई थी।

(iii) ब्रिटिश ईस्ट इण्ड़िया कंपनी के 1813 के इस कानून के द्वारा सभी के लिए शिक्षा के द्वार खुल गए तथा शिक्षा के आगन में नए प्रभात का उदय हुआ। नए विचार तथा सुधारों के अनुकूल शिक्षा का प्रारंभ हुआ इसके पश्चात मैकाले ने भारतीय शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करके 7 फरवरी 1835 को सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विवरण पात्र गवर्नर जनरल की कौंसिल के सामने रखा। मैकाले ने भारतीय शिक्षा पद्धति तथा भारतीय साहित्य की आलोचना की मैकाले का कहना था कि, ''भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य का मूल्य एक अच्छे यूरोपियन ग्रन्थालय की पुस्तक की एक आलमारी जितना हैं।'' उन्होंने अपनी शिक्षा नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था कि हमें भारत में एक ऐसा वर्ग बनाना चाहिए जो कि खून तथा वर्ण से भारतीय हो लेकिन विचार, नैतिक आदर्श तथा बुद्धि से वह अंग्रेजी होगा।''

इसके पश्चात् लार्ड कर्जन ने भारत में शिक्षा सुधार कार्य को आगे बढ़ाया भारतीय विश्वविद्यालय आयोग 1902 भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम 1904, शिक्षा नीति सम्बधी सरकारी प्रस्ताव 1904।

(iv) आजादी के बाद शैक्षिक स्थिति; स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने इस देश की शिक्षा व्यवस्था को सुनियोजित और सुसंगठित करने का दृढ़ निश्चिय किया। उसने यह कार्य विश्वविद्यालय शिक्षा से आरम्भ किया इसका प्रमुख कारण यह था कि आजादी के युग में प्रवेश करने के समय से भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या में निरन्तर वृध्दि हो रही थी, किन्तु उनमें शिक्षा का स्तर निम्न होने के कारण इस देश के नागरिकों में व्यापक असन्तोष था। इसके अलावा ये विश्वविद्यालय देश की नवीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ थे। उच्चशिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने एवं दोषों को दूर करने के विचार से भारत सरकार ने शिक्षा के विचार से भारत सरकार ने शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता का अनुभव किया भारत सरकार ने 4 नवम्वर सन 1948 को विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की इसके अध्यक्ष डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन थे। उनके नाम से इस आयोग को राधाकृष्णन कमीशन भी कहा जाता हैं। इसके उद्देश्य थे भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा के विषय में रिपोर्ट देना और उन सुधारों एवं विस्तारों के सम्बध में सुझाव प्रस्तुत करना जो देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के लिये वांछनीय हो 23 सितम्वर 1952 को मुदालियर कमीशन शिक्षा आयोग 1964-66), राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1979 एवं 1986 तथा संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992। भारत में प्रशासन की दृष्टि से दो प्रकार के विश्वविद्यालय देखने को मिलते हैं। जैसे :

1 केन्द्रीय विश्वविद्यालय; केन्द्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र शासित हैं और इनके व्यय एवं प्रबंध का सम्पूर्ण भार केन्द्रीय सरकार पर होता हैं। इस प्रकार के विश्वविद्यालय हैं- दिल्ली विश्वविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, डॉ. हरिसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर आदि हैं। वर्तमान में देश में 14.12.2015 तक 46 केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं।

2. राज्य विश्वविद्यालय; ये विश्वविद्यालय, राज्य शासित इनके व्यय एवं प्रबंध का सम्पूर्ण भार राज्य सरकारों पर हैं। वर्तमान में सम्पूर्ण देश में 342 राज्य विश्वविद्यालय इसके अलावा डीम्ड विश्वविद्यालयों की संख्या 125 हैं तथा निजी विश्वविद्यालयों की संख्या 227 हैं।

उच्च शिक्षा प्रणाली का विकास महत्वपूर्ण तथ्य

स्वतन्त्रता के समय देश में केवल 20 विश्वविद्यालय थे एवं महाविद्यालय 500 थे तथा उच्चतर शिक्षा पध्दति में 2.1 लाख छात्रों एवं अध्यापकों की काफी कम संख्या थी परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन सभी की संख्याओं में काफी वृद्धि हुई हैं। अब यह एक सुस्थापित तथ्य हैं कि विश्वविद्यालयों की संख्या में 40 गुणा वृद्धि हुई हैं। महाविद्यालयों की संख्या में 82 गुणा

वृद्धि हुई हैं। और उच्चतर शिक्षा की औपचारिक पद्धति में छात्रों की भर्ती 127 गुणा बढी है। विश्वविद्यालयों अथवा विशेषरूप से महाविद्यालयों जैसे उच्चतर शिक्षा संस्थानों के विकास के बिना छात्र नामांकन में वृद्धि हुई है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 2012 तक सकल नामांकन अनुपात (जी.ई.आर.) के निर्धारित 15 प्रतिशत के लक्ष्य को लगभग प्राप्त कर लिया गया हैं। बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2017) के अंत तक सकल नामांकन अनुपात (जी.ई.आर.) का लक्ष्य 30 प्रतिशत निर्धारित किया गया है।

दिनांक 31.03.2015 की स्थिति के अनुसार विश्वविद्यालय की संख्या 711 हो गयी हैं। (जिसमें 46 केन्द्रीय विश्वविद्यालय 329 राज्य विश्वविद्यालय 205 राज्य निजी विश्वविद्यालय 128 सम विश्वविद्यालय राज्य विधान के तहत स्थापित 3 संस्थान और उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र में 40760 महाविद्यालय स्थापित हुए हैं। जहाँ तक राज्यों में स्थापित विश्वविद्यालय का सम्बंध है अब तक 68 विश्वविद्यालय के साथ राजस्थान सूची में सबसे ऊपर हैं। उसके बाद उतरप्रदेश 64 तत्पश्चात तमिलनाडु 52। सूची से यह पता चलता हैं। कि राज्यों में विश्वविद्यालयों का असमान वितरण है। वर्ष 2014-15 के दौरान विभिन्न राज्यों में कुल मिलाकर 1147 नए महाविद्यालय स्थापित किए गए जिन्हें मिलाकर महाविद्यालयों की संख्या वर्ष 2013-14 के 39613 से बढ़कर वर्ष 2014-15 में 40760 हो गए।

तालिका 1 भारत में उच्चशिक्षा की स्थिति

क्रं.	विवरण	2011-12	2012-13	2013-14	2014-15
1	विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय	57435539	62837204	66639671	71140760
2	विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सकल नामांकन(लाख में)	203.27	215.01	237.15	265.00

तालिका 2 वित्तीय वर्ष 2012-13 के लिए बजट और अनुदान सहायता की प्राप्ति निम्नवत है :

क्रं.	बजट शीर्ष	योजनान्तर्गत आंवटन		गैर योजनांतर्गत	
		ब.अनु.	सं.अनु	व.अनु.	संख्या अनु.
1	सामान्य	6351.15	5639.19	4794.17	4722.96
	कुल	6351.15	5639.19	4794.17	4722.96

तालिका 3 वित्तीय वर्ष 2014-15 के लिए बजट

क्रं.	बजट शीर्ष	योजनान्तर्गत आंवटन		गैर योजनांतर्गत	
		ब.अनु.	सं.अनु	व.अनु.	संख्या अनु.
1	सामान्य	3905.00	3779.61	5461.26	5666.94
	कुल	3905.00	3779.61	5461.26	5666.94

शिक्षा सत्र 2014-15 के दौरान समस्त पाठ्यक्रमों और नियमित विषय के स्तरों पर कुल नामांकन दर 265.85 लाख थी। जिसमें 124.76 लाख छात्राएं थी, जो कि समस्त नामांकन का 46.93 प्रतिशत था। उत्तरप्रदेश में छात्रों का सर्वाधिक नामांकन (43.97 लाख) रहा जिसके बाद महाराष्ट्र (28.60) लाख, तमिलनाडू (24.01 लाख) एवं राजस्थान (16.24 लाख) आदि रहा। विभिन्न स्तरों पर छात्र नामांकन प्रतिशत के संदर्भ स्नातक पूर्व (88.26 प्रतिशत), स्नातकोत्तर (11.09 प्रतिशत), शोध (0.67 प्रतिशत), डिप्लोमा प्रमाणपत्र (1.57 प्रतिशत) तथा समेकित रूप से (0.41 प्रतिशत) रहा। छात्रों के कुल नामांकन (265.85 लाख) में से 37.41 प्रतिशत छात्र कला वाणिज्य/ प्रबंधन में थे। इस प्रकार केवल तीनों संकाय में 71 प्रतिशत नामांकन था जबकि शेष 29.00 प्रतिशत नामांकन पेशेवर संकायों में रहा। यह अनियमित वितरण इंगित करता है कि एक नीतिगत परिवर्तन की आवश्कता है। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में शिक्षण संकायों की संख्या पिछले वर्ष की 10. 49 लाख की तुलना में से बढ़कर 12.61 लाख हो गई। 12.61 लाख शिक्षकों में से 84.66 प्रतिशत शिक्षक महाविद्यालयों में थे, और शेष 15.34 प्रतिशत विश्वविद्यालयों में थे। वर्ष 2014-15 के दौरान 22849 पी.एच.डी. शोध उपाधियाँ प्रदान की गई। जिसमें सबसे अधिक कला संकाय में 7480 पी.एच.डी. उपलब्धियां तत्पश्चात् विज्ञान संकाय में 7018 पी.एच.डी. उपलब्धियां प्रदान की गई। इन दोनों संकायों में प्रदत्त उपाधियां कुल उपाधियों का 63.45 प्रतिशत रही।

तालिका 4 *छात्र नामांकन;* विभिन्न पाठ्यक्रमों के लिए सभी स्तरों पर पिछले वर्ष के 237.65 लाख के असंशोधित आंकड़ों की तुलना में 265.85 लाख (अंतिम) छात्रों का नामांकन हुआ है। इस प्रकार इसमें 11.87 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई है। पिछले दशक 2000-01 से लेकर 2014-15 के दौरान भारत में छात्रों के नामांकन दर में वृद्धि हुई जो निम्नानुसार है :

वर्ष	कुल नामांकन	पिछले वर्ष की तुलना में वृद्धि	प्रतिशत
2000-01	8399443	348836	4.3
2001-02	8964680	565237	6.7
2002-03	9516773	552093	6.2
2003-04	10201981	685208	7.2
2004-05	11038543	836562	8.2
2005-06	12043050	1004507	9.1
2006-07	13163054	1120004	9.3
2007-08	14400381	1237327	9.4
2008-09	15768417	1368036	9.5
2009-10	17243352	1474935	9.4
2010-11	18670050	1426698	8.3
2011-12	20327478	1657478	8.9
2012-13	22302938	1975460	9.7
2013-14	23764960	1462022	6.6
2014-15	26585437	2920477	11.87

स्रोतः विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की वार्षिक रिपोर्ट 2014-15

उच्च शिक्षा प्रणाली की कमजोरियाँ

भारत की उच्चशिक्षा प्रणाली निम्नलिखित कमियों के दौर से गुजर रही है :

1. *छात्र संख्या में बढ़ोत्तरी;* शिक्षा स्तर में गिरावट का कारण यह भी हैं कि छात्र संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी हो रही हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उच्च शिक्षण संस्थाओं में छात्र संख्या तीव्र गति से बढ़ी हैं किन्तु उस अनुपात में शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार नहीं हो पाया हैं। इससे शिक्षा का स्तर गिरा हैं। इस संबध में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने लिखा हैं- ''यदि शिक्षा की सुविधा का विस्तार किए बिना हमारे विश्वविद्यालयों में छात्र का प्रवेश जारी रहेगा, तो शैक्षिक स्तरों के लिए अधिक निम्न होने का भरी खतरा है।
2. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के उच्च शिक्षा संस्थानों की गुणवता सुविधाओं एवं संसाधनों में भरी असमानता है।''
3. विकसित राज्यों एवं पिछड़े राज्यों के शिक्षा संस्था में सुविधाओं और संसाधनों में भारी अन्तर है।
4. *छात्र अनुशासनहीनता;* उच्च शिक्षा की सम्भवतः छात्र अनुशासनहीनता सबसे बड़ी समस्या है इससे सम्बधित अनेक मामले जैसे अकारण हड़ताले, अनावश्यक प्रदर्शन, अनशन, सार्वजनिक स्थानों में मारपीट तोड़फोड़ आदि इसलिए भारतीय विश्वविद्यालय प्रशासन ने यह मत प्रकट किया है'' उच्च शिक्षा के केन्द्रों में अनुशासन बनाए रखने की समस्या प्रतिदिन अधिक गम्भीर होती जा रही है।''
5. *निर्देशन एवं परामर्श का अभाव;* उच्च शिक्षण संस्थाओं में निर्देश एवं परामर्श सेवाओं का प्रायः अभाव होता है जिसके कारण छात्रों को अपने विषय चयन से लेकर जीवन में आगे कैसे बढ़ा जाये को लेकर गंभीर संकट बना रहता हैं। जिससे वह संकुचित एवं दबाव महसूस करता है। कभी-कभी वह अनुभवहीन लोगों से भी सलाह लेकर विषय चयन कर लेता हैं। जिसके कारण उसे असफलता का सामना करना पड़ता है।
6. *दोषपूर्ण पाठ्यक्रम;* विश्वविद्यालयों को बदले समय के हिसाब से पाठ्यक्रमों बदलाव करना चाहिए क्योंकि आज भी वही पाठ्यक्रम पढ़ने को मिलता हैं जो हमारी पिछली पीढ़ी के लोगों ने पढ़ा हैं इससे छात्रों में निराशा आती है।
7. *दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली;* कालेजों एवं विश्वविद्यालय में प्रचलित परीक्षा प्रणाली मुख्यत निबन्धात्मक प्रकार की हैं। निबन्धात्मक प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्य विषय पर आधारित न होकर उसके केवल एक अंश पर आधारित होते हैं। अतः वर्तमान परीक्षा पद्धति में वैधता, व्यापकता, वस्तुनिष्ठता एवं विश्वसनीयता का पूर्ण अभाव हैं।
8. *उच्च शिक्षा का निजी क्षेत्र की तरफ आकर्षण;* सरकारें गुणवता को बढ़ावा देने के नाम पर निजी कालेजों एवं निजी विश्वविद्यालय खोलने की अनुमति दे देती हैं। जिससे होता यह है कि निजी उच्च शिक्षण संस्थनों में केवल सम्पन्न वर्ग के छात्र-छात्राए ही पढ़ पाते हैं एवं समाज

के शोषित पिछड़े तथा दलित समुदाय के छात्र इन संस्थानों में प्रवेश से वंचित हो जाते हैं; क्योंकि उनके पास फीस अदा करने के लिए उतनी क्षमता नहीं होती हैं, एवं निजी शिक्षण संस्थान केवल लाभ कमाने के उद्देश्य खुलते हैं। सेवा के लिए नहीं जिसके कारण निजी एवं सरकारी संस्थानों में काफी अन्तर आ जाता है। अतः सरकारों सार्वजनिक शिक्षा संस्थानों की ओर ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

उच्च शिक्षा में सुधार के उपाय

1 *अच्छे कार्य करने पर प्रोत्साहन :* उच्च शिक्षण संस्थानों में वांछित परिणाम लाने के लिए प्रत्येक को पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ कार्य करने चाहिए वह राजनेता हो, नौकरशाह हो या कोई शिक्षक हो ईमानदारी हम तब ही ला सकते हैं जब प्रत्येक की जिम्मेदारी तय की जाए तथा अच्छे कार्य करने पर उन्हें प्रोत्साहित किया जाए।

2 *विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को मजबूत करना :* यूजीसी की नियुक्तियों में पूर्ण पारदर्शिता हो साथ ही राजनीतिक दखल कम हो। इसके अलावा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को आर्थिक एवं प्रशासनिक स्तर पर स्वायतता दिये जाने की ज्यादा आवश्यकता हैं जिससे की वह स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष तरीकों से कार्य कर सके इसके अलावा हम आज ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था में कार्य कर रहे हैं तथा हमारे विश्वविद्यालयों से ऐसे छात्र निकल रहे हैं जो रोजगार प्राप्त करने के लिए अपना स्तर नहीं रख पा रहे हैं हमारे विश्वविद्यालय और कालेजों का उद्योगों से उचित तालमेल नहीं हैं। डीम्ड एवं निजी विश्वविद्यालय अपनी मनमर्जी से चलाते हैं। ऐसे विश्वविद्यालय ज्यादातर राजनीतिक बिरादरी और कॉरपोरेट घरानों के होते हैं। इसलिए यूजीसी को और अधिक मजबूत करने की ज्यादा जरूरत हैं ताकि उच्च शिक्षओं में गुणात्मक सुधार हो सके।

3 *धन की पर्याप्त व्यवस्था हो :* सरकारे उच्च शिक्षा का बजट घटा रही हैं। और निजी विश्वविद्यालयों को बढावा दे रही हैं। इसका परिणाम यह हो रहा हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता में कमी आ रही हैं। केन्द्रीय विश्वविद्यालय, राज्य विश्वविद्यालय, डीम्ड विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की कमी, बुनियादी सुविधाओं का अभाव होता हैं जिससे छात्र पढाई से भटके जाते हैं। छात्रों को पढ़ने के लिए अच्छे पुस्तकालय, अच्छी प्रयोगशालए हो यह तभी हो सकता हैं जब सरकारें उच्चशिक्षा के लिए पर्याप्त धन उपलब्ध करायें ताकि अनुसंधान एवं शिक्षण कार्य बेहतर तरीके से चलते रहे क्योकि हमारे देश में सकल घरेलू उत्पाद अर्थात जीडीपी का छह फीसदी शिक्षा पर खर्च किया जाता हैं। इसमें भी लगभग उच्च शिक्षा पर एक फीसदी ही खर्च किया जाता है।

4 *विश्वविद्यालय एवं कालेजों में समन्वय :* उच्च शिक्षा में अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए उत्तम उपाय हैं कि कालेजों को विश्वविद्यालयों के साथ अनुसंधान कार्य में समान रूप से साझेदार बनाया जाना चाहिए साथ ही बेहतर शैक्षिक वातावरण के लिए स्नातक एवं स्नातकोतर शिक्षा को प्रोत्साहन देने में भागीदार बने।

5 *उच्च शिक्षा को लाभ वाली संस्था न बनाए :* हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ सालों से जो नीति चल रही है, उससे यह स्पष्ट है कि सरकार उच्च शिक्षा में गिरावट के पीछे राज्य सरकारों की उदासीनता भी रही है; क्योकि उच्च शिक्षण संस्थानों में वर्षो से पद रिक्त रहते हैं, लेकिन उन्हें समय पर भरा नहीं जाता हैं, तथा सहायक प्राध्यापकों के पदों की समय समय पर नियुक्तियॉ नहीं हो पाती हैं तथा समय समय पर उन्हें पदोन्नतियॉ नहीं मिल पाती हैं जिससे सारी व्यवस्थायें प्रभावित होती हैं। सरकारो की उदासीनता के कारण ही वर्षो से इन पदों के लिए वैकल्पिक व्यवस्था ही की जा रहीं है- जैसे अथिति व्याख्याता, अतिथि विद्वान्, संविदा सहायक प्राध्यापक जैसे व्यवस्था से छात्र-छात्राओं की पढाई प्रभावित होती हैं। अतः सरकारों को उदासीनता छोड़ते हुए रिक्त पदों पर स्थायी नियुक्तियाँ ही करनी चाहिए ताकि शिक्षण संस्थानों की गुणवता बरकरार रहे।

6 *उच्च शिक्षा के संचालन के लिए उच्च शिक्षण संस्थानों के प्राध्यापकों को ही उच्च पदों पर नियुक्त करना :* उच्च शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए उच्च शिक्षा विभाग एवं विश्वविद्यालयों में कब्जा जमाए बैठे नौकरशाहों को इन संस्थानों से मुक्त करना होगा क्योंकि विभाग से जुड़े हुए प्राध्यापक अपनी समस्याओं तथा विभाग की कमियों को अच्छे तरीके से जानते हैं, इसलिए वे समस्याओं एवं कमियों को दूर कर सकते हैं जबकि नौकरशाह विभाग की समस्याओं से अवगत नहीं होता है तथा वह दो तीन सालों के लिए ही नियुक्त होता है जब तक और वह विभाग की समस्याओं को समझ पाता है तब

तक उनका स्थानान्तरण अन्यत्र हो जाता है अतः समस्या समय पर हल नहीं हो पाती है। उच्च शिक्षा पर सरकार बजट कम खर्च करना चाह रही हैं। सरकार विश्वविद्यालयों से कह रही है कि वे अपने लिए निजी स्रोतों से अधिक से अधिक फंड एकत्रित करे। विश्वविद्यालयों को सेल्फ फाइनेंस स्कीम शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह प्रक्रिया यूपीए (यूनाइटेड प्रोग्रेसिव अलायंस) के दौर में ही शुरू हो गई थी। और एन.डी.ए. सरकार ने इस प्रक्रिया को और गति दे दी है। अगर हम इसी तरह से चलते रहे तो उच्च शिक्षा लाभ के लिए बेचने वाली वस्तु बन जायेगी। तब इसे वही लोग खरीद पायेंगे जिनके पास अधिक पैसा है। इस सम्बध में डॉ. अम्बेडकर का कथन समीचीन है ''उच्च शिक्षा विभाग ऐसा नहीं है, जो इस आधार पर चलाया जाए कि जितना वह खर्च करता है उतना विद्यार्थियों से वसूल किया जाए उच्च शिक्षा को सभी उपायों से व्यापक रूप से सस्ता बनाया जाना चाहिए। शिक्षा ऐसी चीज है जो सभी को मिलनी चाहिए। अब हम उस स्थिति में आ गए हैं। जब समाज के निचले तबके के लोगों के बच्चे हाईस्कूल और कॉलेज जा रहे हैं इसलिए इस विभाग की नीति यह होनी चाहिए कि निचले वर्गो के लिए उच्च शिक्षा को जितना सम्भव हो सस्ता बनाया जाए। राज्य सरकारों का अपेक्षित सहयोग देश में उच्च शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए राज्य सरकारों को ज्यादा जिम्मेदारी के साथ कार्य करना पड़ेगा।

7 *स्कूल शिक्षा को भी मजबूत करने पर बल :* स्कूल एवं माध्यामिक शिक्षा को उच्चशिक्षा से अलग नहीं कर सकते हैं क्योंकि स्कूल शिक्षा में एक ओर अभिजात्य निजी पब्लिक स्कूल है एवं दूसरी ओर सरकारी स्कूल। बुनियादी संस्थागत समस्याओं के कारण स्कूल शिक्षा भी प्रभावित होती है। साथ ही सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को शैक्षणिक कार्यों के अलावा अन्य कार्यो वर्गों जैसे जनगणना, जाति प्रमाणपत्रों के निर्माण प्रक्रिया एवं मतदाता सूची में नाम दर्ज करवाना, मतदाता, पर्ची बटवाना आदि कार्यों के कारण पूरा शैक्षणिक सत्र प्रभावित होता है एवं छात्र बगैर मार्गदर्शन के अपने में गुणात्मक वृद्धि नहीं कर पाते हैं।

8. *शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार :* शैक्षिक स्तरों को निम्नतर न होने देने के लिए यह आवश्यक है कि छात्र संख्या के अनुपात में शिक्षा सुविधाओं का विस्तार किया जाये। ताकि संस्थाओं का सही तरह से उन्नयन हो सके और यह पर्याप्त धन की मदद से ही सम्भव है।

9. *छात्र अनुशासनहीनता रोकना :* छात्र अनुशासनहीनता रोकने के लिए शिक्षकों को छात्रों की समस्याओं को ध्यानपूर्वक सुनकर उनके साथ उचित वातावरण तैयार करके उन समस्याओं को नियमानुसार हर करना एवं नैतिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न करना।

10. *छात्रों की भावी सफलता हेतु :* छात्रों की भावी सफलता के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जब छात्र कॉलेज स्तर पर प्रवेश करना चाहता है तो उसे कॉलेज में निर्देशन एवं परामर्श की सुविधा प्राप्त होनी चाहिए, ताकि वह अपने भविष्य की प्राप्ति अधिक चिन्ताग्रस्त एवं संकुचित न रहे। बल्कि अपनी रूचि के अनुसार विषय चयन से लेकर अपने भावी भविष्य के प्रति सचेत रहे एवं अपनी क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करते हुए निरन्तर आगे बढ़े तथा सफलता प्राप्त करे।

11. *पाठ्यक्रमों में बदलाव :* पाठ्यक्रमों में बदलाव के लिए विश्वविद्यालयों को अधिक ध्यान देना चाहिए। क्योंकि बदलते परिवेश एवं अखिल भारतीय परीक्षाओं के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता है एवं उद्योगों के जरूरत के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार होने चाहिए। जिससे छात्र-छात्राओं को कैरियर के साथ साथ रोजगार के साधन प्राप्त करने में कठिनाइयां न हो सकें।

12. कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की परीक्षा प्रणाली में सुधार के लिए यह आवश्यक है कि कुछ प्रश्न निबंधात्मक, कुछ प्रश्न वस्तुनिष्ठ तथा विश्लेषणात्मक पद्धति वाले होने चाहिए इसके अतिरिक्त आन्तरिक मूल्यांकन की पद्धति भी प्रचलित होनी चाहिए। ताकि छात्रों में सीखने की सतत् प्रक्रिया चलते रहे। इसके अलावा विश्वविद्यालयों को नियमित एवं स्वाध्यायी परीक्षाओं के समय में एकरूपता लानी चाहिए जिससे नियमित छात्रों को परीक्षा के दौरान कक्षाओं से वंचित न होना पड़े।

13. *प्राध्यापकों को प्रोत्साहन एवं अनुसंधान के लिए प्रेरित करना :* उच्च शिक्षा में गुणात्मक बदलाव लाने के लिए आवश्यक है कि उच्च शिक्षा का आधार प्राध्यापकों को शासन द्वारा समय-समय पर सम्मान एवं उच्च वेतन एवं समय पर पदोन्नति की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए। जिससे की वह नवाचार एवं अनुसंधान के लिए सदैव समर्पित भाव से कार्य कर सके।

क्योंकि बगैर प्रोत्साहन एवं अनुसंधान के उच्चशिक्षा में बदलाव नहीं लाया जा सकता। इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि जिस प्रोफेसर को गुलाम जैसा काम करना पड़ता हैं, वह कभी भी सच्चे अर्थो में अध्यापक नहीं बन सकता। वह एक साधरण कर्मचारी ही बन सकता है और तैयार कुंजी की मदद से ही अपना काम करेगा। हम उससे मौलिकता की कोई उम्मीद नहीं रख सकते हैं और वह उन विद्यार्थियों को जिनको दुर्भाग्यवश उनसे पढ़ना पड़ रहा है। कोई प्रेरणा नहीं दे सकता। सारा शिक्षण मात्र एक यांत्रिक प्रक्रिया बनकर रह जाता है।

14. उच्चशिक्षा में गुणवत्ता के लिए यह आवश्यक है कि सरकारों ने निजी क्षेत्र को आगे लाने के बजाय उच्च शिक्षा में गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए उपलब्ध उच्च शिक्षा संस्थानों को अद्यतन करना एवं उन्हें आधुनिक तकनीक से सुसज्जित करके प्र्याप्त धन उपलब्ध कराना ताकि सरकारी उच्च शिक्षण संस्थान सामाजिक जिम्मेदारी के साथ-साथ बेहतर परफार्मेन्स कर सकें एवं समाज के शोषित दलित एवं पिछड़े वर्ग के लोगों को अच्छी सस्ती उच्च शिक्षा प्राप्त हो सके।

निष्कर्ष

किसी भी देश की प्रगति एवं विकास में उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। इसके बिना राष्ट्र की प्रगति की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। उच्च शिक्षा के विकास के लिए समाज के आधार स्तम्भ छात्र, प्राध्यापक, शिक्षक एवं बुद्धिजीवि वर्ग को सजग रहकर एवं ईमानदारी से कार्य करके हम राष्ट्र को नई ऊँचाइयों तक पहुँचा सकते हैं। विशेषतः ऐसी स्थिति में देश को आगे बढ़ा सकते हैं जबकि देश में इतनी संख्या में उच्च शिक्षण संस्थान होने के बावजूद विश्व के शीर्ष 200 संस्थानों में भारत के एक भी शिक्षण संस्थान टाप टेन में नहीं हैं। हमें संस्थानों के गुणात्मक विकास पर बल देने के लिए यूजीसी को मजबूत करना होगा। साथ ही विश्वविद्यालयों को मानवतावाद एवं प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए मजबूत करना जरूरी हैं। हमें प्राध्यापकों को नवाचार एवं अनुसंधान के लिए प्रेरित करना जरूरी हैं इसके लिए उन्हें पर्याप्त धन की उपलब्धता सुनिश्चित करने की आवश्यकता है एवं उच्च शिक्षा की जो समस्या उन्हें हल करने के लिए हमारे आयोगों ने जो सुझाव दिये हैं उनको लागू करना पड़ेगा ताकि राष्ट्र के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों को उच्च शिक्षा के माध्यम से हम निपट सकें इसके साथ-साथ बढ़ते नामांकन दर के लिए हमे नये शिक्षण संस्थान भी खोलने की आवश्यकता होगी बदलते समय के अनुसार विश्वविद्यालयों को परीक्षा सुधार पाठ्यक्रमों में बदलाव करना जरूरी है ताकि उन्हें उद्योगों में रोजगार के लिए अवसर मिल सके। हम छात्रों को निर्देशन एवं परामर्श प्रदान करके उनकी समस्याओं हल करने के लिए हमें सदैव सजग रहना होगा ताकि छात्रों के भविष्य संवार सकें। साथ ही हमें अध्ययन एवं अध्यापन को रोचक बनाने के लिए नये-नये तरीके खोजने होगे ताकि छात्रों की नीरसता को कम कर सकें यह तभी संम्भव हैं जब प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी के साथ-साथ सच्ची लगन एवं निष्ठा से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करेगा हमारे प्राध्यापकों को सदैव राष्ट्र निर्माण के लिए महती भूमिका अदा करनी होगी। ताकि देश में विकास, शान्ति प्रजातांत्रिक मूल्य एवं राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता बनी रहे तथा मजबूत रहे।

सन्दर्भ

बाबा साहेब डॉ. आम्बेडकर सम्पूर्ण वांगमय खण्ड तीन, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सर नई दिल्ली पेज 61-65

डॉ. आगलावे सरोज प्रदीप- *जोतिराव फुले का सामाजिक दर्शन,* सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली 2010 पेज 123-132

डॉ. त्यागी गुरसरनदास- *भारतीय शिक्षा का परिहष्य,* विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा 2005 पेज 317-321

वही, 324-346

कुरूक्षेत्र, दिसम्बर 2015 पेज 7-17

यूजीसी वार्षिक रिर्पाट 2011-12, पेज 36-40

यूजीसी वार्षिक रिर्पाट 2012-13, पेज 6-10

यूजीसी वार्षिक रिपोट 2013-14, पेज 3-9

यूजीसी वार्षिक रिपोट 2014-15, पेज 2-10

प्रतियोगिता दर्पण, फरवरी 2014 पेज 75-78

पत्रिका, 17 सितम्बर 2013 पेज 6

पत्रिका, 14 जुलाई 2015 पेज 6

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,91-94
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 फरवरी 2016

णमोकार मंत्र और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया

डॉ. संगीता जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *णमोकार मंत्र और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *संगीता जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जिस प्रकार पर्वतों में पर्वत 'हिमालय', शिखरों में शिखर 'गौरीशंकर' उसी प्रकार आदित्य है, यह महामंत्र 'णमोकार मंत्र'। जैन धर्म लाखों वर्ष पुरानी-प्राचीनतम परम्परा रही है। भगवार महावीर जैन के अंतिम तीर्थंकर-चौबीसवें- शिखर की लहर की अंतिम ऊँचाई। णमोकार मंत्र को जैन धर्म ने महामंत्र कहा है। वास्तव में प्रत्येक धर्म के लिये एक मंत्र अनिवार्य है, क्योंकि इस मंत्र के चारों ओर धर्म की सारी व्यवस्था निर्मित होती है।

अनुपम-अनादि-अनंत है, यह मंत्रराज महान है। सब मंगलों में प्रथम-मंगल, करता अघ की हान है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्यों, पाठक, साधुओं की वंदना।

मंत्र क्या करते हैं? इनका क्या प्रयोजन है? इनसे क्या फलित होता है?

'णमोकार मंत्र' नमस्कार मंत्र है, इस में पॉच नमस्कार किये गये हैं; 'नमो अरिहंताणं,/ नमो सिद्धाणं,/ नमो आयरियाणं,/ नमो उवज्झायाणं,/ नमो लोए, सव्य साहूणं। एसोपंचणमोकारो, सव्वपावप्पणासणो,/ म्ंगला नन्चे सव्वेसिं, पढ़मम होइ मंगलं।'

सर्वप्रथम अर्हन्तों को नमस्कार किया गया है। कौन हैं ये अरिहंत?

जिसने राग द्वेष का मादिक जीते सब जग जान लिया,/ सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का निःस्पृह हो उपदेश दिया। (मेरी भावना --- जुगल किशोर मुख़्तार)

जैन मान्यता के अनुसार- मनुष्य अपने कर्मों का विनाश कर स्वयं परमात्मा बन सकता है। परमात्मा की दो अवस्थाऐं हैं:- एक सशरीर अर्थात जीवनयुक्त अवस्था, दूसरी शरीर रहित। पहली अवस्था को 'अरिहंत' कहा गया है। अरिहंत भी दो प्रकार के होते हैं:- एक तीर्थंकर कहलाते हैं और दूसरे सामान्य अरिहंत। जो विशेष पुण्य सहित होते हैं, जिनके कल्याणक महोत्सव मनाये जाते हैं, तीर्थंकर कहलाते हैं और दूसरे सामान्य अरिहंत होते हैं। केवल-ज्ञान अर्थात सभी द्रव्यों के समस्त गुणों एवं पर्यायों को एक साथ देखने और जानने की शक्ति, सब को प्राप्त होती है और सब केवली भी कहलाते हैं।

* रीडर, एडवान्स्ड कॉलेज ऑफ ऐजुकेशन, पलपल (हरियाणा) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

बड़ा अद्‌भुत है यह णमोकार मंत्र। किसी व्यक्ति विशेष का इसमें नाम नहीं। ना ही महावीर को, ना ही आदिनाथ को और ना ही पार्श्वनाथ को नमस्कार, जो भी अरिहंत हुये हैं उन्हैं नमस्कार। न किसी व्यक्ति विशेष को, ना जाति को और ना ही धर्म विशेष को।

संभवतः विश्व के किसी भी धर्म में इतना सर्वांगीण, इतना मर्मस्पर्शी मंत्र विकसित नहीं किया। इसमें व्यक्ति की कोई महिमा नहीं, शक्ति और गुणों को नमस्कार है।

अरिहंत भगवन दिव्या औदारिक तथा आलौकिक शरीर धारक होते हैं। घातिया कर्ममल से रहित होने से पवित्र आत्मा होते हैं। अरिहंत-सिद्ध अवस्था प्राप्त होने तक, सशरीर हमारे मध्य, शांति, सुबुद्धि, उच्च देसना, उच्च संस्कार देने हेतु विराजमान रहते हैं। यद्धपि सिद्ध अवस्था अरिहंत से बड़ी है, फिर भी अरिहंत को पहले रखा है, क्योंकि अरिहंत हमारे मध्य सशरीर होते हैं, उन्हें हम देख सकते हैं, सुन सकते हैं, छू सकते हैं।

'नमो सिद्धाणं/ सिद्धों को नमस्कार। कौन हैं ये सिद्ध पुरूष?

बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो, (मेरी भावना--- जुगल किशोर मुख़्तार)

अरिहंत देव जब अपनी काया का त्याग करते हैं, तो सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं। पूर्ण रूप से अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। जन्म मरण के चक्र से आजाद हो जाते हैं।

नमो आयरियाणं; आचार्यों को नमस्कार। कौन हैं आचार्य? जो साधु (मुनि) स्वयं दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप और वीर्य का, इन पॉचों आचारों को पालन करते हैं और अपने संग के मुनियों से आचरण करवाते हैं और मुनि संग के मुखिया हैं, आचार्य कहलाते हैं।

नमो उवज्झायाणं; उपाध्यायों को नमस्कार। कौन होते हैं उपाध्याय? जो मुनि संग को, साधु को, श्रावक को ज्ञान देते हैं, पढ़ाते हैं, जो जिनवाणी के ज्ञाता हैं, उन्हें नमन। अध्ययन, पठन-पाठन इनका विषय है।

'नमो लोए, सव्व साहु नम,/ लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार; आचार्य, उपाध्याय, और साधु चरित्रादि कि अपेक्षा तीनों एक रूप हैं। दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार युक्त होने से जिन्होंने शुद्धउपयोग भूमिका को प्राप्त किया है, ऐसे श्रमणों को नमस्कार।

इस महामंत्र का प्रयोजन-नमस्कार हैं, उन्हें जिन्होंने सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरित्र को प्राप्त कर लिया है, पा लिया है। किसी विशेष व्यक्ति को नहीं, वह कोई भी हो सकता है।

एक इसाई साधु जापान में एक झन संत से मिलने गया। इस इसाई साधु ने पूछा कि आप जीसस के विषय में क्या जानते हैं? आपका उनके बारे में क्या विचार है? झेन संत ने कहा कि मैं उनके विषय में कुछ भी नहीं जानता, आप कुछ बतलाइये। इसाई साधु ने कहा कि जीसस कहते थे कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तो तुम अपना दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। उस झेन संत ने कहा कि 'आचार्यों को नमस्कार'। इसाई साधु ने फिर कहा कि जीसस कहते थे कि जो अपने को मिटा देगा वही पायेगा। झेन संत का उत्तर था 'सिद्धों को नमस्कार'। इसाई साधु कुछ समझ नहीं पाया मगर उसने कहा कि जीसस सूली पर चढ़ गये, उन्हें सूली पर लटका दिया गया, उन्होंने अपने को मिटा दिया, झेन संत का उत्तर था 'अर्हन्तों को नमस्कार'।

नमस्कार शब्द बहुत विराट है, बहुत विशाल है। असली राज नमन में, झुक जाने में है। वह जो झुक जाने की हिम्मत करता है उसका मान, उसका अहंकार गल जाता है, वह नए जीवन को उपलब्ध हो जाता है, और यही कीमिया (आधार) है णमोकार मंत्र का। जब आप संसार के प्रत्येक प्रज्ञापुरूष को, जिन्होंने जीवन में कुछ किया है, कुछ पाया है, कुछ जाना है, अपनी चेतना का विकास किया है, जीवन के अन्तरतम रहस्यों को जाना है, उन्हें नमस्कार करते हैं तो निश्चित ही आप 'ग्राहकता' को जन्म देते हैं। आप सद्‌भाव से मंगल-कामना से लोट-पोट होते हैं, भरे होते हैं।

रूसी वैज्ञानिक कमेनिएव और अमरीकी वैज्ञानिक डॉक्टर रूडोल्फ फिर ने प्रयोग किये और प्रमाणित किया कि सद्‌भावना का, मंगल कामना का, गुणात्मक रूप से प्रभाव होता है, असर होता है। मंगल कामना सहित, सद्‌भावना सहित यदि जल को छुआ जाये तो उसके गुणात्मक रूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है। इस मंगल कामना और सद्‌भावना सहित छुए जल

से यदि सिंचाई की जाये तो फसल उत्तम और अधिक होती है और यदि कोई इसी जल को नमारात्मक भावों से छू कर सिंचाई करे तो फसल अच्छी नहीं होती। कहॉ से यह गुण जल में आया? कैसे जल का गुण रूपांतरित हो गया? यदि हमारी सद्भावना से, मंगलकामना से जल का गुणधर्म बदल सकता है तो हमारे चारों ओर फैला वातावरण प्रभावित ना हो, ऐसा सम्भव नहीं। यह मंगल भावना, आपके आस-पास के विद्युत-तरंग को, आप के आभामंडल को बदल देती है, उसे रूपांतरित कर देती है।

मंत्र आश्चर्यजनक घोषणा करता है, एसोपंचणमोकारो, सव्वपावप्पणसणो,/ मंगला नन्चे सव्वेसिं, पढ़मम होइ मंगलं।

सब पापों को नाश करने की उदघोषणा। कैसे सम्भव है यह सब? वास्वविक रहस्य नमन में है, आपका नमन, आप के पाप रूपी आभामंडल को नष्ट कर देता है और पाप करना असंभव हो जाता है।

मॉस्को यूनीवर्सिटी के डा0 वार्सिलियव ने ग्राहकता पर बड़े प्रयोग किये। उनका मानना था कि हम भविष्य में जीनियस निर्मित कर सकेंगे। डा0 वार्सिलियव के अनुसार सौ में कम से कम नब्बे बच्चे प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं, हम मॉ-बाप, शिक्षक सब मिल कर उसकी प्रतिभा का हनन कर देते हैं, उसकी ग्रहण करने की शक्ति को नाश कर देते हैं। उसके असली स्वरूप को हम पहचानने में असमर्थ हो जाते हैं, उसके रूझान को, उसकी कार्यदक्षता को, उसके कार्यक्षम को पहचान नहीं पाते। शिक्षक को चाहिए कि वह उसके रूझाान को पहचाने, उसे उजागर करे, विकसित करे। यदि बच्चे की रूचि, उसका रूझान कवि बनने में है, तो उसे कवि बनने में सहयोग दे, यदि वह एक डॉक्टर या इंजीनियर बनना चाहता है तो उसे उसी ओर सहयोग दे, उसके कार्यक्षम को निखारे, तराशे। यह संभव है और यहीं राज छिपा है- नमन में, सद्भावना में, मंगलभावना में, ग्राहकता में। डॉ0 वार्सिलियव ने प्रयोग को नाम दिया 'आर्टिफिशियल रिऐंन्करनेशन'।

डॉ0 वार्सिलियिव व्यक्ति को तीस दिन के लिये गहन सम्मोहन में ले जाते और गहरी बेहोशी में उसे सुझाव देते कि तू पिछले जन्म के माईकल एंजिलो हो, तुम वानगॉग हो, तुम सेक्शपियर हो, आदि-आदि हो। तीस दिन के सुझाव के गहने, आश्चर्य जनक परिणाम आये। वास्तविक सूत्र 'ग्राहकता-रिसेप्टिविटी' है। चित इतना ग्राहक हो जाये कि उसे जो कहा जाये उसे गहनता से परिवेश दे, स्वीकारे।

यह 'आर्टिफीशियल रिऐंन्करनेशन' क्या है? नींद की गहराई में मनुष्य चेतन मने से अचेतन में चला जाता है- इस अचेतन मन की गहराई में दिए गये सुझाव अपना कार्य करते हैं। इ सी जी मशीन इसकी खबर दे सकती है कि मनुष्य कितनी अटल गहराई में चला गया है और अल्फा वेव्स पैदा होनी शुरू हो गई हैं। तीन दिन के प्रयोग ने कमाल के अद्भुत परिणाम दिये। उस मनुष्य में अद्भुत, क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिले। वह अपने आप को अगर कवि है, तो सेक्शपियर, यदि चित्रकार है तो अपने को वाग-गाग की हैसियत का समझने लगा। अतल गहराई में दिये गये सुझाव को चित ग्रहण कर लेता है।

बुल्गारिया के डा0 लोरेंजोव के इन्स्टीट्यूट ऑफ स्जेस्टालॉजी में बच्चों को मनभावन वातावरण में, जहॉ स्कूल में बैंचों के स्थान पर आराम कुर्सियों बैठने को हैं, मधुर संगीत चल रहा है, बच्चों को कहा जाता है कि संगीत का आनंद लें, शिक्षक क्या बोल रहा है? इसकी चिंता मत करें। लुभावने वातावरण में, आनंदमई मधुर संगीत में खो जायें। सारा खेल सचेतन मन से अचेतन मन में ले जाने का है। जब आप सचेतन रूप से किसी बात को सुनते हैं तो ऊपरी मन से सुनते हैं, इसीलिए सीखने में समय लगता है और यदि वही विषय अचेतन मन की गहराइयों में चला जाये तो तुरंत जान लिया जाता है, तुरंत स्मरण हो जाता है।

आखिर इन सबका कारण क्या है?

वास्तव में हमारे अचेतन मन की गहराइयों में बड़ी क्षमतायें छिपी हैं। आप का अचेतन मन बारीक से बारीक बात को भी नोट करता है। आप घर लौटते हैं, आपका ऊपरी सचेतन मने तो घर पहुँचने में लगा है, जबकि अचेतन मन रास्ते में एक-एक बात को, छोटी से छोटी बात को भी नोट करता है कि कौन-कौन रास्ते में दिखे, कौन-कौन रास्ते से गुजरे, क्या-क्या घट रहा था, सब कुछ नोट करता है और यदि आप को सम्मोहित कर आपसे पूछा जाये तो आप सब कुछ बतला देंगे।

ऐसी मान्यता है कि 'भगवान महावीर' ने कभी बोल कर देशना, प्रवचन नहीं दिया, सदा मौन देशना दी और सभा में उपस्थित हर व्यक्ति ने अपनी-अपनी भाषा में उसे जाना, उसे ग्रहण किया। वास्तव में उनका व्यक्तित्व अपने आप में सम्मोहित कर, आपको अचेतन मन की गहराइयों में ले जाने की पात्रता, योग्यता रखता था और आप उनको सुन पाते थे, समझ पाते थे।

'णमोकार मंत्र' आपको इसी गहरी शांति में, इसी सम्मोहन की गहराई में, आप को आपके अचेतन मन की गहराइयों में ले जाने की योग्यता रखता है। जब आप नमन करते हैं तो आपका अहंकार विसर्जित हो जाता है, गल जाता है। आप अपना सिर जब किसी के चरणों में झुकाते हैं तो आपमें ग्रहणता की एक खिड़की खुलती है। लोहे को स्वर्ण होने हेतु मात्र पारसमणि का स्पर्श, सानिध्य चाहिए। जब आप अपने अध्यापक के, गुरू के प्रति सद्भाव रखेंगे, अपनी ग्रहणता की खिड़की खुली रखेंगे तो निश्चित ही गुरू की अनुकम्पा आप पर बरसेगी, गुरू अपना सब कुछ आप पर उलीचने को तैयारी रहेगा, आवश्यकता है तो बस सच्चे हृदय से नमीभूत होने की।

'करूणा-रस उसे माना है, जो कठिनतम पाषाण को भी मोम बना देता है,/ वात्सल्य का वह बाना है, जघनतम नादान को भी सोम बना देता है। किन्तु यह लौकिक चमत्कार की बात हुई। शान्ति-रस का क्या बताना?'(मूकमाटी-151)

वास्तव में नमो उवज्झायाणं 'उपाध्यायों' को नमस्कार है। उपाध्याय- ही तो वास्तव में शिक्षक ही हैं। जब विद्यार्थी सद्भाव से नमन करेंगे, तो निश्चित ही उनकी अनुकम्पा, करूणा आप पर बरसेगी, आपकी ग्रहणता बढ़ेगी, शुभ फलित होगा, लाभ बरसेगा और मंजिल साध्य होगी।

'यह एक साधारण-सी बात है कि चक्करदार पथ ही, आखिर गगन चूमता,/ अगम्य पर्वत-शिखर तक पथिक को पहुँचाता है बढ़ा-बिन बेशक।' (मूकमाटी-162)

अंत में-

लो। पि लो प्याला भर-भर कर, विजय की कामना पूर्ण हो तुम्हारी। युग-वीर बनो। महावीर बनो। अक्षत-वीर्य बनो तुम। (मूकमाटी-130)

सन्दर्भ

म्हावीर-वाणी, भाग-1 -ओशो
मंगल मंतर णमोकार एक अनुचिंतन -डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री
मूकमाटी -आचार्य विद्यासागर
पूजन-पथ-प्रदीप -डॉ0 सुदीप जैन
लोज़ानोव. जी (2009) -*दिग्गेस्टीवे लर्निंग/ रेसेर्वोपड़ि,* लुक लिखे अत प्रेजेंट?

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,95-97
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 फरवरी 2016

तीर्थराज प्रयाग स्थित समुद्रकूप का धार्मिक महत्व

डॉ. जेबा इस्लाम*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *तीर्थराज प्रयाग स्थित समुद्रकूप का धार्मिक महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *जेबा इस्लाम* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रयाग (प्र.याग) का शाब्दिक अर्थ है वह स्थान जहां यज्ञादि सम्पन्न किये जाते हैं। अतः तीर्थ से तात्पर्य है वह स्थान या जलयुक्त स्थान जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पूर्णयार्जन की भावना को जागृत करे। गंगा और यमुना के पवित्र सिद्ध क्षेत्र में बसा प्रयाग ''तीर्थराज'' कहा गया है[1], प्रयाग के पवित्र स्थलों में समुद्रकूप का महत्वपूर्ण स्थान है। मत्यस्य पुराण[2] के अनुसार गंगा के बाऐं तट पर तीनों लोको में प्रसिद्व समुद्रकूप और प्रतिष्ठान स्थित है। जिनका पर्याप्त धार्मिक महत्व है।

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य समुद्रकूप से सम्बन्धित उसके ऐतिहासिक महत्व को उद्घाटित करना है। समुद्र कूप चौड़े मुँह का एक पक्का कुआँ है जो झूँसी[3] के टीले पर आज भी विधमान है। सम्प्रति यह टीला "कोट" के नाम से जाना जाता है। कुएँ की गहराई बहुत अधिक है और प्रायः जलयुक्त रहता है। इस कूप का निर्माण किसके द्वारा कराया गया? यह प्रश्न सर्वप्रथम विचारणीय है। नाम के आधार पर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त[4] को इसके निर्माण का श्रेय प्रदान किया जा सकता है। इस सम्भावना की पुष्टि के लिए अभिलेखिक[5] एवं मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। प्रयाग स्तम्भ-लेख[7] की प्राप्ति से यह निस्संदेह प्रमाणित है कि प्रयाग और उसके आस-पास के क्षेत्रों में समुद्रगुप्त का शासन स्थापित था। यहाँ तक कि उसके उत्तराधिकारियों के लेख भी मानकुँवर एवं गढ़वा आदि स्थानों से प्राप्त हैं।

यद्यपि गुप्त काल में राजनीतिक एवं प्रशासनिक दृष्टि से कौशाम्बी का महत्व बढ़ गया था फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिष्ठानपुर को कतिपय विशिष्ट कारणों से अग्रगण्य माना गया। यह नगर न केवल राजनीतिक एवं प्रशासनिक उद्देश्यों की पूर्ति करता था अपितु संस्कृति के समुन्नयन में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। सम्भव है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन एवं गोसहस्त्रदान के आयोजन के लिए प्रतिष्ठानपुर को ही चुना हो और इस अवसर पर एक कूप का भी निर्माण करा दिया हो जिसे महान गुप्त सम्राट के नाम पर समुद्रकूप नाम दिया गया। उसके अश्वमेघ प्रकार के सिक्कों की प्राप्ति[8] से अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का परिज्ञान होता है और प्रयाग स्तम्भ लेख में उसे गो-शतसहस्त्र दान का श्रेय दिया गया है।[9] मत्स्य पुराण में 16 महादानों के अंतर्गत गो सहस्त्र दान का भी उल्लेख है।[10] इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता

* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ. प्र.) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है कि समुद्रगुप्त ने गो सहस्त्र दान जैसे महादान का सम्पादन कर धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा के विकास में योगदान दिया। इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि समुद्रगुप्त के गो सहस्त्र महादान के सम्पादन का समुद्र कूप एवं प्रतिष्ठानपुर से क्या सम्बन्ध है। यद्यपि इस विषय में असंदिग्ध प्रमाणों को प्रस्तुत कर सकना कठिन है फिर भी कतिपय अप्रत्यक्ष साक्ष्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है जो इस प्रश्न का उत्तर देने में सहायक हो सकते हैं। मत्स्य पुराण के अनुसार गो सहस्त्रदान करने वाला नरकगामी नहीं होता[11] और अधिराज पद प्राप्त करता है।[12] समुद्र कूप एवं प्रतिष्ठानपुर के धार्मिक महत्व की चर्चा करते हुए मत्स्यपुराण के रचनाकार ने स्पष्ट किया है कि इस स्थान पर यदि कोई व्यक्ति तीन रात्रि तक ब्रहाचर्य का पालन करता हुआ क्रोध पर नियंत्रण करके ठहरता है तो उसे अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का फल प्राप्त होता है।[14] यह स्वाभाविक है कि जो व्यक्ति संयम पूर्वक यहां तीन रात्रिपर्यन्त ठहरेगा वह दानादि कृत्य अवश्य करेगा। प्रतिष्ठानपुर से प्राप्त गुप्तोत्तर कालीन एक ताम्रलेख[15] से भी यह स्पष्ट है कि शासक वर्ग के लोग यहाँ धार्मिक अवसरों पर या धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के समय प्रभूत दान देते थे। इस प्रकार साहित्यक एवं अभिलेखिक साक्ष्यों के आधार पर यह सुझाव प्रस्तुत किया जा सकता है कि समुद्रगुप्त ने गोसहस्त्र दान के अवसर पर समुद्र कूप का निर्माण कराया और तीन रात्रियाँ संयम पूर्वक बिताने के बाद उपरोक्त महादान सम्बन्धी अन्य समस्त कृत्यों को सम्पादित किया। गो सहस्त्रदान के लिए गंगा के तट पर स्थित प्रयाग का यह स्थान सर्वथा उपयुक्त था।

मत्स्य पुराण में 16 महादानों के अंर्तगत सप्त सागर महादान का भी उल्लेख है।[17] यहाँ उल्लेखनीय है कि मथुरा संग्रहालय की वर्तमान भूमि के हरे मैदान में सामने की ओर अथाह जलराशि वाला चौड़े मुँह का कुआँ है जिसे सात समन्दरी कूप कहते हैं।[18] इस कुएँ की सफाई करते समय इसमें से अनेक कुषाण कालीन मूर्तियाँ निकली जो इस समय संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। वासुदेव शरण अग्रवाल का विचार है कि जिन कुओं के जल से ये दान संकल्प किए गए वे सप्त समुद्र कूप कहलाते थे।[22] प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान झूँसी) के समुद्र कूप को सप्त समुद्र कूप या सात समन्दरी कूप के रूप में अभिहित नहीं किया गया है फिर भी मथुरा के सात समुन्दरी कूप के अस्तित्व के आधार पर समुद्र कूप के निर्माण की धार्मिक पृष्ठभूमि का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है।

समुद्र कूप का प्रतीकात्मक महत्व भी हो सकता है। यह सम्भव है कि इसे समुद्रतीर्थ के रूप में स्थापित किया गया हो। वायु पुराण के अनुसार हिमालय और गंगा के साथ-साथ सभी नदियाँ और सभी समुद्र पवित्र हैं।[25] कूर्मपुराण के अनुसार समुद्र में गिरने वाली नदियाँ पवित्र हैं परन्तु समुद्र विशेष रूप से पवित्र हैं।[26] नारदीय पुराण में यह स्पष्ट उल्लिखित है कि सागर सरिताओं का पति और समस्त तीर्थों का राजा है।[27] ऐसी स्थिति में यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि एक कूप का निर्माण कराकर उसमें समुद्र का जल डालकर मंत्रों से पवित्र करके कल्पित किया गया हो जिसे कालान्तर में अन्य उपतीर्थों की भॉति महत्व प्रदान किया गया। यहाँ उल्लेखनीय है कि मत्स्य पुराण में समुद्र कूप के वर्णन के ठीक पश्चात् हंस प्रपतन तीर्थ का उल्लेख है जो प्रतिष्ठान के उत्तर में और भागीरथी के पूर्व में स्थित बताया गया है। इस तीर्थ में स्नान मात्र से अश्वमेध फल प्राप्ति की बात कही गई है।[28] समुद्र कूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित सम्भावनायें परिकल्पित की जा सकती हैं :

1. समुद्र कूप का निर्माण गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के द्वारा गोसहस्त्र दान या अश्वमेघ यज्ञ के सम्पादन के अवसर पर कराया गया।
2. इसका सम्बन्ध सप्त सागर दान से भी स्थापित किया जा सकता है।
3. इस कूप के निर्माण का उद्देश्य प्रतीकात्मक भी हो सकता है और यह असम्भव नहीं कि समुद्र कूप के रूप में समुद्र तीर्थ या सागर तीर्थ की स्थापना परिकल्पित की गई हो। प्रयाग में सागरतीर्थ की परिकल्पना का औचित्य इसलिए भी है कि नारदीय पुराण में सागर को सरिताओं का पति और समस्त तीर्थों का राजा कहा गया है। गंगा-यमुना को भी सागर की पत्नियाँ कहा गया है।
4. समुद्र कूप एवं प्रतिष्ठान क्षेत्र तीर्थ यात्रियों के ठहरने के स्थल थे। इस क्षेत्र की पवित्रता बनाए रखने के लिए ब्रहाचर्य का पालन एवं क्रोध पर नियंत्रण आवश्यक था।

सन्दर्भ सूची

[1]मत्स्य पुराण -(सम्पादित) नन्द लाल मोर, बम्बई 105.301, पूर्व पार्श्वे तु गंगोयास्त्रिषु लोकेषु भारत

[2]वहीं, 105.311; ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति

[3]*अध्याय 141*

[4]*पूर्वार्द्ध अध्याय* 661

[5]*मत्स्य 110,* स्कन्द्र, काशी खण्ड, 71

[6]कॉणे, पी0 वी0 -हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द IV P.6141

[7]फ्लीट, कार्पस -इंस्क्रिप्शनम् इंडिकेरम, जिल्द 3, पृष्ठ संख्या 6 और उसके आगे

[8]अल्टेकर, ए0 एस0 -कार्पस ऑव इण्डियन क्वायन्स, जिल्द IV, द क्वायनेज ऑफ द गुप्ता इम्पयर, पृष्ठ संख्या 61-69

[9]कॉणे, पूर्वोद्वत जिल्द-2, भाग-2, द्वितीय संस्करण, पूना 1974, पृष्ठ संख्या 874, मत्स्य 278, लिंग पुराण II 381

[10]*मत्स्य 277.261;* गोसहस्त्रप्रदोभूत्वा नरकादुद्वरिव्यति।

[11]*वहीं, 277.241*; यावत्कल्पशतं तिष्ठेद्राजराजी भवेत् पुनः।

[12]*वहीं* 272.21; पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापिका।

[13]वहीं 105.311; इस विवरण से स्पष्ट है कि तीर्थों की महत्ता का प्रतिपादन करते समय स्थान विशेष की पवित्रता के साथ-साथ नैतिक गुणों के पालन पर विशेष बल दिया गया है।

[14]*इंडियन एंटिक्वेरी,* जिल्द 181

[15]उद्वत शालिग्राम श्रीवास्तव, प्रयाग-प्रदीप हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद 1937 पृष्ठ संख्या 2721

[16]*मत्स्य 274,* 286.5-71; वासुदेव शरण अग्रवाल, कला और संस्कृति, साहित्य-भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1952 "सप्त सागर महादान" पृष्ठ संख्या 109-161

[17]*अग्रवाल,* वहीं पृष्ठ संख्या 1091

[18]वही

[19]वही

[20]मत्स्य, 286.5-71

[21]वासुदेव शरण अग्रवाल, भूमिका पृष्ठ संख्या 12 मोतीचन्द्र, सार्थवाह, 1953, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

[22]प्रयाग-प्रदीप, पृष्ठ संख्या 280-811

[23]वहीं

[24]*वायु,* 77-1171 251137.49-501

[26]*उत्तर,* अध्याय 58.191; राजा समस्त तीर्थाना सागरः सरितां पतिः।

[28]*मत्स्य* 105.321

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,98-102
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 फरवरी 2016

प्राचीन भारत में नगरीय प्रणाली : एक अनुशीलन

डॉ. जमील अहमद*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारत में नगरीय प्रणाली : एक अनुशीलन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *जमील अहमद* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतीय उपमहाद्वीप में नगरीकरण का उद्‌भव आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व सिन्धु नदी घाटी की सभ्यता में हुआ, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नगरीय प्रणाली का विकास छठीं शताब्दी ई0पू0 में परिलक्षित हुआ। तदोपरान्त भारतीय नगरों का उत्तरोत्तर विकास होता गया।

नगरीय प्रणाली किसी भी सभ्यता का परिष्कृत रूप दर्शाती है। जिसमें विभिन्न उद्योग-धन्धे व उनके कर्मियों की जीवन शैली, आवास के छोटे-बड़े आकार, स्वतंत्र मुद्रा एवं विपणन प्रणाली, लिपि का प्रयोग, यातायात के साधन, अनेक धर्मानुयायियों का साथ-साथ सहिष्णुता के साथ रहना और राजकीय सत्ता का सामीप्य आदि विशिष्ट लक्षण विद्यमान होते हैं। प्राचीन भारतीय नगरों में अनेक नगर राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक महत्व के केन्द्र बनें। इनका विषद् वर्णन प्राचीन साहित्य, अभिलेखों एवं विदेशी यात्रियों के वृतांत से प्राप्त होता है। पुरातात्विक अन्वेषण व उत्खननों से भी इसकी पुष्टि होती है।

भारत में नगरों के उद्‌भव एवं विकास की प्रक्रिया अत्यन्त प्राचीन है। 3000 ई0पू0 द्रविड़ व प्रोटो-आस्ट्रेलाइड मूल के निवासियों ने सिन्धु घाटी की सभ्यता में नगरीय प्रणाली का सफलतम् प्रयोग किया। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो, कालीबंगा, लोथल, बणावली व धौलावीरा आदि पुरास्थलों पर उच्चस्तरीय नगरीय संस्कृति के प्रमाण स्पष्टतया परिलक्षित होते हैं। धौलावीरा के उत्खनन के परिणामस्वरूप ज्ञात हुआ है कि यहाँ के नगर एक निश्चित प्रणाली के आधार पर बने थे। नगर गढ़ी व रिहायशी में विभाजित क्षेत्र थे। गढ़ी को ऊंचाई पर बनाने के पीछे सम्भवतः उसे अधिक महत्व दिये जाने की भावना रही होगी। मोहनजोदड़ो की गढ़ी में पुरोहितावास, समाधि स्थल, अन्नागार, सभागार, विशाल स्नानागार जैसी वृहद् स्मारकों के ढांचे उत्खनन से प्रकाश में आये हैं। साथ ही सुनियोजित ढंग से निर्मित एक तल्ले और द्वितल्ले भवनों की बहुलता दिखलायी पड़ती है। भवनों के मध्य आँगन तथा चारों तरफ कक्ष निर्मित किये जाते थे। नगरों में भवन, सड़क और नालियों को पकी ईंटों से निर्मित किया जाता था। सड़क समकोण पर काटती थी, और पूरा नगर छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त था। सिन्धु घाटी

* प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ. प्र.) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सभ्यता में स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता था। रात्रि के समय मार्गों पर प्रकाश की व्यवस्था मशालों के माध्यम से की जाती थी। चन्हुदडों से मनका बनाने का कारखानों का अवशेष प्राप्त हुआ है। उद्योग-धन्धों को भी नगरीय प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। हड़प्पा से श्रमिकावासों के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं। इस सभ्यता ने कुम्भ कला, मूर्ति कला, मुहर निर्माण, ईंट निर्माण, धातु कर्म, समान फलकों का उत्पादन, जहाज निर्माण इत्यादि क्षेत्रों में दक्षता प्रदान की। नगर विन्यास में लोथल का गोदीबाड़ा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विदेशी व्यापार का सिन्धु घाटी की अर्थ व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान था। विशाल अन्नागार के आधार पर विद्वानों का विचार है कि सिन्धु घाटी के उत्कृष्ट नगरीकरण का कारण सुदृढ़ कृषि व्यवस्था थी। वृक्ष पूजा, सर्प पूजा, पशु पूजा, अग्नि पूजा के साथ-साथ उर्वरा की देवी मातृदेवी व नगर देवता पशुपति नाथ की पूजा की जाती थी। इतिहास में इस काल को प्रथम नगरीकरण के रूप में जाना जाता है।

सिन्धु घाटी सभ्यता के पतन के पश्चात भारतीय उपमहाद्वीप में अनेक आंचलिक संस्कृतियों (सिन्धु घाटी में झूंकर, राजस्थान के बनास, मध्य प्रदेश के कायथा व महाराष्ट्र में जोर्वे) का उद्भव हुआ, किन्तु यहाँ नगरीय विभिन्नताओं का अभाव था। वैदिक काल में नगरीकरण के तत्व तो स्पष्ट रूप से दिखलायी नहीं पड़ते हैं, किन्तु उत्तर वैदिक, जिसे चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति व भारत में लौह आगमन का समकालीन माना जाता है, ने नगरीय प्रणाली के लिये एक आदर्श पृष्ठभूमि अवश्य तैयार की।

वैदिक साहित्य में उल्लेख है कि आर्यों द्वारा वैश्वानर (अग्नि) एवं श्याम अयस् (लौह) की सहायता से दोआब के घने वनों का सफाया कर कृषिजन्य भूमि का विस्तार सदानीरा (गण्डक) नदी तक किया गया। उत्खननों से इस सम्पूर्ण क्षेत्र में बड़ी मात्रा हल के लौह फलक, दरौंती, कुल्हाड़ी इत्यादि कृषिजन्य उपकरणों के अवशेष विभिन्न प्रकार के अन्नकणों के साथ मिले हैं, जो कि बढ़ते हुए कृषि उत्पादन को दर्शाते हैं, जिससे अर्थव्यवस्था विकसित हुई। नवीन अस्त्र-शस्त्रों के साथ-साथ उन्हें धारण करने वाले क्षत्रिय वर्ग का भी प्रादुर्भाव हुआ, जिससे राजनीति में शक्तिशाली जनपदों की उत्पत्ति हुई। छठी शताब्दी ई0पू0 में षोडस महाजनपद इसी के परिणाम थे। सत्ता के कई नये केन्द्र प्रकाश में आये जिससे नगरीकरण की प्रक्रिया बलवती हुई। कृषि एवं गैर कृषि उत्पादों में क्रान्तिकारी वृद्धि के फलस्वरूप निजी सम्पत्ति की अवधारणा दृढ़ हुई, आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार फलने-फूलने लगा, परिणामस्वरूप नगरों में आदान-प्रदान की व्यवस्था के स्थान पर मौद्रिक व्यवस्था का आगमन हुआ। तत्कालीन पालि ग्रन्थों में 60 से अधिक नगरों के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है, जिनमें बौद्ध संसार के प्रमुख छः नगर -काशी, चम्पा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, साकेत व राजगृह थे। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में सात पावन नगर- मथुरा, मायापुरी, काँचीपुरम्, दारावती, अयोध्या व काशी थे।

नगरीकरण की द्वितीय प्रक्रिया महाजनपद काल से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस काल से सम्बन्धित उत्तरी काली पालिश वाली मृदभाण्ड (NBPW) संस्कृति के अब तक सात सौ से अधिक स्थल पहचाने जा चुके हैं। इनमें अधिकांशतः नवीन नगरों के लक्षणयुक्त हैं। प्राचीन जैन व बौद्ध साहित्य में सोलह महाजनपदों का उल्लेख है, जिनमें प्रत्येक की अपनी राजधानी व प्रमुख नगरियां थीं। इन्ही में राजगीर, उज्जैयनी, विराटनगर, पोतना, असिन्धवन्त, अहिच्छत्रा, कौशाम्बी, पावापुरी, चम्पानगरी प्रमुख थीं। नगरों की सुरक्षा हेतु चहारदीवारी एवं परिखा बनाई जाती थी। कौशाम्बी एवं राजगृह के पुराने स्थलों में उत्खनन के दौरान इस प्रकार की प्रस्तर निर्मित रक्षा दीवाल के अवशेष मिले हैं। कौशाम्बी तथा राजघाट आदि नगरों में स्वच्छता हेतु ढकी व खुली सार्वजनिक नालियों का प्रयोग बहुतायत से किया जाता था। इस काल के नगरों में अनेक भवनों में स्वच्छता एवं सफाई की दृष्टि से मृत्तिका वलय एवं सछिद्र घड़ों को जोड़कर सोख्ता गड्डों का निर्माण किया जाता था। उस समय की राजशाही परम्परा के अनुरूप शक्तिशाली राजवंशी में सर्वोच्चता हेतु संघर्ष होना एक साधारण बात थी। इसके कारण नृपों को अधिकाधिक सेना रखकर उसकी युद्ध एवं शान्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के प्रयास किए जाते थे। इसके कारण अनेक सीमान्त दुर्गों की रचना हुई। महाभारत में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख मिलता है। पाणिनीकृत अष्टाध्यायी (पांचवी शताब्दी ई0पू0) में कापिशी, तक्षशिला, हस्तिनापुर, संकाश्य व काम्पिल्य नगरों में कोष्ठागार, भण्डागार, राजसभा, गुप्तचर एवं संचर (सड़क) आदि सम्पन्नता के रूप में वर्णित है। निरन्तर जल व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से अधिकांश नगरों की स्थापना नदी तटों के समीप ही हुई। श्रृंगवेरपुर, अयोध्या, साँची, माध्यमिका, दत्तामित्री, प्रतिष्ठान व धारणीकोड़ा क्रमशः कालिंदी, सरयू, वेत्रावती, चर्मण्वती, सिन्धु, गोदावरी व कृष्णा नदियों के तट पर विकसित हुए। पाटलिपुत्र सोन व गंगा के संगम

पर होने के कारण जल-दुर्ग के रूप में प्रसिद्ध हुआ और लगभग एक हजार वर्षों तक विभिन्न राजवंशों की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित रहा। डी0डी0 कोसाम्बी के अनुसार पाटलिपुत्र चौथी शती ई0पू0 में विश्व का सबसे बड़ा नगर था। कालान्तर में यह गौरव कन्नौज को प्राप्त हुआ। नगरों के विकास व नगरीकरण के लिए निम्नलिखित कारकों को उत्तरदायी माना जा सकता है।

नगरों में स्थित उद्योग धन्धों की तकनीक में क्रमशः गुणात्मक सुधार के परिणामस्वरूप विशिष्टीकरण प्रारम्भ हुआ। व्यापारिक संगठन अर्थात् पूग (श्रेणी) ने इसे उच्च स्तर तक पहुँचाया। प्रत्येक प्रमुख शिल्प का संघ स्थापित था। गोवर्धन (नासिक) शिल्पी श्रेणियों का बड़ा केन्द्र था। मथुरा का रेशमी वस्त्र 'शतक', विदिशा की हस्तिदंत पर कारीगरी, लाट की रेशमपट्टिका, उरैयूर की रंगकारी व मदुरै के सूती वस्त्र विख्यात उत्पादों में थे। इसी प्रकार कई अन्य नगर भी अपने विशिष्ट उत्पादों के लिए जाने गए। अनेक नगर महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों पर चुंगी-चौकियों एवं बाजार का कार्य करते थे। तक्षशिला, कौशाम्बी-ताम्रलिप्ति, श्रावस्ती-पाटलिपुत्र, उज्जैन-प्रतिष्ठान, चम्पा-राजघाट- कौशाम्बी प्रमुख व्यापारिक मार्गों में थे। ग्रीक इतिहासकारों ने ऐसे 12 नगरों का उल्लेख किया है, जिनकी अपनी मुद्राएं प्रचलन में थीं। महिष्मती, त्रिपुरी, उज्जैनी, विदिशा, माध्यमिका ऐसे ही स्वायत्तशासी नगर थे। उत्खननों से ज्ञात होता है कि इन नगरों में स्वर्ण, रजत, ताम्र एवं सीसे आदि सिक्कों का मुद्रण होता था।

दक्षिण भारत में चोल, चेर, पांडय राजवंशों के अधीन अनेक पोतरूपी नगरों का विकास हुआ, जहां अलभ्य वस्तुओं का आयात- निर्यात रोमन साम्राज्य से होता था। बारबेरिकम, बैरीगाजा (भरूकच्छ), सोपारा, कलियाना (कल्यान), कारावार, नौरा, तोण्डी, मुजरिस, पोड्यूका (अरिकामेडु), मुश्री, पौलूरा (दन्तपुरा), ताम्रलिप्ति (तामलुक) प्रमुख पत्तन नगर थे। इन नगरों का उल्लेख टालेमी, प्लीनी एवं पेरिप्लस ग्रन्थ के रचयिता अज्ञात नाविक ने भी किया है। पुरातत्वशास्त्रियों द्वारा अरिकामेडु उत्खनन से रोमन सिक्के एवं एम्फोरे बर्तन आदि प्रकाश में आये हैं। संगम साहित्य में कावेरीपट्टिणम् के विषय में जानकारी प्राप्त होती है कि इस नगर में अनेक मंजिलों के भवन निर्मित थे। यहाँ के बाजार व्यक्तियों एवं कोलाहल से भरे होते थे।

नगरों में नागरिक जीवन कई सन्दर्भों में उन्मुक्त था। यहां जाति-पांति की बेड़ियां ग्रामीण जीवन की भांति कठोर न थीं। जीविकोपार्जन के अनेक साधन यथा वाणिज्य-व्यापार, मजदूरी, नाटक-कला-मनोरंजन आदि उपलब्ध थे और इनके पारिश्रमिक का भुगतान सिक्कों में होता था। कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में अनेक बार 'वार्ता' का प्रयोग किया गया है, जिसके अन्तर्गत शूद्र भी पशुपालन, शिल्पकला, सेवावृत्ति कर अपनी जीविका चला सकते थे। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इण्डिका में छः विभिन्न समितियों का उल्लेख किया है, जो उपभोक्ताओं एवं विदेशी नागरिकों के हितों के संरक्षणार्थ नगरों में कार्य करती थीं। नगरों में अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह होते थे। इस कारण वर्णसंकर की समस्या नगरों में बड़ी जटिल थी। गुप्तोत्तर काल में जाति प्रगुणन समाज का सबसे अभिलक्षण बन गया था। इन्हे सामाजिक स्तर पर हेय समझा जाता था, परन्तु इनके बिना नगरीय समाज का काम भी नहीं चल सकता था। अतः उन्हे नगर परिधि से बाहर ही रहना पड़ता था। चीनी यात्रियों फाह्यान ने अनिर्वासित शूद्रों, पंचमकारों और अछूत का बड़ा मार्मिक विवरण दिया है। उनके अनुसार इस वर्ग के लोग जब भी नगरों में प्रवेश करते थे तो उन्हे अपने आगमन की पूर्व सूचना देनी पड़ती थी। इसी प्रकार नगरों में रहने वालों को भी मनमाने स्थानों पर बसने की आज्ञा न थी। समान व्यवसायकर्मियों को एक ही मुहल्ले में रहना होता था। अग्नि-प्रयुक्त कर्मकार को राजमहल, शास्त्रागार, अन्नागार एवं महत्वपूर्ण भवनों से दूर बसाया जाता था। नगर मर्यादान्तर्गत नट, नर्तक, वादक, रंगोपजीवक आदि कलाकार नगरों से बाहर रहते थे। नगरों में आने के लिए उन्हे अनुमति लेनी पड़ती थी।

नगरों में सम्पन्न वर्ग के नागरिकों का जीवन भी हमें विदेशी पर्यटकों के संस्मरणों के माध्यम से ज्ञात है। उच्च वर्ग के लोग प्रायः पालकी या फिर अश्व रथ पर आरूढ़ होते थे। गुप्तकालीन ग्रन्थ कामसूत्र में नागरिक से अपेक्षा की है कि वह सुसंस्कृत हो। इसी पुस्तक में गणिकाओं के लिए भी मार्गदर्शक है कि उन्हे छियासी प्रकार की कलाओं में पारंगत होना चाहिए। नगर में गणिकाओं की उपस्थिति महाजनपद युग से देखने को मिलती है। वैशाली के नगर वधू के रूप में आम्रपाली उस युग की सर्वाधिक चर्चित गणिका थी। बुद्ध के प्रभाव में आकर उसने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था। इसी प्रकार उज्जैयिनी नगर की गणिका बसन्तसेना की कथा हमें शूद्रककृत नाटक मृच्छकटिकम में मिलती है। कालिदास द्वारा विदिशा नगरी की गणिकाओं वर्णन किया गया है। दक्षिण भारत में यही स्थिति मन्दिरों में कार्यरत् देवदासियों की थी।

नगरों को सौन्दर्यीकृत करने हेतु कृत्रिम वन, उपवन, वारियन्त्र, ऊंची अट्टलिकाएं, प्रेक्षागृहों-रंगशालाओं आदि का निर्माण कराया जाता था। मिलिन्दपन्हों में वर्णन है कि राजा मिलिन्द ने अपनी राजधानी का सौन्दर्यकरण कराया। इसी प्रकार खारवेल

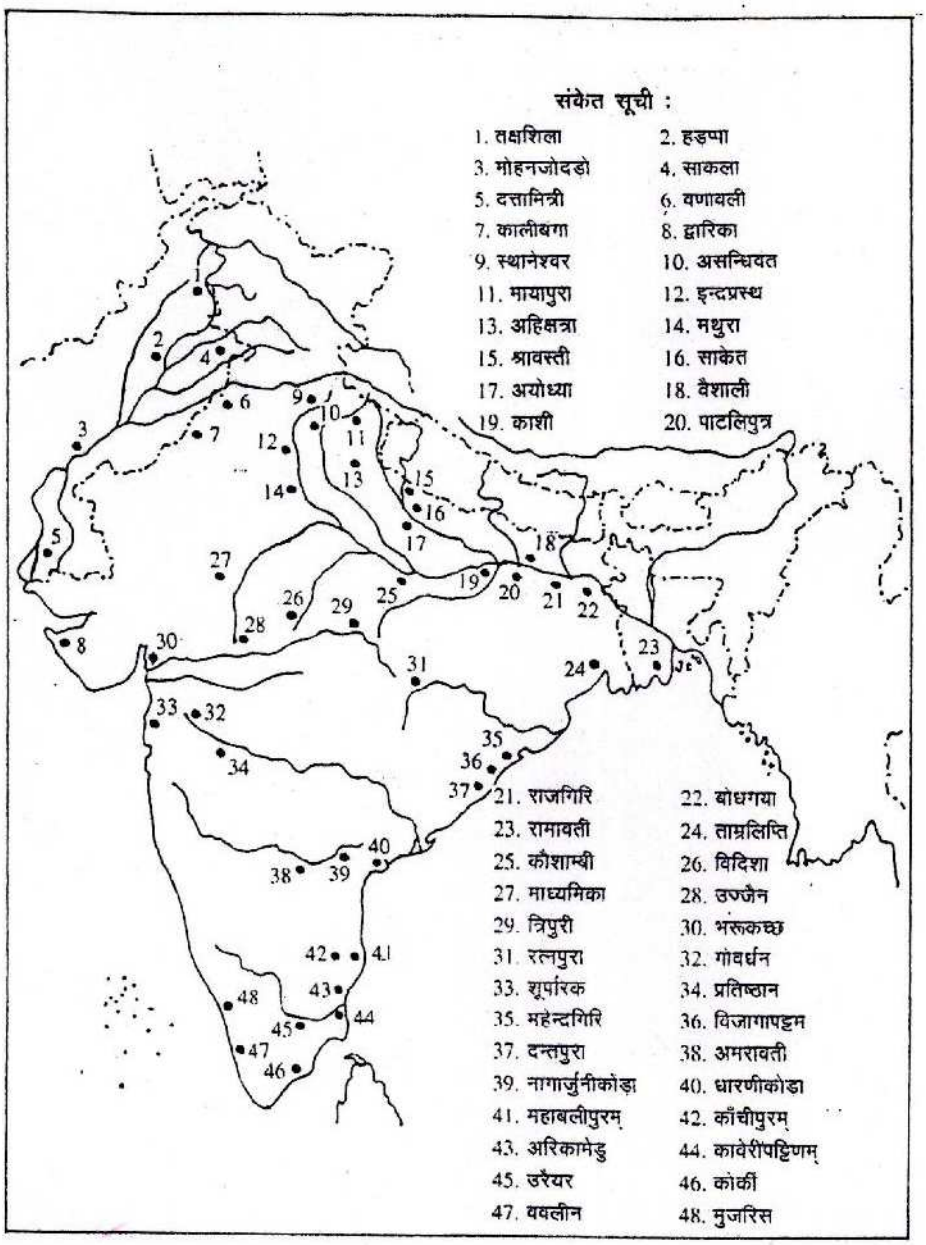

मानचित्र : प्राचीन भारत के प्रमुख नगर

के हाथीगुम्फा अभिलेख में राजा द्वारा कलिंग नगरी के उद्धार का विवरण दिया है। प्राचीन भारत में अनेक नगर अपने समय के प्रमुख शिक्षा केन्द्र के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। नगरीय प्रक्रिया में सामाजिक महत्व का भी अतिशत महत्वपूर्ण स्थान है।

राजपरिवारों एवं धनाढ्य वर्ग से मिलने वाले प्रभूत दान के कारण धर्म में सार्वजनिक एवं सर्वग्राही स्वरूप का विकास हुआ। फलतः अनेक नगर न केवल बौद्ध, जैन, शैव, वैष्णव, शाक्त धर्मों के प्रबल केन्द्र बने, वरन् सम्बन्धित धर्मों की कला एवं शिक्षा हेतु भी प्रसिद्ध हुए। राजगृह, वैशाली, पाटलिपुत्र व सम्भवतः जालंधर नगर क्रमशः चार बौद्ध संगीतियों के केन्द्र बने। इसी प्रकार मथुरा, सांची, भरहुत, धान्यकटक, विजयपुरी, श्रीपुर, कण्ट-शैल (घण्टसाल) आदि प्राचीन नगर बौद्ध स्तूपों, विहारों

एवं मूर्तिकला के निर्माण हेतु ख्यातिलब्ध थे। शक-कुषाण काल में मथुरा क्षेत्र जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण कला केन्द्र के रूप में पल्लवित हुआ। जैन धर्म के लिए पाटलिपुत्र, बल्लभी, श्रवणबेलगोला आदि प्रमुख शहर थे। ब्राह्मण धर्म के अनेक सम्प्रदाय एवं उपसम्प्रदाय विकसित हुए। उज्जैन शैव धर्म का गढ़ था। गुप्त युग के नचनाकुठरा, भुमरा के शिव व पार्वती मंदिर प्रकाश में आए हैं। ह्वेनसांग ने स्थानेश्वर को शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र बताया है। काशी व कांची वैष्णव धर्म के लिए प्रसिद्ध थे। गुप्तकाल में भीतरगांव, उच्चकल्प, देवगढ़, ऐरिण में विष्णु मंदिरों का निर्माण हुआ। शक्ति पूजा के लिए बंगाल में महास्थान व पहाड़पुर नगर प्रसिद्ध थे। ईसा की आरम्भिक शतियों में मग ब्राह्मणों ने सूर्य पूजा का विस्तार किया। तदोपरान्त सूर्य पूजा के कई केन्द्र बने, जहां विशाल सूर्य मंदिर एवं प्रतिमाएं बनाई गईं। इनमें मूल स्थान (मुल्तान) मंदसौर (इन्दौर), गोपादि (ग्वालियर), मार्तण्ड (कश्मीर) प्रमुख थे।

उपर्युक्त क्रमवार विवेचन व संश्लेषणों से स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि प्राचीन भारत में आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई और नए-नए नगर अस्तित्व में आए। बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नगरों के महत्व को बढ़ाया और नगरीय संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

शर्मा, रामशरण (1995)- *भारत के प्राचीन नगरों का पतन,* नई दिल्ली

बाशम, ए0 एल0 (1997)- *अद्भुत भारत,* आगरा

शर्मा, जी0 आर0 (1969)- *एम्सकेवेशन ऐट कौशाम्बी 1949-50 मेमोयर्स ऑफ आर्किलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया (नं0-74),* मैनेजर पब्लिकेशन्स दिल्ली

राय, टी0 एन0 (1980)- *ए0 स्टडी ऑफ नार्दन ब्लेक पालिस्ट वेयर कल्चर,* नई दिल्ली

चाइल्ड, गार्डन बी0 (1950)- *द अर्बन रिवॉल्यूशन,* ग्रेगरी एल0 पास्सेल (सं0) एंशिएंट सिटीज ऑफ इण्डस

घोष, ए0- *द अर्ली सिटी इन हिस्टारिकल इण्डिया*

पिग्गट स्टुअर्ट- *सम एंशिएंट सिटीज ऑफ इण्डिया*

शर्मा, आर0 एस- *मैटेरियल कल्चर एन सोशल फॉरमेशन इन एंशिएंट इण्डिया*

सिद्धार्थ, के0 (2012)- *इतिहास एवं धरोहर (मानचित्रों द्वारा),* नई दिल्ली

गौड़, आर0 सी0 (1983)- *एम्सकेवेशन्स एट अतीरंजीखेड़ा,* दिल्ली।

लाल, बी0 बी0 (1954-55)- *एम्सकेवेशन्स एट हस्तिनापुर एण्ड अदर एक्सप्लोरेशन्स इन द गंगा एण्ड सतलज बेसिन,* ए0आई0 10, 11

शर्मा, वाई0 डी0- *एक्सप्लोरेशन ऑफ हिस्टॉरिकल साइट्स,* ए0आई0-9

सिन्हा, के0 के0- *एम्सकेवेशन एट श्रावस्ती*

नारायण, ए0 के0 तथा टी0एन0 राय- *एक्सकेवेशन एट राजघाट* 1, 2, 3 व 4

श्रीवास्तव, के0 एम0- *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु*

सिन्हा, बी0 पी0 व सीताराम राय- *एक्सवेशन एट वैशाली (1958-62)*

सिन्हा, बी0 पी0 व आदित्य नारायण- *पाटलिपुत्र एक्सवेशन्स,* पटना।

पाण्डे, जयनारायण (1983)- *पुरातत्व विमर्श,* इलाहाबाद

आई0 ए0 आर0 (1953-54 से 2000-2001)- *आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* नई दिल्ली

एनुअल रिपोर्ट्स ऑफ आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,103-105
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 01 मार्च 2016

मानवमात्र के कल्याण में गीतोक्त भक्ति की उपयोगिता

मधुकर मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मानवमात्र के कल्याण में गीतोक्त भक्ति की उपयोगिता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मधुकर मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा लोक-कल्याण हेतु अर्जुन को उपदेशित किया गया है कर्त्तव्य-शास्त्र है। गीता के अट्ठारह अध्यायों में प्रमुख रूप से 'कर्मयोग', 'भक्तियोग' और 'ज्ञानयोग' का विवेचन किया गया है। यह विवेचना मुख्यरूप से प्रथम छः अध्यायों में की गई है। द्वितीय मुख्यमार्ग ज्ञानयोग के रूप में चिन्तन का विषय बनाया गया इसे ही सांख्ययोग अथवा कर्मसंन्यासयोग कहा जाता है। मनीषियों का एक प्रबल मत यह भी है कि गीता में प्रतिपादित यही दो योग है जिनके माध्यम से मनुष्य परमश्रेय को प्राप्त हो सकता है।[1] इन दोनों में किसी एक का भी आश्रय लेकर मानव जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है अतः दोनों वस्तुतः एक ही हैं, पृथक्-पृथक् आकृति के कारण दो दिखाई पड़ते हें।[2] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अधिकारी की दृष्टि से तो दोनों भिन्न-भिन्न योगमार्ग है परन्तु लक्ष्य की दृष्टि से दोनों में अभेद है। समीक्षकों ने, भाष्यकार और टीकाकारों ने इस प्रसंग पर बहुत व्यापक और पृथक्-पृथक् विचार प्रस्तुत किया है। किसी मत में तो अर्जुन को कर्मयोग का अधिकारी बताते हुए कर्मफल से अनासक्त होने का कथन किया गया परन्तु अन्य भाष्यकारों ने यह स्पष्ट किया है कि अर्जुन का अधिकार कर्मयोग में है ज्ञानयोग में नहीं।[3] कौन व्यक्ति कर्मयोग का और कौन ज्ञानयोग का अधिकारी है दोनों के इस विवेचन में भी गीता का स्पष्ट मत है। इसका उल्लेख भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश आरम्भ करते समय द्वितीय अध्याय में दिया है।[4] अतः यह कहा जा सकता है कि किन्हीं अधिकारियों के लिए तो कर्मयोग प्रासंगिक है और अन्य में से किसी के लिए ज्ञानयोग की प्रासंगिकता है। साधना की परम ऊँचाई पर आरूढ़ आत्मा और अनात्मा के परम विवेक से युक्त परमहंसों का विषय ज्ञानयोग है और फल की निष्कामता कामसंकल्पवर्जना, कर्मफला-संगहीनता जैसी गम्भीर शर्तों के साथ कर्म करने वालों के लिए कर्मयोग विहित है। दोनों साधनाएँ निःसन्देह महनीय होने के साथ ही दुर्गम हैं। यही दुर्गमता इन दोनों की सार्वजनीन प्रासङ्गिकता में और सर्वग्राह्य और सर्वसाध्य होने में न केवल प्रश्नचिन्ह खड़ा करते हैं अपितु सर्वसामान्य के लिए इसकी दुरूहता सतत् बनाये भी रहते हैं। साधक के समक्ष ये दोनों मार्ग जटिलता

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के साथ उपस्थित होते हैं जिसके कारण परम् श्रेय की प्राप्ति में प्रवृत्ति न होकर मानव मन प्रेय की ओर सतत् आकृष्ट होता है। मनुष्य शनैः शनैः प्रेय के जटिल बन्धनों में फँसता हुआ जन्म और मृत्यु के बन्धन में पड़ा रहा है।

अतः उपर्युक्त दोनों मार्ग जनसामान्य के लिए प्रायः दुर्गम, दुर्बोध और अपेक्षाकृत अप्रासंगिक जैसे हो गये हैं। कर्मयोग में एक ओर जहाँ साधन की निष्कामता के रूप में भारी कसौटी है वहीं ज्ञानयोग में दूसरी ओर सांख्य और वेदान्त जैसे शास्त्रीय पक्ष हैं जो सर्वसुलभ नहीं हो सकते हैं। दुःखत्रय से बचने के लिए मनुष्य तभी प्रवृत्त होता है जब वह त्रिविध दुःखों के प्रहार से मर्माहत होता है।[5] भगवद्गीता का उपदेश भी इसी प्रकार की मनःस्थिति में हुआ है।[6] ऐसी परिस्थिति में जबकि दुःखार्त व्यक्ति की बुद्धि दुर्बलतायुक्त हो, विवेकदुविधा में हो, मार्ग की किंकर्तव्यविमूढ़ता उपस्थित हो और शरीर तथा इन्द्रियाँ शोक विह्वल हों तब ज्ञानयोग और कर्मयोग की यह प्रासंगिकता अपने आप में प्रश्नगत हो उठती है। ऐसी स्थिति में तो किसी कृपालु की आवश्यकता होती है जो आर्त्तहृदय की दुर्बलता को दूर करने के लिए उपस्थित हो। अतः भगवद्गीता में प्रतिपादित भक्तियोग दुःखसन्तप्त मनुष्यों के लिए इसीलिए परम् प्रासंगिक है। इस भक्तियोग का प्रमुख रूप से विवेचन भगवद्गीता के मध्य सावतें अध्याय से प्रारम्भ होकर बारहवें अध्याय तक हुआ है इसीलिए समीक्षकों के द्वारा भक्तियोग को गीता का हृदय कहा जाता है। कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का यह विवेचन जो समीक्षकों के द्वारा भगवद्गीता के प्रथम, द्वितीय और तृतीय षट्कों में किया गया है यह विभाजन बहुश्रुत और बहुमान्य है। कुछ समीक्षकों का मानना है कि कर्मयोग और ज्ञानयोग के मध्य में भक्तियोग के होने के मूल में एक और रहस्य है। वह यह कि भक्ति के द्वारा साधकों की प्रवृत्ति कर्मयोग और ज्ञानयोग में से किसी और में भी हो सकती है। भक्ति के बिना न कर्मयोग और न ही ज्ञानयोग की सिद्धि हो सकती हैं। भक्ति कर्म और ज्ञान दोनों के मध्य का सेतु भी है तथा स्वतन्त्र आधार भी है। भक्तियोग का सूत्रपात तो द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक से ही हो जाता है।[7] यह प्रसंग बहुत ही मार्मिक है कि भक्तियोग का यह विवेचन भगवान् श्रीकृष्ण ने विगत् में तीन बार किये गीता के उपदेशों के अवसरों पर नहीं किया था। अर्जुन को उपदेश देते समय परात्पर परमात्मा के सगुण अवतारी यशोदानन्दन अशरणशरण भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रथम बार किया है और प्रमाणरूप में उन्होंने स्वयं इस बात का कथन किया है- ''लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।''- (गीता- 3/3) अर्थात् हे निष्पाप अर्जुन! मैंने आज के पूर्व भगवद्गीता के उपदेशों में केवल कर्मयोग और ज्ञानयोग का उपदेश दिया है लेकिन आज मैं कलयुग के आरम्भ की पूर्ववेला पर यह भक्तियोग तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ और तुम्हारे माध्यम से समस्त मानवमात्र को अधिकारी भेद से रहित इस भक्तियोग का उपदेश देना चाहता हूँ। द्वितीय अध्याय का यह सातवाँ श्लोक भगवद्गीता की पूर्णता तक इस भक्तियोग का प्रतिपादन करता है। अठारहवें अध्याय के चौवनवें श्लोक से पुनः भक्ति का विवेचन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश को पूर्ण किया है।[8] अन्ततः प्रपत्ति का विवेचन करते हुए इसके चरम प्रतिपाद्य मोक्ष का प्रतिपादन करते हैं।[9] यह भक्ति भी किसी कर्मकाण्ड में पर्यवसित नहीं होती है अपितु भक्तिभावना के द्वारा ही परमात्मा की शरण में जाने का उपदेश करती है।[10] इस भक्ति के स्वरूप का विवेचन भगवद्गीता में शरणागति के रूप में हुआ है।

भक्ति की दृष्टि से विचार किये जाने पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भक्ति ही इस गीताशास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य है। किसी भी ग्रन्थ का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वहीं होता है जो उसके आरम्भ से प्रतिपादित होता हुआ अन्त तक गतिमान होकर पूर्णता को प्राप्त होता है। भक्ति का यह विवेचन द्वितीय अध्याय के सातवें श्लोक से आरम्भ होकर मध्य के छः अध्यायों में प्रमुखतः से प्रतिपादित हुआ पुनः अठारहवें अध्याय के अन्त में उपसंहृत हो रहा है। भक्ति में उपसंहृत भगवद्गीता के इस श्लोक के बाद गीतोक्त विषय का विवेचन गतिमान नहीं होता अपितु सम्पूर्ण हो जाता है।[11] इस श्लोक के बाद भगवान् व्यास ने गीताशास्त्र के अधिकारी का वर्णन करते हुए यह स्पष्टरूप से उल्लेख किया है कि अभक्त, ईर्ष्यालु, अश्रद्धालु इस गीताशास्त्र का अधिकारी नहीं है। इसकी महत्ता का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है कि जो पुरुष भक्तों में ग्रन्थतः और अर्थतः इस श्रेष्ठ शास्त्र का आधान करेगा वही सर्वश्रेष्ठ भक्त और परमश्रेय का पात्र होगा।[12] इस प्रकार इसमें अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रीमद्भगवद्गीता का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है। मीमांसा का यह प्रमुख सिद्धान्त भी है कि उपक्रम से लेकर उपसंहार तक ज्ञान कराने के लिए बार-बार उपदेश किया जाने वाला विविध तर्कों से प्रशंसापूर्वक् अपूर्व फल का प्रतिपादक ही मुख्य तात्पर्य का निर्णय करने वाला होता है- उपक्रमोपसंहारौऽभ्यासोपूर्वता फलम। अर्थवादोपपत्ति च लिङ्गम् तात्पर्य निर्णये।।

कर्तव्य की पूर्ति भक्ति के अभाव में सर्वथा असम्भव है। इसीलिए भगवान् ने अर्जुन को तब तक गीता उपदेशित नहीं

किया जब तक उनमें भक्ति का सूत्रपात नहीं हुआ। कोई भी कर्म भक्ति बिना सम्भव ही नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि जब कोई कार्य श्रद्धा एवं भक्ति द्वारा निष्पादित किया जाता है तभी फलीभूत होता है अन्यथा नहीं। वर्तमान समय में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, दुराचार आदि में वृद्धि इसीलिए हो रही है क्योंकि मनुष्यों में आज अपने कर्तव्य के प्रति भक्ति नहीं है।

सन्दर्भ सूची

[1]लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साङ्ख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।। (गीता, 3/3)

[2]सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विदन्ते फलम्।। सत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।। (गीता, 5/4-5)

[3]शोकमोहाविष्टत्वादिधर्मैर्विचार्यमाणे नैतत्लक्षणं त्वयि दृश्यते। ततस्तवकर्मण्येवाधिकारो न तु/ ज्ञाने नापि च संन्यासे। (शङ्करानन्दी व्याख्या, 2/47, पृ0 109)

[4]कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। (गीता, 2/47)

[5]दुःखत्रयाभिघातात् जिज्ञासा तदपघातके हेतौ। दुष्टे सापार्था चेत् नैकान्तात्यन्ततोदभावात्।। (सांख्यकारिका-1)

[6]तं तथा कृपयाऽऽविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्। विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः।। (गीता, 2/1)

[7]कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः। यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2/7)

[8]ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।। (गीता, 18/54)

[9]सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता, 18/66)

[10]तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।। (गीता, 18/62)

[11]सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। (गीता, 18/66)

[12]इदं ते नाऽतपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन्। न चाऽशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।। य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। (गीता, 18/67-68)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
सार्क ISSN 2347 - 8373

अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 4,106-110
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जनवरी 2016

अकबरकालीन काबुल सूबा

अर्चना सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अकबरकालीन काबुल सूबा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका सार्क में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका सार्क के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। सार्क में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण काबुल क्षेत्र बाबर के उत्थान केन्द्र बिन्दु होने के साथ-साथ अनेक जुझारू योद्धाओं एवं कुशल प्रशासकों का जन्म व कर्मस्थली रही है। पश्चिमोत्तर का सीमान्त प्रान्त होने तथा मुगलों की पैतृक स्थान होने के कारण काबुल की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक गतिविधियाँ सदैव हिन्दुस्तान को प्रभावित करती रही। अकबर ने इस क्षेत्र की राजनीतिक आवश्यकताओं तथा भौगोलिक संरचना को ध्यान में रखकर ही इस सूबे के रूप में संगठित करने का कार्य किया।

काबुल के भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में अपनी आत्मकथा ''बाबरनामा'' में मुगल शासक बाबर ने हिन्दुस्तान और खुरासान के बीच दो बंदरगाहों का उल्लेख किया है जिसमें एक काबुल तथा दूसरा कन्धार हैं- काबुल मजबूत प्रदेश है। यहाँ पर शत्रुओं के आक्रमण की सम्भावना कम रहती हैं। सैनिक दृष्टि से सुरक्षित होने के कारण बाबर ने काबुल को ही अपने अभियानों का संचालन केन्द बनाया। दूसरे हिन्दुस्तान पर नजर होने के कारण बाबर के लिये काबुल महत्त्वपूर्ण स्थान था क्योंकि हिन्दुस्तान की तरफ से काबुल के लिये चार रास्ते हैं, एक खैबर पहाड़ से होकर, दूसरा बंगश की तरफ से, तीसरा नगज की ओर से तथा चौथा फरमूल की तरफ से जाता है। इसलिये सैन्य अभियानों का संचालन इस क्षेत्र से ज्यादा आसान था।

काबुल एक छोटा सा राज्य था तथा इस राज्य का अधिकतम विस्तार पूर्व से पश्चिम की ओर था। यह राज्य चारों ओर पहाड़ों से घिरा हुआ था। नगर के दक्षिण-पश्चिम में छोटी पहाड़ी थी इस पहाड़ी के ऊपर काबुल के हिन्दुशाह वंश के शासक ने किला बनवाया था इसीलिये इस किले को ''शाह काबुल'' कहा जाता था।[1] शाह काबुल दुर्रे के तंग रास्ते से आरम्भ होता है तथा देहे याकूब के तंग मार्ग पर जा कर समाप्त हो जाता था।

* पूर्व शोध छात्रा, मध्य एवं आधुनिक इतिहास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं सार्क सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

काबुल का राज्य 14 प्रदेशों में विभाजित था। ये प्रदेश 'तुमान' नाम से जाने जाते थे।[2] समरकन्द बुखारा और इन प्रदेशों के पड़ोसी स्थान जो एक बड़े जिले अथवा प्रान्त के साथ सम्बद्ध होते थे, तूमान कहलाते थे। अन्दिजान, काशगर और उसके आस-पास के स्थानों को मिलाकर 'उरचीन' होता था, हिन्दुस्तान में इसे परगना कहा जाता है।

मुगलों के लिये काबुल की राजनैतिक महत्ता का अन्दाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि निवर्सन से पूर्व और बाद में मुगल शासक हुमायूँ का काबुल में विधिवत हस्ताक्षेप बरकरार रहा। समय-समय पर सने काबुल पर नियंत्रण रखने के लिये कई अभियानों का संचालन भी किया।[3] इस दौरान अकबर द्वार भी काबुल राज्य में व्यापक रूचि दर्शाने की बात प्रकाश में आता हैं- इस दौरान मिर्जा कामरान द्वारा (1545ई0) अबकर को काबुल बुलाना तथा मिर्जा अस्करी का अकबर को काबुल भेजना इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि शुरू से ही काबुल के प्रति मुगल शासकों का दृष्टिकोण सजग था।[4]

संभवतः अकबर द्वारा काबुल के प्रति विशेष रूचि लेने के कारण मुगलों की वह नीति भी थी जिसमें मुगल शासक हिन्दुस्तान की सरजमीं पर शासन करते हुये भी काबुल में अपने पाँव जमाये रखना चाहते थे, क्योंकि यह भौगोलिक, आर्थिक एवं प्राकृतिक दृष्टि से भी सम्पन्न क्षेत्र था।

अकबर के शासनकाल में प्रशासनिक पुनर्गठन की प्रक्रिया एक सुव्यवस्थित स्वरूप में पूर्व की गयी। इसी क्रम में बाबर तथा हुमायूँ के शासनकाल में अव्यवस्थित रही प्रशासनिक ईकाई को अकबर ने एकरूपता प्रदान करते हुये उसे व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया। वास्तव में अकबर के शासनकाल में प्रशासनिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण करने की योजना अमल में लायी गई जिसके परिणामस्वरूप सूबों का गठन तथा सूबों में प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की गयी।[5]

प्रशासनिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये ही मुगल अकबर ने काबुल सूबे के गठन की प्रक्रिया सन् 1581 से प्रारम्भ किया।[6] 1602ई0 तक अकबर ने 15 सूबों का गठन कर उनमें एक सी प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित कर दी थी। इनमें एक महत्त्वपूर्ण सूबा काबुल था जिसके अधीन कश्मीर व कन्धार जिले (सरकारों) के रूप में शामिल थे।[7]

1581ई0 में जब अकबर ने काबुल में प्रवेश किया तो वहाँ विद्रोही शासक मिर्जा हकीम ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली। इसके पश्चात् अकबर ने मिर्जा की बहन बख्तुनिशा बेगम को वहाँ का गवर्नर नियुक्त कर दिया। 1581ई0 में मिर्जा की मृत्यु के साथ ही काबुल मुगल साम्राज्य का अंग बन गया और यही से काबुल को एक प्रान्तीय ईकाई के रूप में संगठित करने का कार्य अकबर ने शुरू कर दिया।[8]

शासन व्यवस्था

अकबर द्वारा स्थापित किये गय प्रान्तों की शासन व्यवस्था सर्वथा एक समान थी।[9] सूबों की व्यवस्था हेतु अकबर ने अधिकारियों का वर्गीकरण तथा योग्यतानुसार उन्हें पद व वेतन देने की व्यवस्था सुनिश्चित की।

सूबे का प्रमुख सिपहसलार था जिसके अधीन एक बड़ी सेना होती थी।[10] इसे सूबेदार कहा जाता था। इस सूबे में सम्राट का नुमाइंदा कहा जाता था इसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी।[11] यह केन्द्र प्रतिनिधि रूप में कार्य करता था। यह सूबे में शासन का प्रतिरूप होता था एवं अपने सूबे में शान्ति व्यवस्था बनाये रखना तथा जनता का हित ध्यान में रखना ही उसका प्रमुख कर्त्तव्य था।[12] उसे सभी पक्षों के साथ निष्पक्ष न्याय करने का उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ता था। वह फौजदारी के मुकदमों का फैसला भी किया करता था। सूबेदार गुप्तचर व पुलिस विभाग में अपने विश्वासपात्रों की ही नियुक्ति करता था वह अधीन राज्यों से राज्य कर भी वसूल करता था।

इस पद पर राजकुमार तथा उच्च उमरावों के पुत्र भी नियुक्त किये जाते थे। ऐसी अवस्था में उनके परामर्श के लिये योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति को अतालीक (परामर्शदाता) नियुक्त किया जाता था।[13] सूबेदार के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं होती थी परन्तु एक व्यक्ति की एक सूबे में तीन वर्ष से अधिक नहीं रहने दिया जाता था।

सूबेदार के बाद सूबे में प्रान्तीय दीवान का पद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। जिसकी नियुक्ति दीवान की संस्तुति पर ही की जाती थी। यह प्रान्त की वित्त सम्बन्धी मामलों का प्रमुख होता था।[14] यह प्रान्त के सूबेदार के अधीन ना होकर सीधे केन्द्रीय दीवान के अधीन होता था।

दीवान के विभाग में दो तरह के कर्मचारी थे- (1) केन्द्र दीवान एवं (2) केन्द्र सूबा। इसके अतिरिक्त पेशकार (व्यक्तिगत सचिव) दरोगा, केन्द्रीय दीवान द्वारा नियुक्त किये जाते थे। दीवान-ए-सूबा द्वारा नियुक्त कर्मचारियों में कचेहरी का मुंशी, हुजुर नवीस, सूबा नवीस आदि प्रमुख थे। धर्मादा (मदद्-ए-माश) के लिये दी गयी जमीनों का पर्यवेक्षण भी करता था। कृषि को उन्नति हेतु प्रोत्साहन, आमिलों के कार्यों की जाँच पड़ताल करता था, वह टकसाल की देखभाल भी करता था।[15]

इस प्रकार शक्ति एवं संतुलन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक प्रशासनिक इकाई में दो पदेन व्यक्ति लगभग एक जैसे अधिकारों से सम्पन्न अथवा समकक्ष होते थे। दिवान वित्त सम्बन्धी मामलों के साथ-साथ प्रान्त के आय-व्यय का लेखा-जोखा व प्रान्तीय अधिकारियों के वेतन वितरण का कार्य भी करता था। वह सिपहसलाह फौज, पुलिस तथा प्रशासनिक सेवाओं का अध्यक्ष होता था तो दीवान दीवानी तथा कर विभाग का। दोनों एक-दूसरे के कार्य की निगरानी करते थे।

उपरोक्त सूबेदार व दीवान दोनों के कार्यों से स्पष्ट होता है कि प्रान्त में दो समान्तर एवं एक-दूसरे से स्वतंत्र संगठन थे। प्रान्त में राजस्व कर्मचारी अमल गुजार से लेकर पटवारी, पटेल तक दीवान के अधीन तो फौजदार से लेकर शिकदार व चौकीकार तक सिपहसलार के अधीन थे। इस प्रान्तीय शासन में दैधशासन का मुख्य उद्देश्य दोनों प्रान्तीय अधिकारियों के मध्य संतुलन बनाये रखना था।[16]

काबुल में अन्य प्रान्तों की भाँति सदर तथा काजी का पद एक ही था। और इन दोनों कार्यों का सम्पादन केवल एक ही अधिकारी द्वारा होती थी।[17] काजी प्रान्त के न्याय विभाग का अध्यक्ष होता था वह जिला तथा कस्बों में नियुक्त काजियों के कार्य का निरीक्षण करता था। उसकी सहायता के लिये मुहतसिब, मीर अदल, मुफ्ती आदि होते थे। काजी-ए- सरकार की नियुक्ति काजी-ए-सूबा की संस्तुति पर की जाती थी।[18]

काबुल के प्रशासन तंत्र में महत्त्वपूर्ण पद प्रान्तीय बख्शी का था। प्रान्तीय बख्शी सिपहसलार के अधीन कार्य करता था।

सूबे में प्रमुख स्थानों पर यहाँ तक सूबेदार दीवान, काजी फौजदार आदि अफसर के कार्यालयों तक में संवाद लेखकों तथा गुप्तचरों की नियुक्ति करने का काम प्रान्त का वाक्यानवीस करता था।[19] वाकयानवीस द्वारा नियुक्त किये गये संवाद लेखक तथा गुप्तचर प्रतिदिन सूबे की रिपोर्ट उसे प्रेषित करते थे। सूबे के सम्पूर्ण शासन प्रबन्ध की सफलता गुप्तचर विभाग के ऊपर काफी निर्भर करती थी।

कोतवाल सूबे के आन्तरिक सुरक्षा, शान्ति व्यवस्था, स्वास्थ्य तथा सफाई व्यवस्था की देखरेख करता था।[20] प्रान्तीय सद्र का प्रमुख कार्य धार्मिक, शैक्षणिक अनुदान तथा भूमि अनुदानों का वितरण करना था कभी-कभी प्रान्तीय सद्र तथा काजी ए-सूबा एक ही व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जाता था इससे सद्र को न्यायिक अधिकार प्रापत हो जाते थे।[21]

सूबे का प्रशासन कई छोटी-छोटी ईकाइयों में बँटा था। प्रान्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत जिले थे, जिसका प्रमुख फौजदार होता था जिलों के अधीन परगने होते थे। नगरीय व्यवस्था के लिये म्यूनिशिपिल प्रशासन होता था। ग्राम प्रशासन सूबे की सबसे छोटी ईकाई होती थी।

ग्राम प्रशासन शासन तंत्र की सबसे छोटी ईकाई थी। अकबर के काल में ग्राम प्रशासन एक वैधानिक उपलब्धि थी। इस काल में काबुल के ग्रामों में ग्राम पंचायती को वैधानिक रूप से न्याय करने की पूरी स्वतंत्रता थी।[22]

काबुल का सूबा 7 जिलों (तुमानों) में और जिले परगनों में विभक्त होता हैं। ये तुमान काश्मीर, पक्ली, सिम्बर, स्वात, बाजौर, कान्धार आदि थे।

परगने के ऊपर जिले जिन्हें तुमान भी कहा जाता था,[23] प्रान्तीय व्यवस्था की दूसरी ईकाई थी। काबुल सूबा के प्रत्येक जिले में एक फौजदार अमल गुजार, कोतवाल, बितकची तथा एक खजानदार होता था। जिले का प्रमुख फौजदार होता था।[24] जिले में शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के साथ-साथ नागरिकों की सुरक्षा का भार भी था। सैन्य अधिकारी होने के कारण उसके अधीन एक छोटी सैन्य टुकड़ी भी होती थी। इसके विषय में कहा जा सकता है कि शासन प्रबंध की सफलता बहुत कुछ फौजदार के व्यक्तिगत चरित्र तथा अनुशासन पर निर्भर करती थी।[25]

जिले में मालगुजारी वसूल करने वाला प्रमुख अधिकारी अमल गुजार था वह कर्ज देना, कर वसूल करना तथा खजांची के कार्यों का निरीक्षण भी करता था। वह जिले के आय-व्यय का मासिक ब्यौरा तैयार करता था तथा जिले की आय नियमित रूप से शाही खजाने में जमा करवाना उसका मुख्य उत्तरदायित्व था।

वितवची सरकारी तौर लेखक होता था तथा जमीन की किस्म तथा उस पर होने वाली पैदावार सम्बन्धी आँकड़े वितवची को तैयार करने पड़ते थे। इन्हीं आँकड़ों के आधार पर अमलगुजार काश्तकारों से मालगुजारी वसूल करता था। अमरगुजार के साथ काम करने वालों में खजांची भी थे जिसका मुख्य कार्य आय संभालना, सुरक्षित रखना व खजाने में जमा करना था।

सूबे में कुछ स्थानों पर अन्य प्रकार के प्रशासनिक दल तैनात थे इनके अन्तर्गत बंदरगाह, सीमांत, चौकियाँ किले तथा थाने सम्मिलित होते थे। सूबे की सीमा की सुरक्षा हेतु संवेदनशील स्थानों पर सीमा रक्षकों का दल तैनात रहता था।[26]

अकबर के शासनकाल में जब प्रान्तों का गठन किया गया तब इस बात का विशेष ध्यान दिया गया कि मुख्य-मुख्य अधिकारी एक-दूसरे पर निगाह रखे, परस्पर एक-दूसरे पर अंकुश को बनाये रखे।[27] अकबर की यह नीति से केन्द्र के लिये कोई समस्या उभर नही सकी। प्रान्तीय शासन के प्रमुख अधिकारी सूबेदार के अधीन कार्य करते थे किन्तु कई महत्त्वपूर्ण बातों में वे केन्द्र के प्रतिरूप अधिकारी के प्रति भी उत्तरदायी रहते थे। अकबर ने संतुलन की ऐसी नीति स्थापित कर दी थी कोई अधिकारी शक्तिशाली नही बन सकता था।[28] एक दूसरे पर अंकुश व संतुलन बनाये रखने की नीति ने सूबे की अधिकारियों के कुशासन, अत्याचारों तथा शक्ति दुरूपयोग को रोकने में काफी सफल सिद्ध हुई इससे केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार पर अच्छा नियंत्रण रख सकी।

साथ ही साथ अकबर अपने जासूसों व गुप्तचरों के द्वारा प्रशासन व्यवस्था व अधिकारी के आचरण की जानकारी स्वयं लेता था। प्रतिकूल परिस्थितियों में उन्हें दण्ड देने की तत्काल कार्यवाही की जाती थी।

जैसा कि 1593ई0 में अकबर ने आसफ खाँ बक्शी को कश्मीर की रैयत व सेना के सम्बन्ध में जाँच के लिये नियुक्त किया गया था।[29]

यद्यपि अकबर के शासनकाल में सूबे दूर-दूर थे किन्तु अंकुश व संतुलन नीति के सम्बन्ध में अकबर की दृष्टि सदैव सतर्क व कड़ी नियंत्रण वाली थी इसी वजह से काबुल की प्रान्तीय शासन व्यवस्था बड़े सुचारू रूप से चली।

काबुल में हकीम मिर्जा के पश्चात् 1585ई0 में मान सिंह को काबुल का प्रशासक नियुक्त किया था।[30] राजा मान सिंह, राजा भगवंत दास का पुत्र था तथा अपनी बुद्धिमानी, साहल तथा उच्च वंश का होने के कारण अकबर के राज्य के स्तम्भों तथा सरदारों में अग्रणी था।[31]

भगवान दास को अकबर ने शासन के तीसवें वर्ष काबुल का सूबेदार नियुक्त किया। सूबा काबुल के सूबेदार के क्रम में कुलीज खाँ, जैन खाँ, एतमादुदौला मिर्जा ग्यास बेग बेहरानी काबुल का दीवान नियुक्त किया गया।[32]

इस प्रकार अकबर कालीन काबुल सूबा में स्थापित की प्रशासनिक व्यवस्था और उसमें संतुलन तथा योग्य सूबेदारों की नियुक्ति ने बादशाह के सामने कोई विकट समस्या उत्पन्न नही होने दी, यही नहीं इस प्रशासनिक व्यवस्था ने मुगल साम्राज्य को एक ऐसा आधार प्रदान किया कि आगामी 150 वर्षो तक मुगल शासकों द्वारा उसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता महसूस नही की गई और यह शक्ति संतुलन व्यवस्था मुगलों को इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती हैं।

स्रोत

[1]*बाबरनामा,* पृष्ठ संख्या 145

[2]*आइने अकबरी,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 413

[3]*मुगलकालीन भारत हुमायूँ,* भाग-1, सैय्यद अतहर अब्बाल रिजवी, पृष्ठ संख्या 170-199

[4]*मुगलकालीन भारत हुमायूँ,* भाग-1, सैय्यद अतहर अब्बाल रिजवी, पृष्ठ संख्या 173-174

[5]*आइने अकबरी* -एच.एस. जैरेट, पृष्ठ संख्या 404-406

[6]*अकबरनामा,* भाग-3, पृष्ठ संख्या 282

[7]*आइने अकबरी,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 367, 413

[8]*अकबर-द-ग्रेट,* भग-1, प्रथम संस्करण, पृष्ठ संख्या 175-178

[9]*आइने अकबरी* (अनु0 हरिवंश राय शर्मा), पृष्ठ संख्या 230-242

[10]*मुगल एडमिनिस्ट्रेशन* -सर जदुनाथ सरकार, 1952, पृष्ठ संख्या 53

[11]*अकबर दी ग्रेट* -ए.एल. श्रीवास्तव, भाग-2 (1972), पृष्ठ संख्या 128
[12]*आइने-अकबरी,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 37-41
[13]*मुगलशासन प्रणाली* -हरिशंकर श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 96
[14]*अकबरनामा,* भाग-3, पृष्ठ संख्या 670
[15]कुरैशी -*द एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दी मुगल एम्पायर,* पृष्ठ संख्या 230
[16]*मुगलशासन प्रणाली*- हरिशंकर श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 102
[17]*आइने-अकबरी,* भाग-1, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ संख्या 279
[18]एल.एल. श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 124, *आइने-अकबरी,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 42-43
[19]वही, ए.एल. श्रीवास्तव, *अकबर-द-ग्रेट,* पृष्ठ संख्या 132-133
[20]*आइने-अकबरी,* भाग-2 (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ संख्या 43-45
[21]*अकबरनामा,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 413
[22]*अकबर-दी-ग्रेट,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 153, आइने-अकबरी, भाग-2, पृष्ठ संख्या 141
[23]इरफान हबीब, पृष्ठ संख्या 2, *आइने-अकबरी,* भाग-2, पृष्ठ संख्या 413
[24]इलियट एण्ड डाउसन, भाग-4, पृष्ठ संख्या 414
[25]मीराते अहमदी, भाग-3, पृष्ठ संख्या 170-72
[26]*मुगलकालीन भारत* -श्रीवास्तव, पृष्ठ संख्या 198
[27]*अकबर दि ग्रेट,*-ए.एल. श्रीवास्तव, भाग-2, पृष्ठ संख्या 137
[28]*दि एडमिनिस्ट्रेशन आफ दी मुगल एम्पायर* -कुरैशी, पृष्ठ संख्या 231, *मुगल शासन प्रणाली*- हरिशंकर प्रणाली, पृष्ठ संख्या 110
[29]पी0 शरण- *प्रॉविन्शियल गर्वनमेन्ट,* पृष्ठ संख्या 205-6
[30]मआसिरूल उमरा- अनु0 बृजरत्नदास (1998), पृष्ठ संख्या 293
[31]वही, पृष्ठ संख्या 292
[32]वही, पृष्ठ संख्या 255, मआसिर उमरा- अनु0 बृजरत्नदास (1998), पृष्ठ संख्या 255

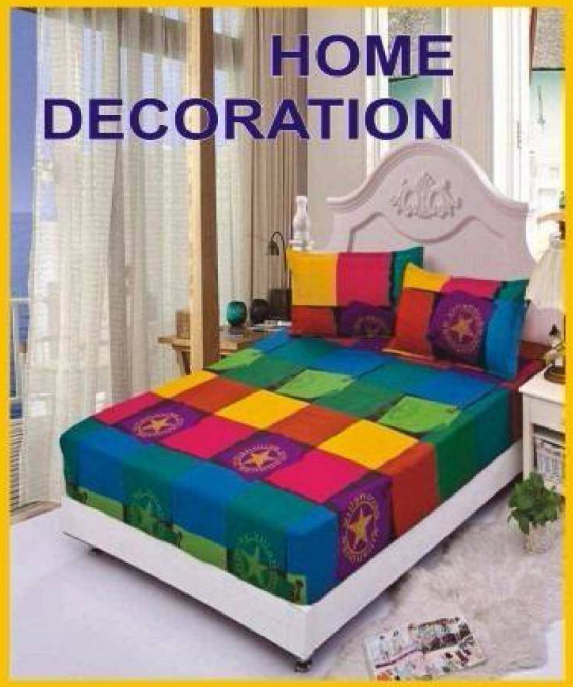

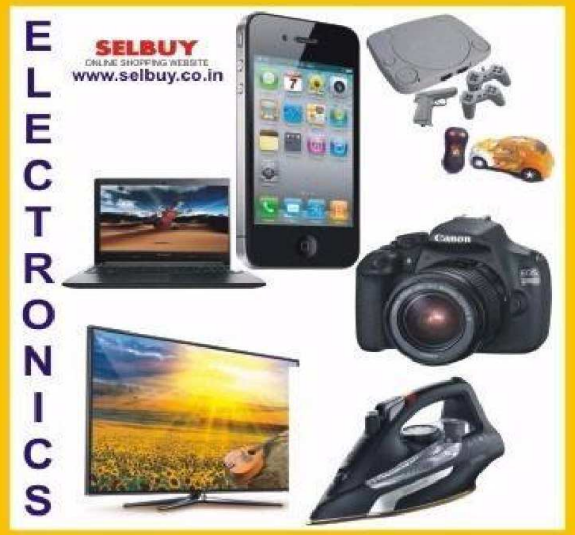

To sell on Selbuy, mail us at **selbuy.sales@gmail.com** or **sales@selbuy.co.in**
For shopping log on to **www.selbuy.co.in**
For more info mail us at **info@selbuy.co.in** or visit us at our office
9/7 D1 LIDDLE ROAD, GEORGE TOWN, ALLAHABAD, U.P., INDIA- 211002, MOB: 8808723417

Why SELBUY is INDIA'S MOST POPULAR SHOPPING WEBSITE ?

EASY ORDER AND CANCELLATION-

Selbuy offers easy processing of orders and their cancellation. You can order your product by just login in to www.selbuy.co.in .

DISCOUNT AND OFFERS-

Selbuy provides you with some amazing offers and great discounts on all your purchases. Eveyday, you will get new and exciting offers on all our products.

PAYMENT OPTIONS-

The payment options are extremely simple & reliable. Selbuy offers payment through COD, debit card, credit card or net banking.

CUSTOMER SUPPORT-

Utmost customer satisfaction is our prime concern therefore our customer support is always there for you 24x7 to answer all your queries. Selbuy ensures prompt action on all your problems and will try to resolve all issues quickly.

FAST DELIVERY-

The final delivery of the product to the end customer is the most important step in online shopping. Therefore selbuy assures fast delivery of the product to your doorstep.

SELBUY

ONLINE SHOPPING WEBSITE

www.selbuy.co.in

Contact us :
By Phone : 8808723417, 8601781059
By Mail : selbuy.sales@gmail.com

For daily updates and exciting offers join us on

NEW DEFINITION OF HOMES

SHINE CITY®

an ISO 9001:2008 certified company

Member of CREDAI U.P.

SHINE CITY

kashiyana

BANARAS

where lives..... brotherhood

only @ ₹1000/- per sq. ft.

Sector - 1

Payment Schedule for Residential Plots

FULL PAYMENT PLAN

Full Payment Plan Within 1 Month

12% Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 25% DOWN PAYMENT

25% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

No Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 50% DOWN PAYMENT

50% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

6% No Discount

NOTE : ALL PAYMENT PLANS OPEN FOR ALL BLOCKS

SHINE CITY

SHINECITY INFRA PROJECT PVT. LTD.

Head Office : 1/5, Fourth Floor, R-Square Complex, Vipul Khand, Gomtinagar, Lucknow-226 010

www.shinecityinfra.in • info@shinecityinfra.in

TOLL FREE 1800-2000-480

Book Your Dream Plot Safely With Us.

Mo. 918181985358, 7839000797

NEW DEFINITION OF HOMES

SHINE CITY®

an ISO 9001:2008 certified company

Member of CREDAI U.P.

kashiyana BANARAS

where lives..... brotherhood

only @ ₹ 900/- per sq. ft.

Sector - 2

Payment Schedule for Residential Plots

FULL PAYMENT PLAN

Full Payment Plan Within 1 Month

12% Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 25% DOWN PAYMENT

25% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

No Discount

SIX MONTH EMI PLAN WITH 50% DOWN PAYMENT

50% Within 15 Day & Rest Amount in 6 Months

From The Date of Booking

6% No Discount

NOTE : ALL PAYMENT PLANS OPEN FOR ALL BLOCKS

SHINE CITY

SHINECITY INFRA PROJECT PVT. LTD.

Head Office : 1/5, Fourth Floor, R-Square Complex, Vipul Khand, Gomtinagar, Lucknow-226 010

www.shinecityinfra.in • info@shinecityinfra.in

TOLL FREE 1800-2000-480

Book Your Dream Plot Safely With Us.

Mo. 918181985358, 7839000797

NEW DEFINITION OF HOMES

SHINE CITY

an ISO 9001:2008 certified company

kashiyana BANARAS

where lives..... brotherhood

Site Layout Plan

(Sector - 2)

SECTOR -2			
TYPE	PLOT SIZE	PLOT AREA (SQFT.)	SHOW
A	40'X80'	3200	
B	35'X70'	2450	
C	30'X60'	1800	
D	25'X50'	1250	
E	25'X40'	1000	

Varanasi Property

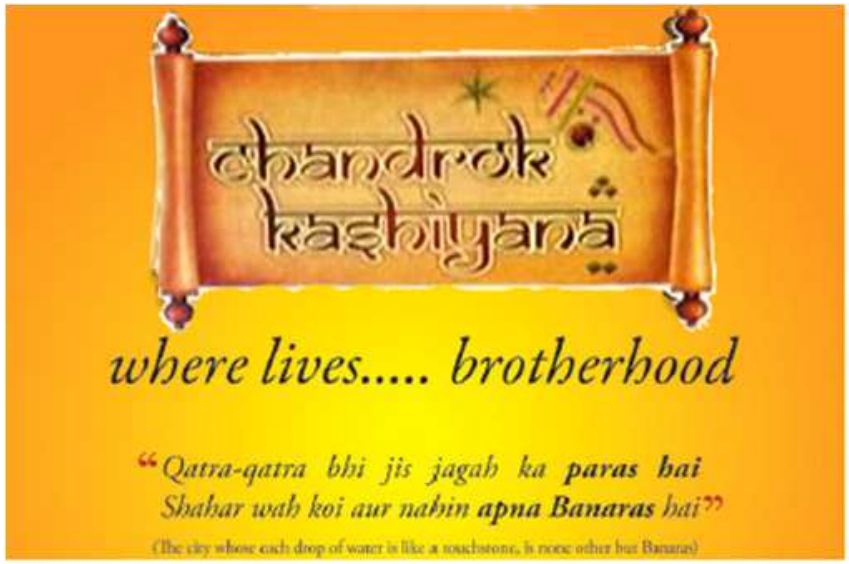

Varanasi Property

Varanasi Property

Varanasi Property

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला, प्रधान सम्पादिका सार्क : अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com) www.anvikshikijournal.com

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन

अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ

आन्वीक्षिकी मासद्वयी शोधसमग्र पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन

एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

www.ajmams.com

Maneesha Publication & Shodha Vivek Organization

www.anvikshikijournal.com

ISSN - 2347-8373

2347-8373

₹ 1500/-